राष्ट्र-चेता

संपादक : सिद्धेश्वर

वर्ष 2 | अंक 2 | 31 अक्टूबर, 2008 | 25 रुपये

द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन अंक

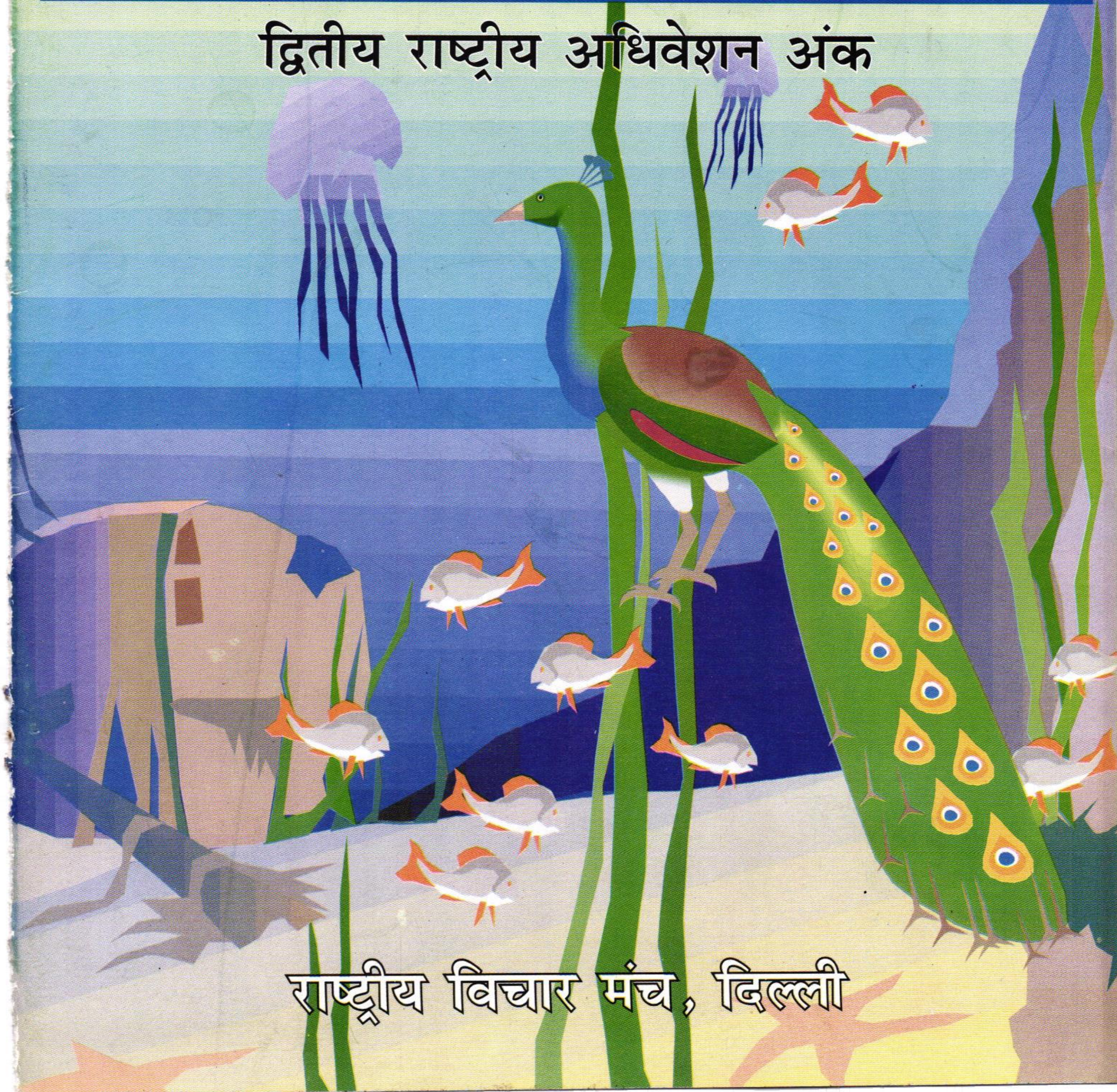

राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली

YES, DLF.

- India's largest real estate company.
- Development potential of 751 million square feet across 32 cities.
- Company with pan-India footprint.
- Present in all segments of real estate sector: Homes, Offices, Shopping Malls, Hotels, Industrial and Infrastructure Integrated Townships.
- Partnerships with international players like Laing O 'Rourke, Nakheel, WSP, Hilton Hotels and Four Seasons.
- Foray into Mutual Funds and Insurance through JV with Pramarica.

DLF
BUILDING INDIA

Corporate Office: DLF Limited, DLF Centre, Sansad Marg, New Delhi-110001, India. Ph.: + 91 11 42102030 www.dlf.in

राष्ट्रचेता

राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा
प्रकाशित स्मारिका
वर्ष 2008

राष्ट्रीय विचार मंच की वार्षिक स्मारिका

अध्यक्ष, संचालक-मंडल
नंदलाल

संपादक
सिद्धेश्वर

उप संपादक
डॉ. शाहिद जमील

सहायक संपादक
उदय कुमार 'राज'
प्रो. पी.के. झा 'प्रेम'
रविशंकर श्रोत्रिय

प्रबंध संपादक
सतेन्द्र सिंह
अरविंद कुमार

आवरण साज-सज्जा
अनिल वार्ष्णेय

शब्द संयोजन
पी.डी. प्रिंटर्स, लोदीपुर, पटना

संपादकीय-प्रकाशकीय कार्यालय
'दृष्टि', 6 विचार विहार, यू०-207,
शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
: : (011) 22530652 / 22059410
मोबाईल : 9811281443/9899238703
9873434086
फैक्स : (011) 22530652
E-mail: vichardrishti@hotmail.com
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001
: : 0612-2228519
मो. 9431037771

पटना कार्यालय
आर० ब्लॉक, पथ सं० 5, आवास सं०
सी०/6,
पटना-800001 : : 0612-2226905

मुद्रक :
गंगा-यमुना प्रकाशन, सी-6, पथ सं.
5, आर ब्लाक, पटना-800001

सहयोग राशि : 25/- रुपये

एक नज़र में रचना और रचनाकार

संपादकीय	2
देशभक्ति की तपन	
संतुष्टि और सक्षमता का विकास	4
सविता लखोटिया	
कानून नरसंहार : खोखली	5
उमा शंकर मिश्र	
स्वस्थ जनादेश की स्वस्थ सरकार	6
डॉ० वैद्यनाथ शर्मा	
जो नारी थी अर्धांगनी	7
डॉ० एन०एस०शर्मा	
भ्रष्टाचार ही बिहार	11
सिद्धेश्वर	
स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी	12
चंद्र मौलेश्वर प्रसाद	
मीडिया अपनी अहमियत	13
उदय कुमार 'राज'	
लघुकथा	14
चितरंजन भारती	
कविताएँ	15
भारतीयों की सार्वभौमिक	17
डॉ. कृष्ण कुमार	
राष्ट्रीयता के बेरी	21
आर० विक्रम सिंह	
भारतीय संस्कृति में हिंदू-मुस्लिम	22
नंदलाल	
गणतंत्र के आर्थिक स्वरूप	23
डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल'	
महँगाई कौन जिम्मेदार-क्रिकेट	26
हितेश कुमार शर्मा	
प्राचीनता एवं आधुनिकता के	28
डॉ० जय प्रकाश खरे	
महान विभूतियोंवाला महान देश	30
ओम प्रकाश 'मंजुल'	
मोगरी-एक गुमनाम शहीद	32
श्रीमती शुक्ला चौधरी	
राष्ट्रीय एवम् भावात्मक	34
डॉ० बी० जी० हिरेमठ	
हमेशा खराब नहीं होते दांपत्य	36
सिद्धेश्वर	
कैसे बनेगी राष्ट्रभाषा हिंदी	38
सिद्धेश्वर	
विदेशों में पुष्पित-पल्लवित हिंदी	40
पी० आर० वासुदेवन 'शेष'	
पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा	44
डॉ० नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'	
महिला पत्रकार : दशा-दिशा	47
डॉ. (श्रीमती) राजु. एस. बागलकोट	
राष्ट्र की चिंताएँ उभरती हैं	49
पेटवाल नागेन्द्र दत्त शर्मा	
राष्ट्रीय एकता जाग्रत करने में	50
डी०आर०ब्रह्मचारी	
आंध्र के लोक कथा गीत	52
डॉ.आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी	
तमिल का गौरव-ग्रंथ	56
डॉ.एन.शेषन, चेन्नै	
सुब्रमण्य भारती के साहित्य में	59
श्री एम.पार्थसारथी, चेन्नै	
राष्ट्र की एकता व अखण्डता	62
सिद्धेश्वर	
राष्ट्रीय एकता पर मंडराते खतरे	66
श्याम सुंदर गुप्ता	
इलेक्ट्रोनिक मीडिया	70
गणेश पवार	

स्मारिका-परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं रचनाकारों के विचारों से स्मारिका-परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं।

देशभक्ति की तपन में है चरित्र बल का स्रोत

जिस राष्ट्र में चरित्रबल नहीं होता, वह राष्ट्र अपनी रक्षा नहीं कर पाता। इसी तरह जो राष्ट्र आकंठ भ्रष्टाचार में डूबा रहता है और जिसकी सर्वाधिक आस्था चाटुकारिता पर रहती है, वह राष्ट्र अंततः समस्याओं के गंभीर दल-दल में धँस जाता है। हमारे देश की आज यही स्थिति है। भारतीय राजनीति और इस देश की प्रशासनिक व्यवस्था की स्थिति आज यह है कि इसमें एक ओर जहाँ चाटुकारिता और गणेश परिक्रमा को जमकर स्थान मिला है, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में योग्यता, दक्षता, कर्मठता एवं ईमानदारी के लिए कोई स्थान नहीं बचा। दरअसल भारत में समस्याएँ केवल व्यवस्था के स्तर पर ही नहीं हैं, बल्कि वे राष्ट्रीय जीवन के हर स्तर पर हैं और स्थिति दिनानुदिन तेजी से बिगड़ती चली जा रही है। इस देश का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक ढाँचा दिन-ब-दिन खोखला होता जा रहा है। कारण कि हमारी कथनी और करनी में कोई सामंजस्य नहीं दिखता। इसी वजह से राष्ट्रीयता की भावना का भी बड़ी तेजी से देशवासियों में लोप होता जा रहा है। देशभक्ति नाम की चीज लोगों में देखने को नहीं मिलती। राष्ट्रीय चरित्र में ह्रास और भारतीय राजनीति की नैतिकता में गिरावट जिस तेजी से हो रही है वह किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए चिंता का विषय है और निश्चित रूप से इसके लिए राजनीतिक नेतृत्व और प्रशासन उत्तरदायी है। दूसरी बात यह है कि मौजूदा दौर में देश की जनता भी सो रही है और वह नेता और अभिनेता को ही अपना आदर्श मानने लगी है। जरूरत इस बात की है कि जनता के चरित्रबल में हो रही कमी को दूर किया जाए। आखिर जिस देश की जनता का चरित्र बल ही न हो, तो उनकी आपसी भावनाएँ कैसे जुड़ी रह सकती हैं। ऐसी स्थिति में तो उसे बाहरी ताकतों से ज्यादा अंदरूनी कमियों से डरना चाहिए। आज इस देश में जो आतंकवाद और नक्सलवाद का कहर है उसके पीछे भी हमारी अंदरूनी कमजोरी है।

ऐसा भी नहीं कि इस देश के लोगों अथवा यहाँ के राजनीतिक दलों में चरित्रवान, त्यागी, निष्ठावान तथा समर्पित कार्यकर्ता और नेता का अभाव है, मगर वे राजनीतिक अपराधीकरण के चलते नेपथ्य में चले गए हैं। उनकी कोई पुछ नहीं है, क्योंकि उनके स्थान पर बाहुबलियों, धनपशुओं, जातिबलियों तथा आपराधिक तत्त्वों का एकाधिकार और बोलबाला है तथा जनता भी उन्हीं को महिमामंडित कर रही है और समाज के ऐसे आपराधिक तत्त्व शासन-प्रशासन को ही नहीं, वरन् संपूर्ण समाज को कठपुतली की तरह नचा रहे हैं। सारा लोकतंत्र उनके विनाशकारी खेल से बेचैन तथा बेहाल है। भारतीय लोकतंत्र अपनी अंतिम सांस गिन रहा है। इस राजनीतिक प्रदूषणों के संक्रामक कीड़े हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा प्रशासनिक आदि अंगों-प्रत्यंगों में लग गए हैं, जिससे छुटकारा पाने की छटपटाहट तो है, पर नेतृत्व के अभाव में जनता आंदोलित नहीं हो पा रही है। प्रबुद्धजन भी तटस्थ हैं। मूकदर्शक हैं। आज चरित्र बल के अभाव में जब चारो ओर मूल्य-मर्यादाओं का विघटन हो रहा है, सेवा, समर्पण, आदर्श, त्याग जैसे शब्द या तो अपना अर्थ- खो बैठे हैं या अपनी संस्कृति खोते जा रहे हैं, संवेदनशील लोगों को आगे आना होगा तथा जन-चेतना जाग्रत करने का प्रयास करना होगा। उन्हें अपना मसीहा स्वयं बनना होगा।

मौजूदा दौर में चट्टान से टकराकर इस देश के व्यक्ति के पुरुषार्थ का प्रत्येक चेहरा चूर-चूर हो रहा है। साथ ही दर्शन, विज्ञान, मूल्य, नैतिकता तथा सभ्यता-संस्कृति की उच्च उपलब्धियाँ सीमित और अप्रभावी होती जा रही हैं। संभवतः यह हमारे अहं का वृहत्त होता घेरा और चरित्र की शक्ति का अभाव का ही परिणाम है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्तिवादी भावनाओं का सीमाविहीन जागरण स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण के लिए किए जा रहे प्रत्येक प्रयत्न विफल हो रहे हैं। दरअसल वैज्ञानिक सफलताओं ने हमारे जीवन में सुविधाओं का इतना विस्तार करना शुरू कर दिया है कि जल्द ही हमारी आवश्यकता, उपभोग-भोग में रूपांतरित हो रही है। हमने एक ऐसी दुनिया का निर्माण किया, जिसमें भौतिक साधनों ने हर कदम पर हमारा हाथ चूमना शुरू कर दिया है, प्रकृति से निकल कर हम एक तिलस्मी, दुनिया में पहुँच गए हैं। धूप- धूल और पसीनों को हम छोड़ते जा रहे हैं और अपने एकांत को आमोद-प्रमोद के असंख्य सितारों से रोशन कर रहे हैं। इस एकांत में संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता की दुरुह ताकतें क्रियाशील हो रहीं हैं, जो हमें प्रेम और मैत्री के सहभाग में संयुक्त कर दे रहा है।

हलांकि यह भी सच है कि हमारे अस्तित्व में सहचित्तता का मौलिक आधार उपस्थित है, किंतु प्राकृत एकता पर भौतिक पार्थक्य का अवलेप इतना मोटा चढ़ गया है, अनियंत्रित भोगेच्छा ने हमें इस सीमा तक संज्ञा शून्य कर दिया है कि हमारी संवेदना कुंठित होकर प्रेम और मैत्री के

अनमोल क्षणों का अनुभव लेने में अक्षम होकर रह गई है। परिवार, जाति, धर्म, राष्ट्र आदि से संबंधित अतिवादी भावनाएँ, इस मोद का ही परिणाम है, जो अंततः हिंसा का रूप लेकर बर्बरता का जन्म देती है। इसलिए ऐसे समाज में हिंसा न केवल मानव-व्यवहार का प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है, बल्कि कितनी बार वह एक सामाजिक जरूरत का खाल ओढ़कर प्रकट होती हैं। इनमें हमारे मोहजन्य स्वार्थ के बारूद धधकते हैं और यह सारा हृदय के बंजर मैदान पर लड़ा जाता है। आखिर तभी तो आज इस देश में राष्ट्रीय चरित्र के संकट की समस्या भयावह हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र राष्ट्रीय चरित्र का भूल आधार है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा की भी मान्यता रही है कि ''ओछे चरित्र के लोग महान राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।''

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्र का प्रत्येक जीवन संकल्पित होना चाहिए जिसके लिए चरित्र बल का होना आवश्यक है। जब स्वयं में चरित्र बल होगा, तभी जनमानस को टटोला जा सकता है, किंतु आजादी के इकसठ साल बीत जाने के बावजूद इस देश के अधिकतर लोगों का जीवन असंकल्पित और असंगठित है जिसकी वजह से वे लक्ष्यहीन हो रहे हैं। इस प्रकार देखा जाए, तो संकल्प के बिना जीवन अधूरा है। इस संकल्प की नींव में राष्ट्रीयता, प्रतिबद्धता, नैतिकता और प्रमाणिकता का होना निहायत जरूरी है। राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक होने के नाते राष्ट्र के जिन महापुरुषों ने आजादी के लिए संकल्प लिया, अपने मन में खुशहाल भारत का सपना संजोया और राष्ट्र कार्य के लिए अपने जीवन को न्योछाबर किया, क्या आज हम देशवासियों का यह पुनीत कर्त्तव्य नहीं बनता कि उनके विचारों का स्मरण कर उनके सपनों को साकार करने का हम संकल्प लें? मगर हाँ, इसके लिए हमें अपने चरित्र बल पर ध्यान देना होगा और इसके स्रोत को ढूँढ़ना होगा। देशभक्ति की वह तपन ही है जो चरित्रबल का स्रोत है जिसके लिए हमें प्रलोभनों से मुक्त और सुविचारों से युक्त होना होगा।

सामान्यतः प्रत्येक भारतीय हर बात में पश्चिम की ओर देखने का आदी हो गया है। कुछ भारतीय तो ऐसे हैं जिन्हें बात तभी समझ में आती है जब किसी चीज पर मेड इन इंग्लैंड, मेड इन यू.एस.ए अथवा मेड इन जापान, रूस या जर्मनी की सील लगी होती है। यही नहीं उन्हें किसी बात पर तब तसल्ली होती है जब उसे विदेशियों द्वारा कही जाती है। जबकि हमें यह मालूम होना चाहिए कि अमेरिका तक में माना जाता है कि आधुनिक अमेरिका के चरित्र निर्माण में साहित्यकार हेनरी वड्र्सवर्थ, लॉगफेलो, आलिवर वेडेल, होम्स, जेम्स रसेल लोवेल आदि का अनुपम योगदान है। निःसंदेह पश्चिम में तो राष्ट्र निर्माण में साहित्यकार की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना जाता है, उन्हें सम्मान दिया जाता है, किंतु भारत की वैसी स्थिति नहीं है। यहाँ तो प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, निराला, महादेवी वर्मा तथा जयशंकर प्रसाद जैसे जाने-माने साहित्यकारों के स्मारक सही ढंग से बनाए ही नहीं गए हैं। और तो और भारतीय साहित्यकार तक उनको देखने जाने की जरुरत नहीं समझते हैं। इस सबके लिए भी सरकार पर पूरी निर्भरता है। आखिर चरित्रबल का निर्माण हो तो कैसे? यहाँ तो साहित्यिक जगत की अधिकतर नामचीन हस्तियाँ भी 'सीकरी सूर्य' की कृपा से चंद्रमा की तरह प्रकाशित हैं। फिर भी वे अपने भाषणों में बड़े गर्व से कहते सुने जाते हैं कि 'संतन को कहा सीकरी सौं काम'' कम ही साहित्यकार ऐसे मिलेंगे जिनको सीकरी से काम न हो। ऐसे साहित्यकारों की रचनाधर्मिता साहित्य के स्थान पर सत्ता प्रतिष्ठान अथवा दल विशेष के विचारों को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए समर्पित रहती है, उनके साहित्य में समाज के लोकमंगल का लवलेश कतई नहीं होता। चरित्रबल का स्रोत ऐसे साहित्यकारों का सृजन नहीं हो सकता।

सदैव कुछ पाने की अभिलाषा में सत्ताभिमुखी ऐसे साहित्यकार अपना भला भले ही कर लें, पर समाज व देश का भला कभो न कर सकेंगे और ना ही देशवासियों के चरित्र की शक्ति के स्रोत बन पाएँगे।

धरती की संवेदना उनकी अपनी होती है, धरती के पुत्र ही उनके बंधु-बांधव होते हैं, वे ही उनके प्रेरणा होते हैं, वे ही उनके आयाम भी होते हैं। और यह होता है उनकी संस्कृति, उनका आचरण, उनका व्यवहार, उनका परिवेश उनका देश, उनका मानस। यह वही भारत देश है जिसमें वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भास, बाणभट्ट, कबीर, सूर, तुलसी, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त हुए जो मरकर भी अमर हो गए, रोज हमको आपको जगाते हैं, राह दिखाते हैं, संकट से बचाते हैं और रातोदिन आसपास खड़े हैं। कहीं राष्ट्रचिंता, तो कहीं राष्ट्रीय प्रबोधन देकर हमें सचेत करते हैं अपनेपन के लिए, भारतीय होने के लिए, संस्कृति में जीने मरने के लिए और देशभक्ति की भावना भरने के लिए। इनका चिंतन संदेश विचार, दृष्टिकोण, घर से वन तक, झोपड़ी से महल तक, गरीब से अमीर तक, पंडित से मूरख तक, सब अपना होता है, भारत का होता है, भारत के लिए होता है, जागरण के लिए होता है और जगाने के लिए ही होता है।

इसलिए आज जरूरत है स्वाभिमान के साथ देशाभिमान की और स्वाभिमान का आधार है स्वत्वबोध जिसके बिना किसी राष्ट्र की इयत्ता नहीं। कोई भी राष्ट्र स्वत्वबोध के बिना निर्जीव हो जाता है। स्वत्वबोध उसका प्राण है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसी तत्त्व की ओर काफी पहले संकेत करते हुए कहा था- ''स्वत्वनिज भारत गहै'' आज स्वतंत्रता स्वयं प्रभा समुज्ज्वला बनकर हमारा आह्वान कर रही है राष्ट्र निर्माण के लिए, मनुष्य के चरित्र निर्माण के लिए।

संतुष्टि और सक्षमता का विकास

○ सविता लखोटिया

किसी भाव के शून्य या पराकाष्ठा की ओर बढते वेग को नियंत्रित रखने का नाम है संतुष्टि।

असफलता व हार की स्थिति में हताश व निराश होकर निष्क्रिय या किंकर्त्तव्यविमूढ़ न बनें, अपितु धैर्य के साथ स्वयं को कर्म में गतिशील रखें-यही है संतोष का प्रेरक भाव।

दूसरी तरफ, स्वार्थ, लोभ या ईर्ष्या के वशीभूत होकर, दूसरों को अपने मार्ग की बाधा की तरह दूर करके, येन केन प्रकारेण स्वयं की सत्ता की स्थापना के प्रयास को नकारना संतोष के ध्येय का पहला पहलू है।

ईश्वर ने सृष्टि के प्राणियों को अपने ध्येय की अपूर्ति के लिए साधन के रूप में प्राणवंत किया है। अत: मनुष्य का कर्त्तव्य ही है कर्मशील रहते हुए श्रेष्ठतम परिणाम के लक्ष्य की ओर अग्रसर रहना। यदि परिस्थिति, प्रयास की कमी अथवा अन्य किसी कारण वशात् जब असफलता ही हाथ लगे, तो संतोष ही हमें निराशा से उबारता है और पुन:कर्म में रत होकर वांछित लक्ष्य की ओर निश्चयात्मक बुद्धि से लगता है।

इस तरह संतुष्टि का दूसरा ध्येय पहलू है अपनी क्षमता का पूर्ण विकास और अपने श्रेष्ठतम का उभार। संतुष्टि नाम है इंसानियत पर गतिशील रह कर तृप्ति का आनंद लेने का। गति और कर्म जीवन के सूचक हैं और संघर्ष जीवन की स्वाभाविक आवश्यकता । अत: निष्क्रियता अथवा यथास्थिति की स्वीकृति तो संतोष की परिधि में आती ही नहीं।

बात चाहे धर्मग्रंथों की करें या नीतिशास्त्रों की -पुरुषार्थ को इंसान का सर्वोच्च धर्म बताया गया है। पुरुषार्थ का अभिप्राय और अर्थ ही है अपनी क्षमता के उच्चत्तम विकास बिंदु पर पहुंचने के लिए कर्मशील रहना और ऐसी आकांक्षा को प्रयास-सिद्धि दिलाना।

क्षमता के विकास में प्रतियोगिता एक सहायक प्रक्रिया है। प्रतियोगिता में श्रेष्ठ बनने की होड़ मचती है, पर परिणाम के पश्चात् सब समभाव में आ जाते हैं। हाँ, प्रतिद्वंद्विता अकारण ही अकरणीय कृत्यों या अनुचित साधनों से प्राय: स्वार्थ एवम् ईर्ष्या की अग्नि में समिधा देने से नहीं चूकती। अत: प्रतियोगिता का नहीं, ऐसी प्रतिद्वंद्विता के अभाव का नाम है संतुष्टि।

इतिहास के पन्ने ऐस उदाहरणों से भरे पड़े हैं। जहाँ व्यक्ति अपनी क्षमता से कर्म करते हुए चाहे विजयी रहें हों या पराजित पर तृप्ति या संतोष के धन से उसका जीवन सराबार रहा है। वे दुबारा उठे हैं और अब तक अप्रात्य श्रेष्ठता को उपलब्ध करान में सफल हुए हैं। विजय में गर्व नहीं, तो हार में शर्म नहीं। एक ऐसी मिसाल रखी अब्राहम लिंकन ने जिसने तेरह से अधिक बार हार का मुंह देखा, किंतु उसके प्रयास में निष्क्रियता या विमुख भाव कभी नहीं आया। आख़िरकार, वे एक दिन महान राष्ट्र के सबसे अधिक सम्मानित अध्यक्ष के पद पर बैठे और जिस मानवीय उद्देश्य के लिए वे संघर्ष कर रहे थे, वे उस पद की शक्ति से उसे पूरा कर सके। महाराणा प्रताप भले ही अपने दुश्मन के आगे जीत हासिल न कर सके, परंतु उन्होंने मृत्युपयत, अनेक निष्फल मानने लगा। यही कारण है कि आने वाली पीढ़ियों ने उनकी हार को भी जित के समान माना और उन्हें संघर्ष की अविचल दुर्द्धषता का प्रतीक भी। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का उदाहरण सबके सामने है। हार जाने वाले, शहीद हो जाने वाले अमर हो जाते हैं अपनी सक्षमता के पूर्ण विकास और उपयोग के कारण। भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास उन हुतात्माओं के बलिदान से दीप्त है, जिनके कारण हम आज आजादी का सुख भोग रहे हैं।

इतिहास के पन्ने ही क्यों, नींव के पत्थर के समान अनाम केवल परिवार, परिचित और पड़ोसियों द्वारा ही ज्ञात अनेक व्यक्ति ऐसे रह हैं, जिन्होंने जीवन को तृप्ति के साथ जीया, इसलिए कि न उन्होंने कभी धर्य छोड़ा, न हिम्मत हारी, सदा अपना कत्तव्य और दूसरों का हित देखा और अक्षर भाव से अपने कर्म में सदा लगे रहे। आज चारों ओर असंतोष का माहौल ऐसा फैल गया है कि संतोष अपने आप में नकारात्मक लगने लगा है। एक आपाधापी, न मिटने वाली प्यास और कोई सनद या स्थिति-पद की दूर भागती तलाश। परीक्षा में असफल विद्यार्थी आत्महत्या कर रहे हैं। आर्थिक कारणों से त्रस्त किसान एवं अन्य लोगों में जीवन को समाप्त करने की त्रासदी निरंकुश हो रही है। प्रेमी प्रेम में हताश होकर आपा खो रहे हैं और अपने जीवन का अंत करने में ही सार मान रहें हैं। सामाजिक विद्रुषताओं की नित नई मिसालें सामने आ रही हैं। अपनी इच्छित माँगों के लिए धरना, हड़ताल, आत्महत्या या अन्य किसी प्रकार की सामाजिक हिंसा व्यापक होती जा रही है। क्या इन समस्याओं का अंत बिना संतुष्टि के हो सकता है? संतुष्टि एक स्वभूत मानसिकता की बात है और जब तक इसका नकारात्मक रूप विद्यमान रहेगा, शांति और सार्थकता अकल्पनीय है। इसका समाधान न तो अन्याय के विरूद्ध क्लीवता में है और न ही सफलता के लिए मापदंडों को हल्का या सरल करने में है। आजकल परीक्षाओं में विद्यार्थियों की सफलता का आंकड़ा बढ़ाने के लिए प्रश्नोपत्रों में विकल्पों की चतुराई का सहारा लिया जा रहा है, प्रश्नों की प्रस्तुति या जवाब का सरलीकरण किया जा रहा है। पास होने की संतुष्टि जीवन में किस असंतुष्टि का पर्याय बनेगी- इस पर ध्यान नहीं जा रहा है। सक्षमता के पूर्ण विकास और नकारात्मक स्थितियों से संघर्ष करने के जीवट के बिना कुछ हासिल नहीं होने का। हमें समझ लेना चाहिए कि सच्ची संतुष्टि जहाँ इच्छाओं पर संयम कर लेने में है, वहीं पुरुषार्थ के वर्चस्व और जिजीविषा के वार्धक्य में भी है; अपितु दूसरे पद के पूर्ण विकास के बिना पहला पद भी असार्थक ही है। याद कीजिए वह प्रसंग कि जब अमेरिका के राष्ट्रपति कार्टर ने युवावस्था में योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने की अहता के बावजूद अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास न करने की स्वीकृति की थी और तब करते हुए उद्घोष किया था- एक सफलता दूसरी सफलता के लिए आमंत्रण है, हम संतुष्ट हो कर बैठ नहीं सकते- संतुष्ट होना माने यात्रा को सोत्साह करने का संतोष अंदर संयोजित करना है।

संपर्क: विद्या बिहार, ख/61/अ, भवानी नगर, सीकर रोड, जयपुर-302023

■

कानून नरसंहार : खोखली विचारधारा का खूनी खेल

○ उमा शंकर मिश्र

साम्यवादी रूस के पिता माने जाने वाले लेनिन ने कहा था कि – माओवादी लोग मिज़ाज से तानाशाह होते हैं। कम्युनिस्टों को अपनी राजनीति के रास्ते कोई कानून या नैतिकता नहीं रोक सकती। जब हम लोकतांत्रिक देशों में अपनी कम्युनिस्ट क्रांति के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं, तो ऐसे देशों की संवैधानिक संस्थाएँ उनके लिये आदर नहीं, इस्तेमाल की चीजें होती हैं। लेनिन के इस कथन को हमारे देश के साम्यवादी विचारकों और राजनैतिक नेताओं ने ''ब्रम्हवाक्य'' के रूप में अनुकरणीय मान लिया है। साम्यवाद के भारतीय इतिहास पर अगर विहग्य दृष्टिपात करें, तो हमारे सामने यह बात स्पष्टरूप से रेखांकित हो जाएगी कि भारतीय मार्क्सवादियों ने अपनी विचारधारा के प्रचार और प्रभाव का विस्तार करने के लिए अमर्यादित गाली–गलोज, दुश्प्रचार, पाखण्ड, हिंसा, अनाचार और आवश्यकता पड़ने पर कम्युनिस्ट विचारधारा का विरोध करने वालों की हत्या कराने जैसे हथकण्डों का ही आश्रय लिया है। उसके पास तर्क, विर्तक, नैतिकता, मूल्यों का कोई स्थान नहीं है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि मार्क्सवाद के जनक स्वयं कार्ल मार्क्स भारतीय स्वतंत्रता और भारतीय संस्कृति के प्रबल विरोधी थे और वह भारत में अँग्रेजी सत्ता को उचित ठहराते थे। इतना ही नहीं जो कार्ल मार्क्स धर्म को ''अफीम की गोली'' कहा करते थे, वह भारत में पश्चिमी इशाईकरण यानि धर्मांतरण को उचित मानते थे। इन्हीं कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित होकर भारत के कुछ नेताओं ने 1920 में ताश्कंध (रूस) में भारतीय कम्यनिस्ट पार्टी का गठन किया और उसे पाँच साल बाद 1925 में कानपुर में इनकी प्रथम राजनैतिक पार्टी का जन्म हुआ। क्योंकि साम्यवाद का मूल सिद्धांत वर्ग संघर्ष के द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना करना था, इस कारण तत्कालीन साम्यवादी नेताओं ने भारत के तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रबल विरोध किया और भारतीय नेताओं को बदनाम करने के लिये दुश्प्रचार का सहारा लिया। साम्यवादियों का यह विरोध कोई तर्कसंगत या सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि गाली–गलोज, अपशब्दों का प्रयोग और दुश्प्रचार के ओछे हथकण्डों पर आधारित था। जैसे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को 1942 में ''जापान का कुत्ता'' कहा। महात्मा गाँधी, जिन्हें अँग्रेज भी समान आदर से ''महात्मा'' कहा करते थे, उन्हें ''अँग्रेजों'' का दलाल कहा गया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को ''अमरीकी साम्राज्यवाद का दौड़ता कुत्ता'' 1952 में कहा गया। ''आजाद हिंद फौज'' को ''लुटेरों और हत्यारों की सेना'' कहा गया। सरदार वल्लभभाई और मदन मोहन मालवीय को ''फासिस्टवादी'' कहा। स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक साम्यवादियों को भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं, हिंदू संत–महात्माओं तथा देवताओं के विरूद्ध दुश्प्रचार युद्ध अनवरत रूप से चल रहा है और अब यह सामूहिक नरसंहार, हत्याकाण्डों और कत्लेआम में परिवर्तित हो चुका है। नंदीग्राम, और कन्नूर (केरल) इसका चक्षुदर्शी गवाह है। राजनैतिक हताशा और असहमति ने नरसंहार का रूप धारण कर लिया है और साम्यवादियों के इन गिरोहबंद हत्याकाण्डों में मूकदर्शक है, सत्ता में उनके भागीदार हमारे सत्ताधीश।

नंदीग्राम के नरसंहार के बाद केरल के कन्नूर जिले में मार्च 2008 के प्रथम सप्ताह में मार्क्सवादियों के खूनी खेल ने पूरी विश्व मानवता को दहला दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को फासीवादी कह कर बदनाम करने वाले केरल सत्तारूढ़ मार्क्सवादियों के प्रशिक्षित हथियारबंद हमलावरों ने 5 मार्च से 7 मार्च 2008 के मध्य 35 आर०एस०एस० के कार्यकताओं की न केवल हत्याएँ कीं, बल्कि किसी कार्यकर्ता की गरदन काट दी, किसी की आँख निकाल ली, किसी राजनैतिक दल के कार्यकर्ता नहीं, बल्कि केरल के आम नागरिक और भारतीय संस्कृति के समर्थक लोग थे, जिनसे केरल के सत्तरूढ दल की सरकार को क्या खतरा था। इन कार्यकर्ताओं की निर्मम हत्याएँ करा कर मार्क्सवादी केरल और पूरे भारत में यह संदेश देना चाहते हैं कि हमारी विचारधारा के विस्तार में जो भी आयेगा उसका यही हाल किया जाएगा। दुखद आश्चर्यजनक और शासनिक कुव्यवस्था का शर्मनाक तथ्य तो यह था कि ये हत्याएँ केरल राज्य के गृहमंत्री के गृह जिले में हुई। जिसने यह सिद्ध कर दिया कि ''संवैधानिक संस्थाओं'' का उनकी राजनैतिक विचारधारा के विस्तार के मार्ग में कोई स्थान नहीं है। प्रश्न यह है कि केरल, पश्चिम बंगाल या देश के अन्य राज्यों में मार्क्सवादियों के द्वारा यह हत्याकाण्ड क्यों किए जाते हैं? मार्क्सवादी इन काण्डों को कराकर देश को क्या संदेश देना चाहते हैं? क्या भारत में सरकार का समर्थन करने के बदले मार्क्सवादी माओवादी और नक्सलवादियों के द्वारा ''ब्रुसेल्स क्रांति'' यानि खूनी क्रांति के द्वारा साम्यवादी शासन और समाज ब्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं? यह नंदीग्राम और अब कन्नूर इस खूनी क्राति का श्री गणेश है? इन प्रश्नों का जबाब हमें साम्यवादी विचारधारा में ही मिलेगा। लेनिन ने कहा था कि–''जो भी मार्क्सवाद को कमज़ोर करने की कोशिश करे, उस पर निरपवाद रूप से हमें पहले शातिर बदमाश होने का बिल्ला लगा देना चाहिए।'' भारतीय मार्क्सवादियों ने कन्नूर में लेनिन के उस आदेश का पालन करते हुए जिन कार्यकर्ताओं की हत्याएँ कीं उनकी

शेष भाग पेज नं. 10 पर

स्वस्थ जनादेश की स्वस्थ सरकार

○ डॉ0 वैद्यनाथ शर्मा

लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में जनादेश के माध्यम से सरकार का आना-जाना एक सामान्य बात है। इस शासन-पद्धति में जनमत की भूमिका आधारभूत शक्ति मानी जाती है। इसके बिना सरकार का गठन हो ही नहीं सकता है।

जनमत या जनादेश की यह भूमिका जितनी विशिष्ट और स्वस्थ होगी उसकी कोख से पैदा हुई सरकार-संतान उतनी स्वस्थ और सबल होगी। लोकतांत्रिक देशों और प्रदेशों का शासन-इतिहास इस बात का साक्षी है कि बीमार जनमत ने सहज रूप से बीमार, निर्बल और अक्षम सरकार बनाकर अपने देश और प्रदेश का घोर अहित किया है।

पंद्रह बर्षों तक दुर्भाग्यवश बिहार प्रदेश ऐसी ही बीमार, निर्बल और अक्षम सरकार के काले साए में घुट-घुट कर जीने के लिए विवश और वाध्य रहा बिहार की आधी आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे जीने की पीड़ा को झेल रही है। ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वालों का राष्ट्रीय औसत जहाँ 25 प्रतिशत है, वहाँ बिहार में यह औसत 44 प्रतिशत है।

इसी तरह शिक्षा-प्रगति के इस होड़-मचे युग में दुर्भाग्यग्रस्त बिहार राज्य काफी पीछे है। जहाँ हमारे देश की साक्षरता राष्ट्रीय औसत 66 प्रतिशत है, वहाँ बिहार में यह दर 47 प्रतिशत है। इसी तरह जहाँ इस देश के 95 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं, वहाँ बिहार के 78 प्रतिशत बच्चे ही स्कूल जा पाते हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति बिहार में बेरोजगारी की भयावह समस्या की है जहाँ लाखों नहीं करोड़ों बेरोजगार युवकों की फौज इस समस्या से आक्रांत होकर अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है। इसका ज्वलंत प्रमाण देश के बड़े-बड़े नगरों में रोजी-रोटी की खोज में बिहार के लाखों-लाख लोगों का पलायन है।

झारखंड राज्य के बनने के बाद इस प्रदेश की खान जंगल छोटे-बड़े तमाम उद्योगों से मिलने वाली सकल आय का सारा स्रोत यहाँ से अलग-अलग बँट गया है और आज बिहार एक अशिक्षित, ग़रीब और पिछड़े राज्य के रूप में अभावग्रस्त और अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है।

ऐसी अभिशप्त स्थिति में लालू-राबड़ी की अक्षम, भ्रष्टाचार में आकंठ निमग्न तथा जातिगत और वर्गगत कटुतापूर्ण भेद और टकराव पैदा करने वाली सरकार कोढ़ में खाज बनकर आई। इस राजद सरकार ने संपूर्ण प्रदेश में जातिगत विद्वेष, अशांति और अराजकता का जंगल, अमंगल और दंगल राज का विषाक्त माहौल पैदा कर दिया। जातिगत समीकरण के आधार पर बनी इस सरकार के शीर्षस्थ नेता तथा नेताओं ने खुलकर घोटाला, भ्रष्टाचार, अपहरण, ससुरालवाद, भाई-भतीजावाद का नंगा नाच कर इस संपूर्ण राज्य का हाल-बेहाल कर दिया।

फिर मतदान की प्रक्रिया को पूर्णस्थान से ध्वस्त और दूषित कर प्रबल बहुमत का झूठा ढोल बजा-बजाकर राजद के मदांध शासनाधीश 15 वर्षों तक राज करते रहे। लोकतंत्र की मूलशक्ति और मूल आधार जनमत और जनादेश की प्राप्ति के लिए इन्होंने मतदान केंद्रों की मर्यादा का बाहुवलियों और अपने गुर्गों द्वारा खुले रूप से शीलहरण करवाया जिसमें इन्होंने अपने छोटे-बड़े तमाम सरकारी पदाधिकारियों को भी सहयोग देने के लिए वाध्य किया। इन्हें इस घोर निद्य कार्य से भी संतोष नहीं हुआ। मतदान के पूर्व इन्होंने मतदाता सूची में लाखों-लाख फर्जी मतदाताओं का पिछले दरवाजे से प्रवेश कराया और मनचाहा चुनाव क्षेत्रों में मनचाहे सरकारी पदाधिकारियों की प्रतिनियुक्ति कराई इस तरह इसको पंद्रह वर्षों के शासन-काल में लोकतंत्रात्मक शासन की आधारशिला जनमत को ही कलुषित कर इन्होंने निजी पॉकेट का मत बना लिया और मनमाने ढंग से बिहार की अधिसंख्य भोली-भाली, गरीब, अशिक्षित और दिशाहीन जनता को झूठे विकास, प्रगति समतामूलक जीवन-दर्शन और गीरबी उन्मूलन का सब्जबाग दिखा-दिखाकर वे शासन करते रहे और इस प्रदेश की करोड़ों जनता के अमन-चैन, सुखशांति और सुखद-जीवन-यापन के सपनों को खाक कर चैन की बंशी बजाते रहे।

भला ऐसी स्थिति में मतदान में स्वस्थ जनमत के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फलत: बिहार के 15 वर्षों के शासन-काल में इस प्रदेश की जनमत ही बीमार पड़ गया था और इस राज्य को बीमार सरकार की बीमार व्यवस्था का संकट झेलना पड़ा। यही कारण था कि 15 वर्षों का इस राज्य का शासन सही अर्थ में जंगल राज, अमंगल राज, दंगल राज और पशुवल राज में तब्दील हो गया। देखते ही देखते भगवान बुद्ध की यह साधना भूमि चन्द्रगुप्त और सम्राट अशोक की यह कार्यस्थली, चाणक्य की यह जीवन-प्रांगण तथा महात्मा गाँधी की स्वतंत्रता-संग्राम की यह सत्याग्रह भूमि अपहरण, हत्या, घोटाला, अविकास, अशिक्षा तथा हिंसा की नरक भूमि बन गई। फिर तो चारों ओर से आने वाले सर्वेक्षण रिपोर्टों में बिहार की बदहाली पर तरस खाने के सिवा और कुछ नहीं मिलने लगा।

फिर पिछले राष्ट्रपति शासनकाल में राजद और काँग्रेस की सम्मिलित सरकार ने क्या-क्या काले कारनामे किए यह सुप्रीम कोर्ट के लिए भी अनदेखा नहीं रहा और इधर तमाम लोकतांत्रिक सिद्धांतों की मर्यादा को ताख पर रखकर ये शासन में बने रहने का पापपूर्ण आचरण करते रहे। लेकिन इनका धरन प्रपंच से भरा धूर्तता के इस खेल का अंत हुआ। चुनाव आयोग के वरीय और विशिष्ट पदाधिकारी के०जी० राव के स्वस्थ प्रबंध और व्यवस्था के तहत नवंबर में हुए चुनाव में इनका सूपरा ही साफ हो गया और समाचारपत्रों में यही चुनाव-परिणाम चमका-'लालू हारे, बिहार जीता'।

के०जी० राव की व्यवस्था में वर्षों के बाद बिहार की हर वर्गीय और हर जातीय जनता को मतदान केंद्र पर जाकर मतदान करने का सुयोग मिला ओर कई दशकों के बाद रोगमुक्त स्वस्थ जनमत की शक्ति बिहार में उभरी और यहाँ राजग की स्वस्थ सरकार बनी है जो श्री नीतीश कुमार ऐसे सुयोग्य, ईमानदार, कर्मठ, दूरदर्शी और लोकजीवी मुख्यमंत्री के नेतृत्व में कार्य करने लगी है।

पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
मगध विश्वविद्यालय
कृष्णानगर रोड नं० 21
धीरज निकास अंतिम मकान, पटना

जो नारी थी अर्धांगनी – अब बने वही सर्वांगनी

O डॉ० एन०एस०शर्मा

हमारे वेद-पुराणों के अनुसार आदर्श नारी को घर की शोभा और लक्ष्मी कहा गया है। जयशंकर प्रसाद ने नारी को श्रद्धा कहा है जबकि नैपोलियन और हिटलर ने अपनी माँ को क्रमशः शिक्षक व प्रेरणा का नाम देते हुए कहा है कि आज हम जो कुछ भी हैं अपनी माँ की नेक सीख के ही कारण हैं। इसी प्रकार पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन एवम् जाँन एफ० कैनेडी ने, सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो, सुकरात एवम् सिकंदर के गुरु अरस्तु ने तथा भारतीय युग पुरुष वीर छत्रपति शिवाजी एवम् स्वामी विवेकानंद ने भी अपनी योग्यता का श्रेय अपनी माँ को ही दिया है। इस प्रकार संतान को वीर एवम् महान बनाने के कोई कारखाने नहीं होते और न ही वे बरसात की तरह ऊपर से गिर पड़ते है। उनको योग्य बनाने का प्रमुख श्रेय तो माता-पिता, शिक्षक, आस-पड़ोस का वातावरण एवम् बच्चे की संगत का ही होता है। संयम, लज्जा, विनय, क्षमा, उदारता, सेवा-सुश्रूषा, मित-व्ययिता आदि गुणयुक्त नारियों ने न केवल अपने घर को, बल्कि राष्ट्र को भी स्वर्ग या उन्नतशील बना सकती हैं। इस प्रकार उर्पयुक्त गुण नारी के आभूषण कहलाते हैं, जबकि कुछेक नारियों में कलह, परनिंदा, ईर्ष्या, विलासिता, दिखावा, फिजूल ख़र्च, घमंड, मज़ाक, वाचालता, मोह, स्वास्थ्य की लापरवाही, कुसंगत, आलस्य एवम् व्यभिचार आदि करने की प्रवृत्ति होती है, जो कि नारी के अवगुण अर्थात् दुषण कहलाते हैं।

नारी ने हमारी वैदिक सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। नारी ही आदिम संस्कृति का उद्‌गम स्थल है और नारी ही सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और ग्राहंस्थ स्नेह-सुख की सरिता का स्रोत है। मानवजाति की सभ्यता एवम् सामाजिक विकास का मूल स्रोत नारी है; उसी के कारण संसार की सबसे अद्‌भुत संस्था गृह का जन्म हुआं, परिवार बने, और समाजिक विकास का क्रम चला। "संसार-सागर-मंथन" नामक ग्रंथ के अनुसार सृष्टिकर्ता पुरुष का। अंत में उन्होंने चन्द्रमा की चन्द्रिका, लता की कोमलता, तिनके का कम्पन, पुरुष की सुकुमारिता, जल की तरलता, वायु की चंचलता, सूर्य रश्मियों की तेजस्विता, हरिण के कटाक्ष, हाथी की मंदगति, कोयल की आवाज़, बाघ की क्रुरता, बगुले का ढोंग और रत्न की कठोरता इन सब वस्तुओं का संग्रह करके नारी का निर्माण किया और उसे पुरुष को सौंप दिया। नारी में उपर्युक्त संपूर्ण गुण प्रतीक के रूप में विद्यमान हैं। इन्हीं भावनाओं में नारी की आर्कषण-शक्ति निहित है। हिंदी विश्वकोष में "नारी" शब्द के पर्याय योषित स्त्री, अबला, योषा, सीमन्तिनी, वधु, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला, प्रिया, रामा, जनि, जनी, योषिता, जोषिंत, जोषा, जोषिता, धनिका, महेलिका, महेला शर्परी, योषित, सिंदूर तिलका आदि दिये हैं।

नारी में मातृत्व की प्रधानता रही है। पुराणों में अनेक स्थानों पर माता की महिमा का यशोगान किया गया है। "माता न पुजिता येन, तत्यवेदा निरर्थका:" मातृभावना जैसे दैवीय गुणों के कारण माता का स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा माना है। "जीवन के अरूणोदय में नारी ही जननी के रूप में सात्विक, राजसिक और तामसिक संस्कारों को, जो बीज बालक के जीवन क्षेत्र में वपन करती है वही बीज पुष्पित और पल्लवित होकर जगत-जीवन का कारण बनता है। नारी के समाज में माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, सखी, सपत्नी, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि विभिन्न रूप ही धार्मिक दृष्टि से नारी श्रद्धा एवम् पूज्य भाव से युक्त हैं। रमा, जगदम्बां, लक्ष्मी, सरस्वती और श्री के रूप में उसकी पूजा होती है। उपनिषद युग की विदुषी नारियों में मैत्रेयी, गार्गी आदि का नाम समाज में आदर के साथ लिया जाता था। इस काल में नारियाँ उच्च शिक्षा से विभूषित थीं। गार्गी द्वारा जनक की एक सभा में विख्याता ऋषि याज्ञवल्वय को प्रश्नों के उत्तर देने की चुनौती देना उन्हें विदुषी सिद्ध करता है। जब शास्त्रकारों ने उन्हें शुद्र के समान वेदों को अनाधिकारी बताया, तो स्त्रियों का वैदिक अध्ययन बंद हो गया और अध्ययन के अभाव में उनमें बाल विवाह भी होने लगा। पुराण साहित्य में पति-परित्याग और पत्नी-परित्याग को भी निषेध किया है। नारी के लिए पति सेवा तथा उसे अपना गुरु मानकर उसकी आज्ञा अनुसार चलने की बात कही गई है। रामायण और महाभारत में नारी का विदुषी रूप कम और त्याग, तप, नम्रता, पति सेवा आदि गुणों से युक्त नारी का गृहस्वामिनी रूप अधिक मिलता है। रामायण में पारस्परिक अनुराग को ही महत्त्व दिया गया है। पति द्वारा पत्नी के प्रति अनेक प्रकार के उदात्त संबोधन देवि, मनस्विन भद्रे, क्याणि, चारूसिमिते, विलासिनी, मदिरेपणे, ललने आदि प्रयुक्त होते थे। महाकाव्यों में चित्रित नारियाँ द्रौपदी, दमयन्ती, कुन्ती, सावित्री, सीता तथा कैकेयी अपनी स्थिति और युग की नारी-भावना को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

जैन धर्म में नारी के मातृ रूप, पतिव्रत धर्म और सतीत्व धर्म पर अधिक बल दिया है। उस युग की नारी में कर्त्तव्य पालन और त्याग की भावना विद्यमान थी एवम् स्त्रियाँ शासन संबंधी प्रबंध करने में भी कुशल थीं। चालुक्य वंशीय विजय भट्टारिका, लक्ष्मीदेवी, अन्मादेवी और मलवादेवी राज्य शासन और युद्ध कला में प्रवीण थीं। राजशेखर की पत्नी एक कवयित्री आलोचिका और शील भट्टारिका एक अच्छी साहित्यकार थीं। मंडन मिश्र की पत्नी उभयभारती को श्री शंकराचार्य और मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ की मध्यस्था बनाया गया था। ईसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से

ही नारी की मान-मर्यादा नष्ट होने लगी थी और सम्राटों तथा राजाओं के अंतपुर में रूपवती कोमलांगी स्त्रियों की संख्या वृद्धि पर थी। मनुस्मृति द्वारा तत्कालीन नारी की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। मनुस्मृति के अनुसार इस काल में आठ प्रकार के वैवाहिक संबंध होते थे, जिनमें से चार श्रेष्ठ और चार कुत्सित माने जाते थे। मनु ने नारी की सदैव रक्षा करते हुऐ उसे स्वतंत्रता न देने की बात कही है। नीति काव्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में नीति परक सुक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। महाराज भर्तहरि ने अपने शृंगार शतकम् में स्त्री को माया की डिबिया और जीवों को फँसाने का एक बंधन माना है।

संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधि-त्रय हैं। नारी गौरव की गाथा से गुंफित अपने कीर्ति-स्तंभ ''रघुवंश" में कालिदास ने भारतीय आदर्शमयी पत्नी और माता के रूप में नारी के मनोहारी चित्र अंकित किये हैं। नारी सुदक्षिण और महाराजा दिलीप में प्रेम की पूर्णता मातृत्व और पितृत्व में पूर्णरूपेण उपलब्ध होती है, क्योंकि जिस प्रकार शिव और उमा कुमार के जन्म से, इन्द्र और शचि जयंत के जन्म से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार दिलीप और सुदक्षिण भी प्रभू के जन्म से, प्रसन्न हुए। कालिदास नारी सौंदर्य के प्रेमी और शृंगार आलम्ब विभाव के अंतर्गत नारी के सौंदर्य चित्रण में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली तेरह नारी पात्रों का चित्रण किया है। सीता, शकुंतला, पार्वती, उर्वशी, (विक्रमोर्वशीय) बिना किसी शृंगार के अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में हैं। उन्होंने नारी की महिमा को सदैव अक्षुण्ण बनाये रखा। उनकी नारी साध्वी, श्रद्धामयी तथा सत्क्रिया स्वरूपा है। "उत्तर-रामचरित" में भवभूति का कथन है कि नारी के बिना पुरुष का जीवन अधूरा है और पुरुष नारी के सहयोग के बिना पुरुषार्थ में कृत कार्य नहीं हो सकता। इस प्रकार भवभूति के "उत्तर-रामचरित" में सीता, नारी का एक नवीन आदर्श उपस्थित करती हैं।

भारतीय नारी के आदर्श को जयदेव कवि ने अपने "प्रसन्न राघवम्" में बड़े मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किए हैं। आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि ब्रम्हा जी ने स्त्री के सिवाय कोई अन्य बहुमूल्य रत्न संसार में ऐसा निर्मित नहीं किया, जो श्रुत, दृष्ट स्पृष्ट और स्मृत होते ही आह्लाद उत्पन्न कर सके। स्त्री के कारण ही घर में अर्थ है, धर्म है और पुत्र सुख है। श्रुति, स्मुति, पुराण और इतिहास आदि हिंदू शास्त्रों से लेकर वर्तमान समय तक के संत, महात्माओं की पावन मधुर वाणी में भी विविध सद्गुणों की मूर्ति, ब्रम्हवादिनी, विदुषी, माता, पत्नी, सती और पतिव्रता आदि के रूप में नारी की अत्यधिक प्रशंसा पाई जाती है। जहाँ उसकी महिमा के अंकित गुण गाए गए हैं वहीं उन्हीं ग्रंथों में नारी की निंदा भी की गई है और नारी से बचे रहने के लिए सावधान किया गया है।

संस्कृत साहिय में नारी के कार्यक्षेत्र को कई भागों में विभाजित किया गया है, तपोवन में रहने वाली कन्याएँ, नगरवासिनी कन्यायँ, अंत:पुर की वधुयें, गृहिणी नारियाँ, परिचारिका तथा वारविलासिनी (गणिकाओं) नारियाँ। उस समये के नारी सौंदर्य, नायिका भेद, जल-विहार और षड्ऋतु वर्णन से ज्ञान होता है कि नारी सदा से मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों की प्रेरणा स्रोत रही हैं। संस्कृत कवियों में अश्वघोष से लेकर श्री हर्ष तथा जयदेव तक ने लगभग बारह सौ वर्षों तक अत्यंत सुक्ष्म दृष्टि से नारी सौंदर्य का निरीक्षण कर अपनी रचनाओं में उसकी सफल अभिव्यंजना की। कहा जाता है कि नारी ब्रह्मा की श्रेष्ठतम कृति है। संस्कृत का एक वाक्य "एकोअहम् बहुस्याम:" के अनुसार एक बार ब्रह्म की इच्छा हुई कि एक से मैं अनेक हो जाँऊ। अत: उन्होंने अपने को दो रूपों में विभाजित कर वाम भाग से नारी और दक्षिण अंग से पुरुष की रचना की। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कुछ भारतीय दर्शन के जानकार शिवशक्ति में, ब्रह्मा-सरस्वती में, विष्णु-लक्ष्मी में, राधा-कृष्ण में कोई अंतर नहीं मानते। इसी भाव्चयन्जना को भारतेन्दु ने भी वाणी दी-

जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या न कछु विभक्ति।।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के मुताबिक नारी आदिदेवी माँ पार्वती का रूप है। अतएव नर और नारी में नारी का ही स्थान श्रेष्ठ माना जाना चाहिए, लेकिन नारी की यह महानता है कि वह पुरुष को ही अपने से श्रेष्ठ मानती है; उसे ही सब कुछ समझती है। यदि ऐसा गुण नारी में नहीं होता, तो सीता भगवान राम के साथ किसी भी कीमत पर वन में नहीं जाती। जब भगवान श्री राम वनवास के लिए चल पड़े थे, तो सीता भी उनके साथ चल पड़ी थीं और यों कहा था:-

"जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी,
तैसेइ-नाथ, पुरुष बिनु नारी।"

नारी रूप-चित्रण में कवि या कलाकार कहीं हिचकता हुआ दिखाई नहीं देता। अन्य रीतिकालीन कवियों में कवि सेनापति ने भी नारी सौंदर्य को अत्यधिक बखाना है। मैथिल कवि विद्यापति ने नारी के मांसल रूप का विश्लेषण कर अपने अद्भुत दृष्टिकोण का परिचय दिया। हिंदी समीक्षकों का कहना है कि विश्व की समस्त श्रेष्ठ एवम् सुंदर चीज़ों को एकत्र कर स्वयं ब्रह्मा ने नारी की सृष्टि की और यही कारण है कि वह अत्यधिक मादक तथा मोहक बनी। कविवर मतिराम भी इसे स्वीकारते हैं

"संचि विरंचि निकाई मनोहर, लाजति मुरतिवन्त-बनाई।"

नारी एवम् उसके प्रति भला हम मुँह कैसे मोड़ सकते है? सूर ने वात्सल्य रस के द्वारा रतिभूमि को अद्भुत एवम् अनोखा रंग प्रदान किया। कबीर ने नारी को माया, मोहनी, ठगनी के रूप में देखा:-"कबीर माया माहनी जैसी मीठी खांड।" दुल्ह सुकवि के अनुसार-"भारतीय नारियाँ प्राय: पति की आज्ञा पालन करने में हिचकती नहीं, भले ही उनकी इस ओर रुचि हो या नहीं। अत: "हाँ" कहना उनका स्वभाव होता है, किंतु प्रणय-बेला में वे प्राय: "ना" का प्रयोग बड़ी उत्सुकता से करती

हैं। वे कार्य वही करती हैं, जो प्रेमी चाहता है किंतु "नाहीं" या "ना" भी कहती जाती हैं" रीति कालीन काव्य में तो नारी-सौंदर्य विश्लेषण में उनका निरीक्षण एवम् परीक्षण अनूठा एवम् अपूर्व सिद्ध हुआ। नायिका के रूप में जब उमंग आती है, तो उस वक्त ऐसा लगता है; मानों उसकी तरुणाई का नवीन प्रष्फुटन हुआ हो। नारी एवम् रीतिकालीन काव्य परंपरा में नारी-सौंदर्य-चित्रण पर प्रकाश डालते हुए हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान सोमदत्त मालवीय का मानना है कि "इस जगत् का सार ही नारी है, क्योंकि वह श्रृंगार की श्रेष्ठ परिणति है, सम्मोहिनी विद्या है; सौंदर्य रूप श्रेष्ठ लक्ष्मी की उत्कृष्ट पदवी है; काम के यौवन का भारी मद है; रति प्रवाहों की सरिता है; हावभाव रूपी संपदाओं की क्रीड़ा है और सौंदर्य का अखण्ड और पवित्र पण है। इस काल में मांसल, बाह्य और हृदय आवर्जक चित्र प्राय: प्राप्त होते हैं। नवल अंगनाओं की छवि, वयसन्धि और मुग्धातत्व के वर्णन के प्रति सचेष्टता और वीर्य-विक्षोभक अंगों का मांसल सौंदय इस युग की विशेषता है। इस काल के कवियों ने नारी के दैहिक रूप की सज्जा, कामोज्जित अंगों का आकर्षण तथा किशोर-किशोरी अवस्था के रूप-चित्र प्रस्तुत किए हैं, क्योंकि श्रृंगार का सार इस अवस्था में प्रकट होता है।"

प्रसिद्ध साहित्यकार भोजदेव ने अपने "श्रृंगार-प्रकाश" ग्रंथ में इसकी पुष्टि की है। वास्तव में जगत् में जो जैसा है, इसका वर्णन भी वैसा ही करने के लिए साहित्यकार बाध्य होता है अन्यथा उसके साहित्य की मर्यादा नहीं रह जाती। ऐसी दशा में नारी रूप को रीतिकालीन कवियों ने जहाँ जैसा देखा-समझा वैसा ही अगर अपने काव्य में पिरोकर मानव-समाज को लौटाया तो इसमें उनका क्या गुनाह? कहा जाता है कि जब विरहिणी नायिका विरह-वियोग में अत्यधिक तप्त हो जाती है, तो वैसी अवस्था में जिसे भी वह देखल लेती, वह जलकर भस्म हो जाता है इसी को कहते हैं-"विरह-वियोगिनी की आग।" वास्तव में संयोग के क्षणों में जो चीजें सुखदायिनी जान पड़ती हैं, वहीं वियोग के क्षणों में हो गए थे। कृष्ण-भक्त नहीं जानता? नारी जीवन विप-बेली पर कुसुमित होते हुए किसलय की भाँति है। मैथिलीशरण गुप्त का ध्यान इस ओर गया था; तभी तो उन्होंने कहा-

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी?
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।"

वे कहते हैं कि पाठकों के हृदय पर कविता की छाप छोड़ना, विशेषकर, श्रृंगार रस की, पत्थर में छेद करने के समान है। दुनिया की सभी भाषाओं का साहित्य नारी रूप, नारी चेष्टा और नारी भाव से ओतप्रोत है। उसके सौंदर्य की सुंदर अभिव्यक्ति शत-प्रतिशत हो रही है तथा आगे भी होती रहेगी।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते-तत्र देवता:।"

छायावादी काव्य के प्रथम प्रर्वतक महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत कर नारी संसार को धन्य-धन्य किया। उन्होंने कहा कि-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास, रजत, नग-पागतल में।
पीयूप-श्रोत-सी बहा करों, जीवन के सुंदर समतल में।।"

यद्यपि पुरुष और नारी समाज के निर्माण में बराबर भूमिका निभाते हैं फिर भी पुरुष की महत्ता नारी से अधिक है। नारी को समाज में वह स्थान आज भी नहीं मिला जिसकी कि वह हकदार है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग साठ वर्ष बाद भी नारी की स्थिति में वांछित सुधार नहीं हुआ है यद्यपि उसे त्याग और ममता की प्रतिमा जैसे शब्दों से सुशोभित किया जाता रहा है। मुगलकाल के कुछ शासकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने का भरपूर प्रयास किया। नूरजहाँ की जहाँगीर की सत्ता में भागीदारी, इस बात की पुष्टि करती है फिर भी उस काल में प्रचलित कुछ कुप्रथाएँ महिलाओं को हारी हुई और दूसरों की मोहताज भी साबित करती हैं। एक शासक द्वारा एक से अधिक बीबियाँ रखना, नृत्यांगनाओं को वेश्या बनने पन मजबूर करना आदि इसके उदाहरण हैं।

नारियों के विकास का काल आधुनिक काल माना जा सकता है। इस काल में नारियों ने स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-बढ़ कर हिस्सा लिया। झाँसी की रानी, अहिल्याबाई होलकर व चाँद बीबी इसके चंद उदाहरण हैं। संविधान में नारियों के हितों की रक्षा के लिए कानून बनाए गये। संविधान के नीतिनिर्देशक तत्त्व में इस बात पर जोर दिया गया कि सभी निकायों में नारियों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। बल विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों का अंत हुआ। सरकार द्वारा प्रारंभ की गई योजनाओं ने भी नारी के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन सभी प्रयासों के परिणाम स्वरूप नारी ने देश के प्रधान मंत्री और मुख्यमंत्री जैसे प्रतिष्ठित पदों को सुभोशित किया। इनमें स्वं इंदिरा गांधी का नाम अग्रगण्य है, जिनकी गिनती भारत में ही नहीं विश्व के श्रेष्ठ नेताओं में की जाती है। इसके साथ कल्पना चावला और अरूंधति राय आदि के कार्यों को भी नहीं भूलाया जा सकता है। सभी जानते है कि आज नारी ने अपनी योग्यता के सभी विधाओं/क्षेत्रों में अपना दबदबा बना रखा है। अपने सुकार्यों की लोकप्रियता के कारण अनेक भारतीय नारियों का नाम विश्व के बच्चे-बच्चे की जुबाँ पर है जैसे स्वर्गीय इंदिरा गांधी, स्वर्गीय कल्पना चावला एशियाई स्वर्ण पदक विजेता कंवलजीत कौर सन्धु, पी० टी० उषा, विजय लक्ष्मी पंडित और प्रथम विश्व सुन्दरी रीता फरिता आदि। वे पुरुषों से आगे नहीं है तो पीछे भी नहीं हैं।

इस कलिकाल में अध्यात्मिक विचारों से क्यों नारी को पैरों की जूती माना जाता है। नारी और पुरुष इस गाड़ी रूपी के दो पहिए माने गए हैं। किसी एक पहिए के बिना गाड़ी नहीं चल सकती, तो नर की तुलना में क्यों नारी का दर्जा निचला मानकर (समान अधिकार होते हुए भी) उसे सर्वहारी माना जा रहा है । कैसी प्रवंचना है यह? भारतीय नारी वर्ग में प्रथम अर्थात अग्रणी रहने वाली कुछ नारियों एवम युवतियों की सूची निम्नानुसार है।

किरण बेदी (प्रथम आई० पी० एस०) श्रीमति इन्दिरा गाँधी (प्रथम प्रधानमंत्री), श्रीमती कोकिला अय्यर (प्रथम विदेश सचिव), हंसा मेहता (प्रथम उप कुलपति) श्रीमति सुचेता कृपलानी (प्रथम मुख्य मंत्री) श्री विजय लक्ष्मी पंडित (प्रथम राजदूत) लीला सेठ (प्रथम मुख्य न्यायाधीश) फातिमा बीबी (सुप्रीम कोर्ट की प्रथम जज) वायलेट अल्वा (राज्य सभा की प्रथम सभापति) कौशल्या नारायणन (कस्टम एंड एक्साइज आयुक्त) मेजर जनरल जी. ए. राम (प्रथम महिला जनरल) पी० के० टी० नागुँली (प्रथम चीफ इंजीनियर) शांता कुमारी (सिंडीकैट बैंक मैनेजर) रोज मिलियन मैत्थयूल (संघ लोक सेवा आयोग की प्रथम अध्यक्ष) उज्ज्वला राय (समुद्री यात्रा द्वारा विश्व का चक्कर लगाने वाली प्रथम महिला) नारी इतनी उपलब्धियाँ हासिल करने के बाद भी सबकुछ हारी हुई सर्वहारी दिखाई पड़ती है। आज भी उनकी आधी से ज़्यादा संख्या निरक्षर है। राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत सबसे कम है। कई राज्यों में तो बलात्कार व स्त्रियों को नंगे घुमाने की घटनाएँ आम हो गई हैं। कई स्थानों पर महिलाओं पर होने वाले जुल्मों ने तो हद की सीमा पार कर दी है। क्या यह नारी की हार नहीं है?

आज सभी कार्यालयों/संस्थानों में महिलाओं का प्रतिशत बहुत ही अच्छा है, लेकिन उन पर होने वाले यौन शोषन एवं अत्याचार में कमी नहीं आयी है। वर्ष 1996 में पंजाब पुलिस के प्रमुख गिल और रूपल देओल बजाज के प्रकरण में न्यायालय द्वारा गिल को दी गई सज़ा नारी सुधार की दिशा में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है, लेकिन न्यायालय द्वारा उठाया गया क़दम ही काफी नहीं है; समाज को भी इसके लिए आगे आना होगा। नारी को परिवार में भी पुरुष सदस्यों पर ही आश्रित है। आज भी नाम के साथ पिता का नाम जोड़ने का प्रावधान है; माता के नाम से वंश को नहीं जाना जाता है। ये बातें यह साबित करती हैं कि समाज में पुरुष की प्रधानता एवम् वर्चस्व है। नारी समाज की अम्मा और दया की प्रतिमा होने के बाद भी वह अबला के रूप में जानी जाती है। उसके विकास के लिए समाज में उन्हें बराबर का दर्जा देना होगा, नहीं तो आने वाला इतिहास हमें कभी माफ नहीं करेगा और नारी के दर्द के आँसू की क़ीमत मानव जाति के विनाश से चुकानी पड़ेगी।

सरकार द्वारा महिला आयोग का गठन व संसद में उनके लिए आरक्षण का प्रावधान इस दिशा में उठाया गया एक सार्थक क़दम है। लेकिन उनके विकास हेतु अभी और योजनाओं को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। इतना ही प्रयास सिर्फ काफी नहीं है नारियों को भी इसके लिए आगे आना होगा। पुरुषों को भी चाहिए कि वे अपना नैतिक समर्थन दें। तमाम उपलब्धियाँ हासिल करने के बाद भी यदि नारियों की स्थिति में सुधार के लिए जल्द ही प्रयास नहीं किया गया, तो शायद आगे भी उन्हें सर्वहारी नारी माना जाता रहेगा।

सहायक संदर्भ :-

1. भारतीय संस्कृति में नारी का महत्त्व डॉ. परम लाल गुप्त
2. नारी एक अनुशीलन दयानाथ लाल
3. नारी - सर्वहारी दिलीप श्रीवास्तव

संपर्क : 48/515, टाईप-सट सेक्टर नं० सस, प्रथम तल (सी. जी. एस. कॉलोनी), अन्टाप हिल, मुंबई-400 037 (महाराष्ट्र)

पेज नं. 5 का शेष भाग

पीठ पर "बदमाश" होने के पोस्टर चिपका दिए थे।

कन्नूर और उसके पूर्व नंदीग्राम नरसंहार कोई आकस्मिक घटना या प्रथम घटना नहीं है। मार्क्सवादी हत्यारे तो भारत में चालीस सालों से कर रहे हैं। ज़्यादा पुरानी बात अगर न भी करें, तो 1998 में केवल एक वर्ष में मार्क्सवादी आततायियों ने देशभर में 1351 हिंसक कार्यवाहियाँ की जिसमें से 439 मार दिए गए थे। उपरोक्त आँकड़े भारत के तत्कालीन गृहमंत्री ने लोकसभा में दिये थे। इतना ही नहीं मार्क्सवाद का खूनी इतिहास की कथाएँ अनंत हैं। मार्क्सवादियों के आतंकवादी सगठन हैं नक्सली और माओवादी दहशतगर्द। 19 मार्च 1999 को बिहार के जहानाबाद में क्या हुआ? जहानाबाद बिहार का एक अति गरीब और दलित बहुल जिला है। वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा वर्ग की वकालत करने का आडंबर करने वाले इन मार्क्सवादी समर्थक आतंकवादी संगठन नक्सवादियों ने इस जहानाबाद जिले में 40 गरीब दलितों की गरदनें काट दीं और उनके शव भी कन्नूर हत्याओं के समान छतविछत कर दिये तथा मारे गए ग्रामीणों के शवों पर "माओवादी कम्युनिष्ट सेंटर ज़िंदावाद" के नारे लिखे पर्चे चिपका दिये गए। प्रश्न यह उठता है कि ये नरसंहार क्यों किए जाते हैं? तब फिर लेनिन के उस आदेशात्मक कोटेशन की ओर देखना होगा कि जिसमें लेनिन ने कम्युनिस्टों को निर्देश देते हुए कहा था कि "नरसंहार का जारी रहना वामपंथियों को संगठित रखने के लिये आवश्यक है। हत्याओं में ठहराव हमारे संगठन को समाप्त कर देगा।"

अत: हमारे देश की अखण्डता और सामाजिक समरसता के लिए साम्यवादी आतंकवाद एक बड़ा ख़तरा बन कर उभर रहा है। इस ख़तरे को जान कर भी अगर हमारे वर्तमान सत्ताधीश अनजान और कपोतवृत्ति की नीति अपनाएँगें, तो यह देश साम्यवादी रूस के समान खण्ड-खण्ड हो जाएगा। इस कारण देश को बचाने के लिये कम्युनिस्टों के बढ़ते क़दमों में बेड़िया डालना अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव है कि जब भारत में लोकतांत्रिक पद्धत्ति से और आम चुनावों में इस विचारधारा का पूर्ण बहिष्कार कर इनको राजनीति की रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाए तभी देश में हत्या का व्यापार करने वालों से देश को बचाया जा सकेगा।

संपर्क: राष्ट्र उत्थान भवन, माधव कॉलेज के सामने ग्वालियर, (म. प्र)

भ्रष्टाचार ही बिहार के विकास में सबसे बड़ा अवरोधक तत्त्व

O सिद्धेश्वर

जब से नीतीश सरकार बिहार की सत्ता में आई है, राज्य की अस्मिता की पहचान और विकास के लिए इसने सुधार की बहुआयामी योजनाएँ तैयार की है। यह नीति सत्ता विकेंद्रीकरण के लिए पंचायती राज, प्रशासनिक सेवा का पुनरुत्थान, पारदर्शी और जिम्मेदार शासन, भ्रष्टाचार पर अंकुश, विधि-व्यवस्था दुरुस्त करने और राजकोषीय एवं पर्यावरण संबंधी स्थायित्व के बिंदुओं पर जोर देती है। दरअसल, पिछले तकरीबन दो दशक से बिहार में बिगड़ी व्यवस्था को दुरुस्त करना कोई आसान काम नहीं है उसमें भी तब जब यह राज्य कई तरह से विकलांग है। रोग को जड़ से काटने के लिए प्रदूषण को मिटाना होगा, जो राज्य के दिलो-दिमाग में घर चुका है। व्यवस्था को सुधारने के लिए कुछ संरचनात्मक परिवर्तन करने होंगे। जमीनी स्तर पर प्रबंधन और विकास की विशेष इकाइयों की स्थापना कारगर सिद्ध होगी, जिन्हें अपनी जिम्मेदारियों की स्पष्ट तौर पर जानकारी होनी चाहिए।

मुझे पूरी तरह याद है, पूर्व केंद्रीय मंत्री जगमोहन की वह बात, जिसे उन्होंने नई दिल्ली की एक संगोष्ठी में रिफार्मिंग गवर्नेस पर अपने संबोधन में कहा था कि राज्य सरकार के तमाम प्रमुख विकास प्राधिकरण और स्थानीय निकायों को प्रबंधकीय और विकास इकाइयों में बदलने की जरूरत है। उपक्रम तथा प्राधिकरण के अधिकारियों का दृष्टिकोण प्रशासनिक न होकर प्रबंधकीय तथा प्रतिस्पर्धात्मक होना चाहिए, क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था का वह हिस्सा हो गई है। लिहाजा यह संभव नहीं है कि तंत्र पुराने ढर्रे पर चलता रहे, किंतु किसी भी मॉडल का अँधानुकरण न करते हुए केवल उद्यमशीलता के सिद्धांतों की रचनात्मक मान्यता दी जानी चाहिए। साथ ही व्यक्ति और संगठन दोनों के स्तर पर प्रदर्शन एक मानक के अनुसार होना चाहिए। यही नहीं, सभी संस्थानों का निरंतर निखार लाने के लिए स्थाई उपाय आवश्यक करने चाहिए। कर्मचारियों एवं अधिकारियों की जिम्मेदारी स्पष्ट तौर पर निर्धारित हो, ताकि इकाई के प्रमुख के पास तमाम शक्तियाँ होने की वजह से वह आगे चलकर यह दलील न दे पाए कि राजनीतिक दखलंदाजी ने उसके हाथ-पैर बाँध दिए थे या फिर नौकरशाही के सामान्य तौर-तरीकों की कठोरता के कारण वह वांछित परिणाम नहीं दे पाया। पिछले तीन वर्षों की प्रगति के बाद बिहार अपने अस्तित्व की पहचान बनाने का सपना देख रहा है। यदि हमें वास्तव में अपना वह सपना साकार करना है, तो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की दिशा में कदम बढ़ाने होंगे। इसके लिए न केवल मजबूत कारपोरेट उपक्रम को प्रोत्साहित करना होगा, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य और बेरोजगारी सहित नक्सलवाद, अपहरण, रंगदारी, गरीबी जैसी विभिन्न समस्याओं का निदान निकालना होगा। क्योंकि बिहार में दो-तिहाई रोजगार कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए हैं और किसान करोड़ों लोगों को भोजन मुहैया कराता है, इसलिए विकास का ऐसा मॉडल तैयार करना होगा, जो उनकी उपज की गुणवत्ता बढ़ा सके, उत्पादक की आमदनी बढ़ा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अपारंपरिक ऊर्जा के स्रोतों को विकसित करना होगा, वृहद पैमाने पर सौर ऊर्जा का निर्माण करना होगा। कृषि के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध कराना सबसे जरूरी है। नए इको-सिस्टमों की बदौलत रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं।

प्रगति के इस युग में यह कतई जरूरी नहीं रह गया है कि कुछ राज्यों तथा कुछ लोगों की समृद्धि के लिए बिहार जैसे बाकी राज्य तथा उसके लोग गरीबी में जीवन व्यतीत करते रहें। इस दृष्टि से विकास का ऐसा मॉडल तैयार करना होगा, जिसकी बुनियाद सहयोग और भागीदारी हो। नई दृष्टिवाले साहसपूर्ण और विश्वासपरक मॉडल आज बिहार की प्रगति के लिए आवश्यक है। 21वीं सदी में चंद लोगों के लिए नहीं, वरन् सभी के लिए खुशहाली लाने का प्रयास समय की माँग है। यह तभी संभव हो पाएगा जब दूरदर्शी व्यापारिक जगत की प्रगति और विकास के युद्ध में भागीदार बनाया जाएगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बिहार प्रदेश व्यवस्था की बाहें अपने ढंग से मरोड़ते हुए जो लोग बहुदलीय लोकतंत्र के भीतर पंद्रह साल का लंबा एकछत्र शासन मैनेज कर आत्ममुग्ध थे, उनकी विदाई हो चुकी है। यहाँ के लोगों ने देखा है कि उच्च शिक्षा सहित प्राय: अनेक क्षेत्रों में गुणवत्ता के खंडहर बिखरे पड़े थे। विश्वविद्यालयों में शैक्षिक सत्र सालों पीछे चल रहे थे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान मिलना मुश्किल हो गया था। कुलपतियों की नियुक्ति उनकी शैक्षिक-प्रशासनिक क्षमता से नहीं, बल्कि बिरादरी से लेकर सत्तारूढ़ दल के प्रति निष्ठा और धनबल जैसे अनुचित मानकों पर तय हो रही थी। इसके विपरीत नई सरकार के सत्ता संभालने पर कुलपतियों की नियुक्ति में बायोडाटा व साक्षात्कार को आधार बनाने की परंपरा शुरू हुई और शैक्षिक सत्र भी पटरी पर आने लगे हैं। बिना वेतन लेने वाले महाविद्यालय और विश्वविद्यालय शिक्षकों पर शिकंजा कसा जाने लगा है। कॉलेजों का निरीक्षण शुरू होने से अनेक शिक्षकों

शेष भाग पेज नं. 16 पर

स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी : वारीन्द्र कुमार घोष

○ चंद्र मौलेश्वर प्रसाद

बात बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ की है जब भारत में अँग्रेज़ी साम्राज्य का बोलबाला था। बंगाल के डॉ० कृष्णधन घोष एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे, जो अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ों की सेवा में कार्यरत थे। वे अँग्रेज़ों से इतने प्रभावित थे कि उनका मानना था कि भारत का कल्याण इसी में है कि भारतीय अँग्रेज़ की तरह बनें। फलस्वरूप उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी को इंग्लैंड भेजा, ताकि उनका होने वाला पुत्र अँग्रेज़ी नागरिकता के साथ-साथ अँग्रेज़ी माहौल में पले-बढ़े। इस पुत्र के जन्म पर उसका नाम वारीन्द्र कुमार घोष रखा गया जिसे प्रेम से वारीन्दा कहा जाता था। इंग्लैंड में पला-बढ़ा वारीन्दा अपने पिता के चिंतन के विपरीत भारत और भारतीय संस्कृति से प्रभावित था।

वारीन्द्र कुमार घोष के बड़े भाई थे अरविंद, जनका जन्म कलकत्ते में हुआ था। यही अरविंद आगे चलकर आध्यात्मिक गुरु श्री ऑरोबिदो के नाम से प्रसिद्ध हुए। अरविंद को भी पिता ने इसलिए इंग्लैंड भेजा था, ताकि पुत्र पढ़-लिखकर एक बड़ा अफसर बने। भाग्य को कुछ और ही मंजूर था।

अरबिंद ने आई.सी.एस की लिखित परीक्षा में तो सफलता प्राप्त की, परंतु घुड़सवारी में फेल हो गए। उस समय भारतीय सिविलि सर्विस के लिए घुड़सवारी अनिवार्य थी। अरविंद वापिस भारत लौट आये और यहाँ की राजनीतिक गतिविधियों से परिचित हुए। उस समय महाराष्ट्र के क्रांतिकारी नेता तिलक ने स्वतंत्रता का नारा बुलंद किया था। संपूर्ण स्वराज की मांग जोर पकड़ रही थी। इधर बंगाल में भी उबाल आ रहा था। इसे ठंडा करने के लिए गवर्नर लार्ड कर्ज़न साजिशी जाल बिछा रहे थे जिससे बंगाल के दो भाग हों- इस तरह कि किसी भी भाग में हिंदू बहुमत में न हों। लार्ड कर्ज़न का मानना था कि बंगाल विभाजित हुआ तो यह आंदोलन अपने-आप बिखर जाएगा। इस चाल को जनता अच्छी तरह समझ रही थीं अरविंद भी स्वतंत्रता में कूद पड़े और बंगाल के एक प्रमुख नेता की भूमिका निभाने लगे।

उस समय वारीन्द्र कुमार घोष ने युवकों को क्रांति में भाग लेने के लिए इकत्रित किया। 'युगांतर' नामक पत्रिका के माध्यम से प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। इस पत्रिका के संपादक स्वामी विवेकानंद के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त थे। कहने को यह पत्रिका धर्म और कर्म के प्रचार के लिए निकल रही थी, परंतु इसकी आड़ में क्रांति के संदेश जनता में फैलाने का कार्य भी सिद्ध हो रहा था। सन् 1908 में इसकी ख्याति अपने उरूज पर थी जब इसकी बीस हजार प्रतियाँ बिकी थीं।

एक ओर स्वतंत्रता संग्राम के लिए लोगों में जागृति लाई जा रही थी। दूसरी ओर हेमचन्द्र दास जैसे साथी बम बनाने और विस्फोट करने का प्रशिक्षण ले रहे थे। इसके लिए हेमचन्द्र दास पेरिस गए और लौटकर सावरकर जैसे क्रांतिकारियों से संपर्क भी स्थापित किया। वारीन्द्र घोष के दल के साथ-साथ बंगाल में एक अन्य दल भी क्रांतिकारी कार्य में सक्रिय था जिसका नाम था 'अनुशीलन समिति'। इस समिति का प्रथम उद्देश्य तो बंगाल का एकीकरण था, परंतु बाद में वह भी संपूर्ण स्वतंत्रता का नारा लेकर क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना प्रारंभ कर दिया। अब उनका उद्देश्य केवल 'बंगाल जोड़ो' नहीं, बल्कि तिलक का 'संपूर्ण स्वराज' को साकार करना था। इसके लिए उन्होंने जनता से सरकारी अदालतों और विद्यालयों का बहिष्कार करने का आह्वान किया

धीरे-धीरे जनता में सुगबुगाहट होने लगी और क्रांति की आग फैलने लगी। उधर अँग्रेज़ों का दमनचक्र भी तेज़ी से घूमने लगा। छोटी-छोटी बातों को लेकर लोगों को कड़ी सज़ा दी जाने लगी। जनता में असंतोष इतना फैला कि क्रांतिकारी बंगाल के अँग्रेज़ गवर्नर को बम से उड़ा देने के प्रयास करने लगे। 'वंदे मातरम्' कहने पर भी मारपीट हो जाती और सख्त सज़ा सुनाई जाने लगी। इस सख्ती और जुल्म के लिए एक अँग्रेज अधिकारी कुख्यात था जिसका नाम किंग्स फोर्ड था। क्रांतिकारी इस ताक में थे कि उसके जुल्मों की सज़ा के रूप में मौत के घाट उतारा जाय। इसके लिए वारींद्र के दल के दो युवक-खुदीराम बोस और प्रफुल्ल की, तैयार हो गए। इसी बीच किंग्सफोर्ड का स्थानांतरण मुज़फ्फरपुर पहुँचकर उसका पता खोज निकाला और उसकी दिनचर्या मालूम की। एक दिन ठीक समय पर उसकी गाड़ी पर बम से हमला किया। दुर्भाग्य से उस दिन किंग्सफोर्ड के स्थान पर दो महिलाएँ उस गाड़ी में सवार थी। बम विस्फोट तो सफल हुआ जिसमे वो महिलाएँ मर गईं, परंतु किंग्सफोर्ड जीवित रहा।

विपरीत परिस्थिति को देखते हुए प्रफुल्ल चाकी ने अपनी पिस्तौल चलाकर आत्महत्या कर ली। खुदीराम बोस भाग निकले परंतु पकड़ लिए गए। कई महीनों तक मुकदमा चला और अंततः उन्हें मौत की सजा हो गई। 11 अगस्त 1908 को उन्हें फाँसी पर लटकाया गया। इस प्रकार देश के दो भक्तों खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

इस घटना के बाद पुलिस सचेत हो गई। अरविंद घोष और उनके छोटे भाई वारीन्द्र घोष को पकड़ लिया गया। अरविंद पर यह आरोप था कि उन्होंने 'भवानी मंदिर' नामक पत्रक निकाला जिसमें सरकार के विरूद्ध बातें कहीं गई हैं। मुकदमा लंबा चला जिसमें सरकार की ओर से प्रसिद्ध अँग्रेज़ बैरिस्टर नार्टन थे और अभियुक्त की ओर से युवा वकील चितरंजनदास, जो आगे

शेष भाग पेज नं. 20 पर

मीडिया अपनी अहमियत खो रहा है

○ उदय कुमार 'राज'

भारतीय लोकतंत्र के तीन मजबूत स्तंभ हैं–विधायिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका।' इसी लोकतंत्र का एक और महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली स्तंभ मीडिया है, जो उपर्युक्त तीनों पर दृष्टि रखता है और खबरों तथा टी० के० माध्यम से उनके क्रियाकलापों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करता रहता है। मीडिया ने जनता में जो जागरुकता जगाई है उसका असर देखा जा सकता है। वैसे तो प्रिंट मीडिया अखबारों के माध्यम से खबर पहुँचाता है, परंतु इसका असर कुछ धीमा होता है, मगर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का असर भारत के हर कोनें में जंगल की आग की तरह फैल जाता है। मीडिया ने स्टिंग आपरेशन के द्वारा भ्रष्ट नेताओं के चरित्र को जनता के सामने उजागर किया, रिश्वतखोरों को सरेआम नंगा किया, प्रिंस जब गड्ढ़े में गिरा, तो उसका सीधा प्रसारण कर उसके बचाव के प्रयास किए तथा करोड़ों लोगों ने तहेदिल से उस बच्चे को बचने के लिए प्रार्थनाएँ की। इसके लिए सबने मीडिया को धन्यवाद दिया, सराहना की। जनता में मीडिया ने काफी उम्मीदें जगाईं।

मगर पिछले कुछ महिनों से अपनी टी०आर०पी (टी०वी० रेटिंग प्वाइंट) बढ़ाने की होड़ में मीडिया अपनी जिम्मेदारी भूल गया है। आज तकरीबन 90 चैनल हैं, परंतु प्रमुखरूप में स्टार न्यूज, इंडिया टी.वी. एन.डी.टी.वी. इंडिया, आजतक, आवाज़ जी न्यूज, न्यूज 24, सी.एन.एन, सहारा वन इत्यादि ऐसे चैनल हैं जो एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अपनी मर्यादा भूल जाते हैं और यह साबित करने पर तुले रहते हैं कि जो कुछ भी वो दिखा रहे हैं केवल उन्हीं के चैनल पर दिखाया जा रहा है। जनता को सरेआम मूर्ख बनाते हैं ये मीडियावाले। पिछले दिनों नोयडा के आरुषि हत्याकांड को जिस प्रकार कुछ चैनलों ने परोसा उसे देख-सुनकर भले ही कुछ लोगों को यह लग सकता है कि इस हत्याकांड की पल-पल की खबर से वे अवगत हो रहें हैं। एक अरब से भी अधिक आबादीवाले इस देश में केवल एक हाइप्रोफाइल हत्याकांड ही एक घटना थी इस देश में कोई भी ऐसी घटना नहीं घटी जिसकी अहमियत आरुषि हत्याकांड से अधिक हो। आरुषि-हेमराज हत्याकांड का सबसे विकृत, विषैला एवं विनाशक पक्ष टेली मीडिया ने प्रस्तुत किया किसी ने पापी-पाप' तक कहा किसी ने बाप-बेटी के पवित्र रिश्ते को दागदार किया, किसी ने कहा, बेटी के चरित्र' पर शक था इसी वजह से डॉ० तलवार ने आरुषि एवं हेमराज की हत्या की। यह सच है कि पुलिस के बयान के आधार पर टेली मीडिया ने ये सब कहा था, परंतु अपने विवेक से काम नहीं लिए। डॉ० तलवार ने सबसे अधिक मीडिया को दोषी ठहराया है अपने चरित्र के हनन के लिए।

पिछले दिनों कार दुर्घटना में एक छात्र और छात्रा की मृत्यु हो गई तथा ड्राइवर गंभीर रूप से घायल हो गया। ब्रेकिंग न्यूज के नाम पर मीडिया ने प्रचारित कर दिया कि अनिरुद्ध और स्नेहा दोनों शराब के नशे में थे और उनकी यही परिणति होनी थी। इन दोनों के माता-पिता ने यह जानकारी दी कि दोनों मेधावी विद्यार्थी थे और दूर-दूर तक शराब से उनको कुछ लेना-देना नहीं था। डॉक्टरी पोस्टमार्टम रिपोर्ट से यह साबित हो गया कि उन्होंने शराब नहीं पी थी। इन बच्चों के परिजनों की यह शिकायत है कि मीडिया ने उनके दिवंगत बच्चों के चरित्र को दागदार किया है। दिवंगत बच्चों के सम्मान के लिए इनके माता-पिता मीडिया को उनके गैर जिम्मेदाराना हरकतों के लिए सबक सिखाने को उतारू हैं।

अपना टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए एक टेली मीडिया ने एक कार्यक्रम का लाइव टेलीकास्ट किया जिसमें एक आदमी पानी से भरे शीशे के बड़े जार में साँस रोककर डूबकी लगाता है जिसकी शर्त है कि अमुक समय तक पानी के भीतर रहेगा तो इनाम का हकदार होगा। वह व्यक्ति इनाम की लालच में वैसा ही करता है जैसा कार्यकम के संचालक प्रायोजक चाहते हैं और परिणाम यह निकलता है कि वह व्यक्ति मरने से बड़ी मुश्किल से बचा, कारण उसके फेफड़े में पानी घुस गया और एक-पल में दम घुट जाता यदि वह बाहर निकालने का इशारा नहीं करता। उसे तुरंत अस्पताल भेजा गया। तब जाकर उसकी जान बची। अब आप इसी बात से अनुमान लगा सकते हैं कि एडवेंचर्स के नाम पर मीडियावाले लोगों की जिंदगी से भी खेल सकते हैं यह सब होता है टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए अपने को अत्याधुनिक कहलाने वाले टी.वी. चैनल वाले अँधविश्वास और धार्मिक कूपमंडूकता का ऐसा प्रचार-प्रसार करते हैं कि कोई भी बुद्धिजीवी एवं समझदार व्यक्ति उसे देखकर अपना सिर धुन लेगा। चंद मंदबुद्धि एवं सिरफिरे लोगों को प्रसन्न करने के लिए अँधविश्वास की चादर से सबको ढकने का प्रयास करते हैं। कभी तो गणेशजी को दूध पिलाते हुए दिखाते हैं, कभी आकाश में बादलों के बीच उन्हें साईं बाबा दीखते हैं, तो कभी उनकी आँखो से खून बहता हुआ दिखता है। चूंकि कुछ नामी-गिरामी मीडिया के प्रबंधक स्वामी अँधविश्वासों से ग्रसित हैं, तो जनता को उन्हीं देवी-देवता के कारनामों को प्रचारित कर उनके भीतर उनकी भक्ति को जबरदस्ती भरना चाहते हैं, और स्वीकार करने को बाध्य करते हैं। यह उनके मानसिक दिवालेपन का परिचायक है। काल, कपाल,

महाकाल कार्यक्रम को एक प्रसिद्ध चैनल इस प्रकार प्रसारित करता है मानों यह देश भूत-पिशाच और तंत्र-मंत्र के नाम पर ही चल रहा है। बाबाओं और औघड़ों के कारनामों को वह चैनल इतनी सिद्दत के साथ दिखाता है कि मतिमूढ़ बुद्धिवाले दर्शक झूम उठते हैं।

अँधविश्वास को जिस तरह बढ़ावा दिया जा रहा है मानों इस देश ने जो वैज्ञानिक उन्नति की है वह सब बेकार है। देश को 12वीं सदी में ले जाने के इस प्रकार के कुचक्र को यदि विफल नहीं किया गया, तो आने वाले समय में देश के लिए यह घातक सिद्ध होगा। लोगों को दिग्भ्रमित एवं अँधविश्वास के गर्त में ले जाने वाले उस सभी चैनलों को तत्काल रूप से प्रतिबंध लगा देना चाहिए अन्यथा आधुनिकता के राग अलापने वाली इस देश की आधी आबादी इन चैनलों की चपेट में आए बिना नहीं रह सकेंगी.......रियालटी शो के नाम पर जो जनता के सामने परोसा जा रहा है उसे देखने के लिए लोगो में उत्सुकता बनी रहती है और पीटे-पिटाए सीरियल से छुटकारा मिलता है। मगर इसका क्रेज बना रहे उसके लिए शो में कुछ इस प्रकार की नौटंकी की जाती है कि लगता है सब कुछ अचानक घटित हुआ है।

लेकिन यह सब दिखावा है लोगों को मूर्ख बनाने के लिए। चैनलवाले घटनाक्रम को इस प्रकार आयोजित करते हैं कि सच का आभास होने लगता है और लागों में चर्चा का विषय बन जाता है। हमारी यह त्रासदी है कि उसे देखने को हम अभिषप्त हैं; लाचार हैं, बेबस हैं और उसी का फायदा टेली मीडियावाले उठाते हैं। 22 जुलाई 08 को जब परमाणु ऊर्जा के पक्ष और विपक्ष को लेकर विश्वास मत पर संसद में चर्चा चल रही थी तभी अचानक एक ब्रेकिंग न्यूज आया कि तीन सांसदों को खरीदने के लिए नौ करोड़ में सौदे हुए और हजार-हजार के एक करोड़ की गड्डी संसद में सरेआम दिखाए गए उन सांसदों द्वारा यह साबित करने के लिए कि उन्हें यह रकम दी गई है पेशगी के तौर पर। लंच के बाद का यह दृश्य है। जब डिप्टी स्पीकर अध्यक्षता कर रहे थे। सारा सदन सकते में आ गया भारत ही नहीं पूरा विश्व इस नाटक को देख रहा था। भारत के इतिहास में 22 जुलाई 08 का दिन काला दिन रूप में याद किया जायगा। अब आप के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ सकता है कि यहाँ इसकी क्या-प्रासंगिकता है?

दरअसल एक प्रसिद्ध चैनल ने इस घटना का स्टिंग ऑपरेशन किया था यह उजागर करने के लिए कि राजनीतिक पार्टियों का क्या चरित्र है और सांसद भी बिकाऊ हैं, मगर इन सारे प्रकरण में उस चैनल के प्रमुख, जिन्होंने नाटक से पूर्व की पटकथा लिखी, यह भूल गये कि यदि संसद के पटल पर यह नाटक खेला गया, तो दर्शकों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। क्या मीडियावाले भ्रष्टाचार के पंक में आकण्ठ डूबे इन सांसदों के इतिहास को नहीं जानते, जो पैसे और सत्ता में बने रहने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। फिर इस तरह की गैर जिम्मेदारी का कार्य किया। क्या अपने विवेक को ताक पर रख दिया था जब स्टिंग आपरेशन कर रहे थे यह जानते हुए कि यह बात संसद में पहुँचेगी और वहाँ से समूचे राष्ट्र में सांसदों ने जो चाल चली उसमें तो उन्हें सफलता नहीं मिली हाँ! उनका चरित्र उजागर अवश्य हो गया कि आखिर उन्होंने वे पैसे लिए तभी तो संसद तक पहुँचा उसके लिए जो कहानी गढ़ी गई उसकी सत्यता की जाँच चल रही है। मीडिया को चाहिए कि टी. आर.पी. बढ़ाने के लिए कोई भी ऐसा कार्य न करे जिससे देश के माथे पर कलंक लगे और जनता उस कारनामें को देखकर मीडिया के करतूत पर थू-थू करे।

संपर्क : एस. 107, शकरपुर, दिल्ली-92

○○○

लघुकथा

इनाम

○ चितरंजन भारती

अचानक ही रहीम के अब्बा उसके सामने आ खड़े हुए, तो कलाम चौंक पड़ा। रहीम के अब्बा महबूब आलम गाँव के पुराने प्रतिष्ठित सेठ थे। जबकि कलाम एक गरीब किसान का बेटा ठहरा। ''क्यों रे, तुमको कितनी बार मना किया कि जाहिलों, गँवारों का साथ मत किया करो'' महबूब आलम चिल्लाकर रहीम से बोले- ''फिर भी तुम अपनी हरकतों से बाज नहीं आते।''

रहीम तुरंत वहाँ से भाग छूटा। कौन अपने बाप का मार सहे।

तभी नदी किनारे भारी शोर होने लगा। कोई नदी में डूब रहा था। कलाम उधर भागा और नदी में छलाँग लगा दी। थोड़ी ही देर में वह डूबने वाले को किनारे बचा लाया। वह महबूब आलम का छोटा बेटा था। गाँववालों ने कलाम की बहादुरी की तारीफ में कसीदे पढ़ने शुरू कर दिए।

महबूब आलम तुरंत पाँच सौ का नोट निकाल कर कलाम की ओर बढ़ाते हुए बोले-''लो बेटे तुमने मेरे बेटे की जान बचाई। उसका यह इनाम है।''

''माफ कीजिए चचाजान'' कलाम हँसकर बोला-''मैंने आपके बेटे की नहीं, बल्कि अपने दोस्त के भाई की जान बचाई है। उसके लिए इनाम क्या लेना?''

संपर्क : राजभाषा अनुभाग,
हिंदुस्तान पेपर कॉरपोरेशन लिमिटेड
कछाड़ पेपर मिल, पो०-पंचग्राम,
असम-788802

■

देवेन्द्र कुमार मिश्रा की दो कविताएँ

1. "हन्दी प्रचार दिवस"

हर साल हिंदी प्रचार दिवस मनाते हैं
दूसरे दिन भूल जाते हैं
क्योंकि वादा करके भूलना
इनका जन्मसिद्ध अधिकार है।
संसद की बहस में अँग्रेजी की
भरमार है।
सेक्रेटरी रखते हैं जो अँग्रेजी जाने
हर बात को अँग्रेजी में मानें
अँग्रेजी स्कूलो में पढ़ते हैं उनके बच्चे
क्योंकि उनकी नजर में
अँग्रेजी पढ़ने वाले ही होते हैं अच्छे
हिंदी को कहते हैं महान
मगर अँग्रेजी बोलने में समझते है शान
हिंदी प्रचार में है न
उनका अभूतपूर्व योगदान।

2. "हिंदी चिंदी"

हिंदी की उड़ गई चिंदी
ज्यों विधवा के माथे से बिंदी
अँग्रेज चले गये अँग्रेजी छोड़
हिंदी को लग गया है कोढ़
संसद में अँग्रेजी
दूरदर्शन में अँग्रेजी
हर बड़ी-छोटी जगह अँग्रेजी
हिंदी पढ़ रही कक्षा के.जी.
बच्चों के नाम रखे जाते है अँग्रेजी में
पढ़ाते हैं अँग्रेजी में
ढंग सिखाते हैं अँग्रेजी में
वृद्ध माता-पिता को बच्चे
घर से निकाल देते हैं (गेट आउट)
अँग्रेजी में।

संपर्क: जैन हार्ट क्लीनिक के
सामने एस.ए.एफ. क्वार्टर्स
बाबू लाईन, परासिया
रोड-छिन्दवाड़ा (म.प्र.) 480001
मोबा. 9425405022

आज़ाद कानपुरी की दो ग़ज़लें

1. वक्त की आवाज़

मुल्क के ख़तिर जो अपनी जाँ लुटा सकते नहीं
उनके आगे हम कभी भी सर झुका सकते नहीं
छल-फरेबों की बदौलत पा गए जो कुर्सियाँ
कुछ भी कर लें शान से वो सर उठा सकते नहीं
खोजते हैं राह कुर्सी को बचाने के लिए
वह जो मज़लूमों को उनका हक दिला सकते नहीं
हम दग़ाबाजों से आजिज़ आ गए हैं दोस्तो
हुकमरां हरगिज़ निकम्मों को बना सकते नहीं
वक्त की आवाज़ ही अशआर है "आजाद" के
कौन कहता है कि लब अपने हिला सकते नहीं

2. ग़ज़ल

करेगा क्या भला आकर यहाँ इन्सान दुनिया में
बनाये जा रहे हैं मौत के सामान दुनिया में
मुहब्बत का इबादत का नहीं अब फ़लसफ़ा मिलता
मुकम्मल हो नहीं सकता कोई दीवान दुनिया में
वतन की बात करना अब तो बेमानी हुआ यारों
कि अब ढूंढ़े नहीं मिलता कहीं ईमान दुनिया में
खुदी के जोश में इन्सा खुदा को भूल बैठा है
तभी तो आते रहते हैं सदा तूफ़ान दुनिया में
बुज़ुर्गों की दुआ लेना नहीं आता ज़माने को
नहीं अवतार लेते इसलिए भगवान दुनिया में
वो अपनी बेखुदी दीवानगी में मस्त रहता है
कोई समझा करे 'आज़ाद' को नादान दुनिया में

संपर्क: 1144 एल.आई.जी.
आवास विकास-3, पनकी
कानपुर-208017
फोन 572703, 573233

दोहे

-चन्द्रसेन 'विराट'

सहलाता पर-पीर को, आँसू को दे मान
वह गंगा जाये बिना, करता गंगा-स्नान
हँसकर ढोते लोग कुछ, ढोते कई उदास
सारे ढोते हैं यहाँ, अपने अपने क्रास
अरुणाभा से दीप्त है, प्रियदर्शन अति रम्य
उदयकाल का सूर्य है, दैवी, भव्य, प्रणम्य
दूर दूर के क्षेत्र में, फैलाना है पाँव
शहर निगलता जा रहा, आसपास के गाँव
कई विदूषक आ गये, भरा हुआ है मंच
राजनीति में चल रहे, प्रहसन भरे प्रपंच
आकर भी आती नहीं, बेशर्मों को शर्म
अब ठीके पर हो रहा, ललित कला का कर्म
हटकर था कुछ लीक से, खींचा सबका ध्यान
बंधे लीक से लोक ने, किया स्वयं सम्मान
'जो हो' कहकर छोड़ दी, धारा में निज नाव
देखे हमने लहर पर, कई उतार चढ़ाव
थे गरीब के पक्ष में, धन ही था पर लक्ष्य
अवसर पाया, बन गये, धनिकों के अध्यक्ष्य
सबमें होता जानवर, कुछ जयादा, कुछ न्यून
जब तब रहता जागता, यह जंगली जुनून
बोल उठे माँ बाप भी, दुख सहने के बाद
'अच्छा होता हम अगर, होते वे औलाद'

संपर्क: 'समय' 121 वैकुण्ठधाम
कॉलोनी
ओल्ड पलासिया, खजराना कोठी
आनन्द बाजार के पीछे
इन्दौर 452018, म.प्र.

उतरी नभ से लो मेघ-परी।

-बनारसी चौधरी 'वीरेश'

बिजली की गोरी देह सुघर,
फबती चुनरी काला अम्बर,
घनश्याम ललित अंकन में पर,
चुपके चुपके पर्वत पहरी।
उतरी नभ से लो मेघ-परी ।।
रूनुन झुन पायल बाँधे पाँव,
फुनगियों पर करने को ठाँव,
पिकी के उर देने को घाव,
धरा के दुर्वाचल लहरी।
उतरी नभ से लो मेघ-परी ।।
तपस्वी का करने तव भंग,
जगाने 'विश्वामुनि' अनंग,
'मेनका' आयी करने तंग
वह देव लोक वाला ठहरी।
उतरी नभ से लो मेघ-परी ।।
चलाती बूंदन तीखे वाण।
वियोगन करती घायल आन,
निकलता उसका क्षण क्षण प्राण,
घन श्याम सुघर माया-महरी ।
उतरी नभ से लो मेघ-परी ।।
कृषक उरबशी बनी 'उर्वशी',
'रंभा' बनकर 'शुक मुनि' डंसी,
शुभ कविता बन 'वीरेश' फंसी,
पद-रज पा जिन गौतमी तरी ।
उतरी नभ से लो मेघ-परी ।।
तिन ढूँढे उतरी बरषा में भींगे भींग सिहरी,
रहती 'पी' 'पी' चातकी भरी,
पंचम सुन नाच उठी मोरी,

पवन के सुंदर रथ से री।
उतरी नभ से लो मेघ--परी ॥
रोपन-गोपन भींजी चुनरी,
कोमल कोमल काया ठिठुरी,
'सी' 'सी' कर डोप रही मोरी,
गोपन की सुघर गीत बन री।
उतरी नभ से लो मेघ--परी ॥
जीवन वन धरती की आई,
रिमझिम की मादक सुर लाई
यौवन-रस फुहियाँ सरसाई,
सरिता-सर-सागर में छहरी।
उतरी नभ से लो मेघ--परी ॥
पुलकित हो वसुधा हरिआई!
दादुर की सुनकर शहनाई।
दिग्वधु में लख कर मुस्काई,
छलकाती सुधा भरी -गगरी ।
उतरी नभ से लो मेघ--परी ॥

संपर्क- नई सराय, भवानी गली
पो० बिहार शरीफ (नालन्दा)
803101

देश भक्ति गान

-श्रीमती आर. राजपुष्पम पीटर

जय जय भारत भूमि
जय जय पावन भूमि
हम हैं इसकी वीर संतान
हम हैं इसकी जान
कृषकों के श्रमजल से सिंचित
सुंदर सुहावना बाग हमारा
नाना धर्म के फूल खिले हैं
एकता की डाली पर
जय-जय भारत भूमि
जय-जय पावन भूमि
हम तो पहले जकड़े थे
गुलामी की जंजीरों से
गाँधी जी आए अहिंसा की
राहों पर पाई आजादी
जय-जय भारत भूमि
जय-जय पावन भूमि
हम हैं इसकी वीर संतान
हम हैं इसकी जान

संपर्क- एल. सी. भवन, टी.सी.
9/836 वेल्लभबलम, तिरुवनंतपुरम-10

पेज नं. 11 का शेष भाग

को उनके अनुपस्थित रहने पर निलंबित किया जा चुका है। राजभवन तथा सरकार के अधिकतर निर्णय सुधारवादी होने से जहाँ चारों तरफ जड़ता पसरी थी, वहाँ सक्रियता देखने को मिलने लगी है जिससे स्पष्ट है कि अपनी अस्मिता की पहचान और विकास के लिए बिहार लगातार अग्रसर है। आखिर तभी तो कभी पूरे विश्व को रोशनी देने वाले नालन्दा विश्वविद्यालय को फिर से पुनर्जीवित करने का अथक प्रयास सरकार के द्वारा किया जा रहा है और इसके लिए भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम तथा नोबेल पुरस्कार से सम्मानित डॉ. अमर्त्य सेन जैसे उद्‌भट विद्वानों का सहयोग लिया जा रहा है। हालात तेजी से बदल रहे हैं और जड़ता समाप्त करने का प्रयास जारी है।

हाँ, जिस एक बात पर बिहारवासियों को चिंता सता रही है वह है भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लगाना। भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने के लिए जो समुचित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है उसमें सक्रियता नहीं के बराबर दिखती है। राज्य में लोकायुक्त महज कागजी शेर बने हुए हैं। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से यह उम्मीद थी कि वह प्रशासन में सुधार के जरिए भ्रष्टाचार की जड़ों पर थोड़ा बहुत मट्ठा डालेंगे, मगर प्रशासनिक सुधार आयोग की रपट भी अब ठंडे बस्ते में डाल दी गई दिखती है। हाँ, अभी-अभी पिछले मंत्रिपरिषद् के विस्तार अथवा रिसफलिंग के दौरान कुछ दागी तथा भ्रष्टाचार में लिप्त मंत्रियों को बाहर का रास्ता दिखाने का जो प्रयास हुआ है उनका स्वागत अवश्य किया जाना चाहिए। दरअसल, नौकरशाही के रवैए ने राज्य के समस्त सरकारी तंत्र को अपनी गिरफ्त में ले लिया है और प्राय: सभी राजनीतिक दल भी भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ने के पक्ष में नहीं दिखते। आखिर काले धन के बल पर चुनाव लड़ने और अपने चुनावी चंदे का हिसाब न देने वाले राजनीतिक दल भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई क्यों छेड़ेंगे? हाँ, नौकरशाही अवश्य वैसा कर सकती थी, किंतु वह तो भ्रष्टाचार को दूर करने की बजाय उसे सरंक्षण प्रदान कर रही है और वह सत्तारूढ़ नेताओं की चेरी बनकर रह गई है। यही कारण है कि राज्य में भ्रष्टाचार का कालिख मिटने की बजाय बढ़ ही रही है। ऐसी स्थिति में नीतीश कुमार की दृढ़ इच्छाशक्ति और उनकी नीयत पर ही भरोसा किया जा सकता है, क्योंकि यदि सचेमुचं वह राज्य में विकास चाहते हैं, तो भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना होगा जिसके बिना तमाम विकास की योजनाएँ बेकार साबित होंगी, लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था दिनोंदिन जिस तेजी से भ्रष्ट स्वार्थ समुहों की गिरफ्त में आ रही है, ऐसा नहीं लगता कि आने वाले दिनों में जनता भ्रष्टाचार की शिकार से मुक्त हो पाएगी। बल्कि सच तो यह है कि सूरत यही रही, तो आगामी वर्षों में गिरावट और तेज होगी। अभी-अभी भ्रष्टाचार की जाँच करने वाली एजेंसी ट्रांसपरेंसी इंटरनेशनल और सेंटर फॉर मैनेजमेंट स्टडीज द्वारा देश के विभिन्न राज्यों के करीब 108 जिलों में कराए गए सर्वेक्षण में चौकाने वाले नतीजे यह आए हैं कि देश के जिन सात राज्यों में भ्रष्टाचार का ग्राफ खतरनाक स्तर को पार कर गया है उनमें बिहार भी एक है। दरअसल, संसदीय लोकतंत्र में निर्णय की शक्ति राजनीतिक प्रतिष्ठान के हाथों होती है। अगर वहीं भ्रष्टाचार होगा, तो उनके मातहत काम करने वाली इकाइयों को कैसे भ्रष्टाचार करने से रोका जा सकेगा। बगैर राजनीतिक भ्रष्टाचार को अंत किए अन्य क्षेत्रों के भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लग सकता और बिना भ्रष्टाचार का अंत हुए विकास की कल्पना करना व्यर्थ होगा।

■

भारतीयों की सार्वभौमिक अखण्डताः परिकल्पना एवं विचार

O डॉ. कृष्ण कुमार

भाषा के बदलते हुए स्वरूप और मौजूदा भाषा की स्थिति एवं भारत के बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं अन्य पक्षों को ध्यान में रखते हुए भारतीय अखण्डता के लिए कुछ भाषायी विचार इस आलेख में प्रस्तुत किए गए हैं। चिर स्थायी समृद्धि के लिए द्विभाषायी सूत्र को अपनाना होगा। वैश्वीकरण में भारत पीछे न रह जाए इसको ध्यान में रखते हुए कुछ ठोस सुझाव भी दिए गए हैं। बाह्य भाषा हस्तक्षेप जो पिछले छह दशकों से होता आ रहा है, राष्ट्र की उन्नति के लिए घातक है।

भूमिका

''जहाँ न जाए रवि वहाँ जाए कवि'' वाली स्थिति अब भारतीयों की हो गई है। इक्कीसवीं सदी में भारतवंशी विश्व के कोने-कोने में पाए जा सकते हैं। वे जहाँ भी जिस हाल में हैं अपनी ज़मीन से आज तक जुड़े हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से भारतीय कैरेबियन में गन्ने की खेती करवाने के उद्देश्य से गए या ले जाए गए थे। कूटनीति ने कुछ ऐसा खेल खेला कि वे सब एवं उनकी संतानें वहीं की होकर रह गईं। दो सौ वर्षों के अंतराल में भी वे भारतीय ही हैं, क्योंकि वे अपनी संस्कृति से जुड़े हैं, किंतु वे भारतीय भाषाओं की जड़ से कट गए हैं तथा उनको भारत की किसी भी भाषा का ज्ञान नहीं है। ऐसा क्यों होता है या हुआ है और इसको कैसे सुरक्षित रखा या बचाया जा सकता है, इस विषय पर सोचना एवं इसका समुचित हल ढूँढ़ना हर भारत प्रेमी का नैतिक दायित्व होता है। इस परिकल्पना के पीछे ऐसे ही कुछ विचार हैं। भारत से बाहर बसे एवं भारत में रहने वाले 120 करोड़ (जिसमें लगभग 20 लाख अनिवासी भारतीय भी सम्मिलित हैं) लोगों को एक सूत्र में कैसे बाँधा जा सकता, यही सोच इस परिचर्चा का आधार है।

राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसके सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संसार से होती है। भोजन एवं परिधानों से भी राष्ट्र निश्चय जाना जाता है। किंतु साहित्य एवं संस्कृति ही असली छाप डालने में समर्थ होते हैं। इन दोनों का गहरा एवं अंतरंग संबंध भाषा से होता है। इन दोनों को जीवित रखने के लिए भाषा का जिन्दा रहना अनिवार्य है। देववाणी संस्कृत इसका ज्वलंत प्रमाण हैं दसवीं शताब्दी तक की व्यवहारिक भाषा धीरे-धीरे लुप्त होती गई और इसके कारण संस्कृत साहित्य एवं इसके साथ जुड़ा हुआ सांस्कृतिक परिवेश भी समाप्त हो गया। यही हाल किसी भी अन्य भाषा के साथ, भविष्य में, भी हो सकता है। इसको हर भारतीय के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। किसी भी राष्ट्र की भाषा पर बाहरी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और राष्ट्र की आम जनता एवं उसके कर्णधारों को इसका खुल कर विरोध करना चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थितियाँ राष्ट्र की सोच का रूख बदल देती हैं तथा देश अपंग होने की कगार पर आ कर खड़ा हो जाता है। भाषाविद् एवं भाषायी मनोवैज्ञानिक एक मत हैं कि रचनात्मक उत्पाद उसी भाषा में उत्कृष्ट होता है जिसमें रचनाकार सोचता है और वह होती है, उसकी मातृभाषा। रचनात्मक उत्पाद ही देश की भावी दिशा को निर्धारित करता है। अतः यह अनिवार्य है कि भारतवासियों की विभिन्न मातृभाषाओं को और अधिक सशक्त बनाया जाए तथा सबका यह नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दायित्व होना चाहिए कि वे अपनी-अपनी मातृभाषाओं में अपने विचारों को मौखिक एवं लिखित रूप में व्यक्त करने में समर्थ हों।

आदिकाल से भारत में भाषा के बदलते हुए स्वरूप एवं उनके पीछे छिपे हुए सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों पर लगभग 3 वर्ष पूर्व कादम्बनी में श्री संतोष कुमार खरे का एक सुंदर आलेख छपा था। उन्होंने अपने आलेख के प्रारंभ में ही भाषा की उपयोगिता के बारे में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''संचार का माध्यम होने के अलावा भाषा की समाज में दो और महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। एक तो वह धन-बल के वितरण को प्रवाहित करती है, विशेषकर एक अर्द्ध शिक्षित समाज में। दूसरे, वह समाज के भावात्मक और सांस्कृतिक संघटन को मजबूत करने का काम करती है'' इक्कीसवीं सदी की स्थितियों के संदर्भ में संतोष खरे की मान्यता है- ''राज्य और केंद्र के उच्च अधिकारियों के लिए अँग्रेजी में दक्षता आवश्यक बनी रहनी चाहिए''। मेरे विचार से उन्होंने बस यहीं पर सबसे बड़ी भूल की है और उनकी इसी सोच ने हिंदी साहित्य को एक नई संज्ञा देते हुए ''भाषायी दलितों'' के बारे में उल्लेख किया है। **भारत की भाषा के बदलते हुए स्वरूप में इस बाह्य भाषा का क्या स्थान होना चाहिए जिससे कि देश की सार्व भौमिक अखण्डता एवं एकता को और अधिक खतरा न हो, यह एक चिंतन एवं मनन का अहम विषय है।** इसका यथोचित स्थायी हल ढूँढ़ना राष्ट्र की प्राथमिकता बन चुका है। इसके अभाव में राष्ट्र के पुनः विघटित होने की संभावना बन रही है और जिसके लिए हम सबको जागरूक होना पड़ेगा। नए सिरे से एक वैचारिक क्रांति कैसे लाई जा सकती है और गिलहरी के समान हम सब कैसे इस पावन यज्ञ में अपना-अपना योगदान कर अपनी समिधा डाल सकते हैं, इस परिचर्चा का मूल

आधार है।

यह निश्चित है कि भाषा को धनोपार्जन से काटा नहीं जा सकता है। अत: भाषा की आर्थिक उपयोगिता होनी ही चाहिए। इसी कारण अँग्रेजों के आगमन ने फारसी को अँग्रेजी से विस्थापित कर अपना साम्राज्य फैलाया जो कि फैलता ही जा रहा है। पाँच हजार वर्ष से भी ज्यादा की भारतीय परंपरा बदल दी गई और पेट भरने के लोभ में लोगों ने उफ़ तक नहीं की। अब परिस्थिति भिन्न है। हम स्वतंत्र हैं और हमको अपना भाग्य निर्धारित करना चाहिए। हम दलीलों के जंगल में फंसना एवं उसके अंदर घिर कर घुट-घुट कर मरना नहीं चाहते हैं। हमें अपने लिए, अपनी पहचान एवं भावी पीढ़ी के लिए ठोस सकारात्मक कदम उठाना चाहिए।

1949 के संविधान में सुरक्षित ''त्रिभाषायी सूत्र'' असफल रहा है। इसके असंख्य कारण हैं और हो भी सकते हैं। इस सूत्र ने देश को ही नहीं हमारी सोच को भी गुलाम बना दिया है। और हम भारतीय कम अँग्रेज ज्यादा होते जा रहे हैं और इसको शीघ्र ही रोकना होगा या यूँ कहें कि एक योजनाबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत सबको एक जुट हो कर कार्य करना होगा। विश्व के अनेक समृद्ध देशों में सारा काम-काज अँग्रेजी में न होकर उनकी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही होता है और वह गर्व से दूसरे देशों में भी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही अनुवाद के माध्यम से संवाद करते हैं चीन इसका ज्वलंत उदाहरण है। आर्थिक दृष्टि से चीन विश्व के मानचित्र पर नित नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है और कोने-कोने में उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध हैं। हमें चीन, कोरिया एवं जापान जैसे राष्ट्रों से भारत के चिरस्थायी भविष्य के लिए सीख कर भाषायी समस्या का यथोचित समाधान करना चाहिए।

आदिकाल से भारत में दो भाषाओं के समूह साथ-साथ रहे हैं, यह एक ऐतिहासिक सत्य है। इक्कीसवीं शताब्दी में हमको पुन: इस द्विभाषायी सूत्र को बहुभाषायी भारत में अपनाना चाहिए। इस सूत्र के अनुसार भाषायी विभाजन नहीं होगा और न ही भाषाओं को उच्च या निम्न वर्गों में बाँटा जाएगा। भाषा अपना स्थान स्वत: निर्धारित कर लेगी और एक सरिता की तरह सरलता से अपना मार्ग खोज कर बहने लगेगी। इस सरिता के मार्ग से अवरोधों को हटाना होगा तथा प्रेम पुष्प को पुष्पित एवं पल्लवित होने के लिए सही वातावरण प्रदान करना होगा।

इक्कीसवीं शताब्दी में भारत का द्विभाषायी स्वरूप

''मन के जीते जीत है, मन के हारे हार'' ही वास्तव में किसी योजना या परिचर्चा की सफलता या असफलता का मूल निर्णायक होता है। भौतिक धरातल पर प्राप्त की गई विजय सामयिक एवं सीमित ही होती है। चिर-स्थायी विजय की प्राप्ति के लिए जन मानस के दिलों में स्थान बना उनके भौतिक साधनों का उपयोग कर आगे बढ़ने से ही किसी सामूहिक, राष्ट्रीय अथवा सार्वभौमिक समस्या का समाधान हो सकता है। भारत की भाषायी समस्या, हम सब जानते है बड़ी जटिल ही बन गई है जिसमें एक भाई/बहिन दूसरे भाई/बहिन के मंतव्यों पर शक करने लगा है, ऐसा प्रतीत होता है। राष्ट्र के निर्माण एवं संगठन के लिए यह एक बहुत ही बड़ी गंभीर समस्या है और इसका हल हम सबको एक जुट हो कर ढूँढ़ना ही पड़ेगा। त्रिभाषायी (अँग्रेजी, हिंदी-क्षेत्रीय भाषाएँ। सूत्र में मंतव्य यह था कि भारत की जनता अँग्रेजी, हिंदी और एक क्षेत्रीय भाषा का अध्ययन करेगी। दक्षिण ने इसको सही ढंग से गले लगाया और हिंदी का प्रचलन होने लगा। उत्तरी क्षेत्रों के लोगों ने क्षेत्रीय भाषाओं को न अपना कर संस्कृत को गले लगाया और त्रिभाषायी सूत्र की आत्मा को चोटिल किया और इससे अहिंदी भाई/बहिनों के हृदयों में भाषा को लेकर शक के बीज पल्लवित होने लगे और उन्होंने हिंदी को सहर्ष स्वीकार करने में हिचकिचाहट प्रारंभ कर दी। इस स्थिति ने अँग्रेजी को बल दिया और वह बढ़ती गई, तथा हिंदी हाशिए पर आने लगी। करना क्या है? बहुभाषायी भारत में निम्नलिखित भाषाओं के समूह को अंगीकार कर आगे बढ़ना है:

1. क्षेत्रीय भाषा समूह
2. संपूर्ण भारत भाषा

क्षेत्रीय भाषा समूह

राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म, साहित्य, शासन और काम-काज के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को और अधिक सशक्त बनाकर पेट से जोड़ना होगा। एक सुनियोजित योजनाबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत बाह्य भाषा अँग्रेज़ी को, विस्थापित करना होगा। इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में 20 से 30 वर्ष तक लग सकते हैं। क्योंकि अँग्रेज़ी हमारी शिराओं तक में जा चुकी है। धीरे-धीरे अँग्रेज़ी भाषा पर किया जाने वाला व्यय अन्य भाषाओं को समृद्ध बनाने में खर्च करना होगा। एक क्षेत्रीय अनुवाद काउंसिल के अंतर्गत क्षेत्रीय अनुवाद केंद्रों की स्थापना होनी चाहिए जिससे क्षेत्रीय सूचनाएँ सभी को मिलती रहें। आज के समय में क्षेत्रीय भाषाओं की कीमत पर अँग्रेज़ी पनप रही है। इसके विस्तार निस्तार को रोकना अनिवार्य है। क्षेत्रीय भाषाओं को सशक्त बनाने के सुझाव में किसी भी राष्ट्र प्रेमी को आपत्ति न होगी ऐसा मैं मानकर चलता हूँ।

संपूर्ण भारत भाषा

क्षेत्रीय आदान-प्रदान को सहज एवं सरल बनाने के लिए एक संपर्क भाषा का होना अनिवार्य है। फिलहाल वैश्वीकरण की चिंता से मुक्त होकर ही सोचना होगा, क्योंकि हो सकता है राष्ट्र को सशक्त बनाने एवं एकता के सूत्र में पिरोने के मार्ग में अन्य चिंताएँ बाधक बनने लगें। इस समस्या का समाधान बाद में दिया गया है। स्वतंत्रता के उपरांत राष्ट्रनायकों के क्या मंतव्य थे वह सभी जानते हैं। इस मंतव्य में हम असफल रहें हैं यह विवादित भी नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि संपूर्ण भारत की भाषा का चयन कैसे किया जाए जिसमें लगभग सबको निष्ठा हो और इस भाषा को हर भारतीय मातृभाषा के रूप में देखें। सतही तौर पर हम कुछ भी कह या कर सकते हैं किंतु निष्ठा और आस्था को जागृत किए बगैर कोई भी कदम उठाना आज के संदर्भ में घातक होगा। अँग्रेज़ी

भाषा का विस्थापन इससे जुड़ा है। इसको कैसे कर सकते हैं, गीतांजलि बहुभाषायी साहित्यिक समुदाय बर्मिंघम यू.के. ने प्रस्तावित कर एक बहुभाषाी संगोष्ठी (27 से 29 अगस्त 2005) में पहला कदम उठाने का प्रयत्न किया है। इस परियोजना का हम आगे चल कर निरीक्षण करेंगे।

भारतीयों में सार्वभौमिक अखंडता

इस समीकरण में अप्रवासी भारतीयों का सम्मिलित होना अनिवार्य है। कैरेबियन में बसे लाखों भारतीयों की पीड़ा से हम अनभिज्ञ नहीं हैं और यही पीड़ा अन्य देशों में बसे भारतीयों की भी होती जा रही है। उनकी सोच में भारत ने उनके साथ दत्तक बच्चों सा सलूक कर उनको स्वयं ही अपनी-अपनी समस्याओं से जूझने के लिए विश्व के महासागर में छोड़ दिया है। यह एक चिंता का विषय बन सकता है। भारत को एक बड़े शक्तिशाली राष्ट्र में परिवर्तित करने के लिए यह अनिवार्य है कि देश-विदेश में बसे भारतीयों को एक माला के समान एकता के सूत्र में पिरोया जाय। इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए उनका भावात्मक, सांस्कृतिक एवं भाषायी जुड़ाव आवश्यक है। विभिन्न भाषाओं के प्रयोग के साथ ही यह संभव हो सकता है यदि हम आपस में शुद्ध प्रेम एवं स्नेह का नाता जोड़ लें और एक दूसरे की मान्यताओं, विश्वासों एवं आस्थाओं का सम्मान एवं स्वागत कर उनको समझने का वास्तविक प्रयास करें। स्वतंत्र भारत में यह निश्चय ही संभव हो सकता है और यही कारण है कि 14 अगस्त 1947 को राष्ट्र गुरु श्री अरविंदो घोष ने अपने कुछ सपनों को रेडियो पर प्रसारित किया था। उनका पहला सपना था- ''स्वतंत्र एवं अखण्ड भारत के लिए एक क्रांतिकारी आंदोलन''। इसके मतलब यह निकलते हैं कि इस युग दृष्टा ने लगभग 60 वर्ष पूर्व ही भारत के पुन: खण्डित हो सकने के कुछ चिन्ह अवश्य देखे थे। यही डर हमारा भी है, क्योंकि हम निश्चय ही स्वतंत्र हैं किंतु एक नहीं। व्यक्तिगत रूप से भारतीयों ने अपनी पहचान बनाई है, किंतु सामूहिक भारतीय पहचान बनाने में हम असफल रहे है। इसके लिए यह अनिवार्य है कि हर भारतीय को अपनी भारतीयता पर गर्व हो जिसके लिए उसको मर मिटने के लिए तत्पर होना चाहिए। हमारी सोच है कि यह कार्य भाषा के आधार पर प्रारंभ किया जा सकता है और समयानुकूल इसमें और मुद्दे भी जोड़े जा सकते हैं।

प्रस्तावना

प्रांत, देश, परिवेश, परिस्थिति, काल, अनुभव, भाषा, संस्कृति, शिक्षा, जागरूकता, राजनीतिक वातावरण, आर्थिक दृढ़ता आदि हर प्राणी के भिन्न होते हैं, इसके आधार पर प्रत्येक भारतीय के दृष्टिकोण भिन्न हो सकते हैं। वे सब सार्वभौमिक अखण्डता को बनाए रखने के लिए विभिन्न विचार रख सकते हैं। इस सोच के आधारस्वरूप आपसी विचार विनिमय के लिए अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों की योजना की गई है जिसमें विद्वान अपने विचार अपनी-अपनी भाषाओं में एक आलेख में व्यक्त कर उनको अपनी ही भाषा में प्रस्तुत भी करेंगें। आपसी आदान-प्रदान एक संपर्क भाषा के माध्यम से हो सकता है और जब तक हम संपूर्ण भारत की भाषा पर एक मत नहीं हो जाते हैं लगता है वह भाषा अँग्रेजी ही होगी। आलेखों की प्रस्तुति के माध्यम से लोग विभिन्न भाषाओं की ध्वनियों से परिचित होंगे और धीरे-धीरे समझने भी लगेंगे जिससे सहिष्णुता बढ़ेगी, ऐसा मैं मानता हूँ। भाषायी समन्वय का यह संगम औपचारिक एवं सद्भावना बढ़ेगी। राष्ट्र नायक श्री राम मनोहर लोहिया जी ने भी अनेक योजनाओं का सूत्रपात कुछ ऐसे ही विचारों से किया था, किंतु राजनैतिक वातावरण प्रतिकूल होने के कारण उनका भाषायी समन्वय का सपना साकार न हो सका। संपूर्ण भारत की भाषा का चयन करने के ध्येय से अधोलिखित कार्यक्रम का प्रस्ताव है:

1. विभिन्न मातृ भाषाओं में आलेखों की प्रस्तुति तथा संपर्क भाषा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान।

2. बहुभाषीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

3. बहुभाषीय कवि सम्मेलनों का आयोजन।

4. ''संगोष्ठी कार्यवाही'' का कार्यक्रम के प्रारंभ से पहले ही वितरण।

इस शृंखला का पहला कार्यक्रम 27 से 29 अगस्त 2005 तक बर्मिंघम में संपन्न हुआ था जिसमें भारतीय भाषाओं के अनेकों विद्वानों ने भाग ले कर यह स्थापित किया था कि इस योजना के माध्यम से हम एक साझा प्रस्ताव तैयार कर ''भारतीयता'' की पहचान के वास्ते ''संपूर्ण भारत भाषा'' की कल्पना कर सकते हैं। इस पहली संगोष्ठी के अंत में सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित कर भारत सरकार को भेज दिए गए थे।

आई.एम.एस 2005 में पारित प्रस्ताव

1. ''भारतीयता'' के नारे को अग्रसर करना प्रत्येक भारतीय का उद्देश्य होना चाहिए।

2. सभी भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिए और इसके लिए केंद्रीय सरकार को यथोचित संसाधन उपलब्ध कराना चाहिए।

3. भारतीय भाषाओं के बीच विभिन्न कार्यक्रमों के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

4. ''अनुवाद एवं विचार विनिमय'' के लिए एक राष्ट्रीय केंद्र की स्थापना होना चाहिए जिसकी शाखाएँ अन्य क्षेत्रों में भी होनी चाहिए।

5. एक भाषा के साहित्य को अन्य भाषाओं में अनुवाद-प्रक्रिया को बढ़ावा देने तथा प्रोत्साहित करने के साथ ही सम्मानजनक स्थान भी दिया जाना चाहिए।

6. उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले अनुवादों को विभिन्न प्रकार से विद्वतापूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित करना चाहिए।

7. सुनियोजित वैज्ञानिक ढ़ंग से हर भारतीय को हिंदी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिससे कि वह भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति की पहचान बन सके।

8. राष्ट्र को अँग्रेजी भाषा के प्रयोग से दूरी बढ़ाते हुए भारतीय भाषाओं के साथ

निकटवर्ती संबंध बनाना चाहिए।

9. भारत की चिरस्थायी सफलता को सुरक्षित रखने के लिए, सुनियोजित, काल निर्धारित योजनाबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत ऊपर दिए गए सभी सूत्रों को सही रूप से अपनाने के अतिरिक्त भारतीयों के पास और कोई अन्य रास्ता नहीं है।

10. संस्कृत एवं अन्य शास्त्रीय भाषाओं को पुन: जीवित करने के लिए भरसक प्रयास करना चाहिए।

11. ऊपर दिए गए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत एवं विदेशों में "बहुभाषी सम्मेलनों एवं संगोष्ठियों" का आयोजन होना चाहिए।

12. भारत सरकार को "विश्व हिंदी सम्मेलनों" के साथ-साथ "विश्व बहुभाषी सम्मेलनों" का आयोजन शीघ्र ही प्रारंभ करना चाहिए।

13. प्रवासी भारतीयों को भाषायी समरसता का कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

14. उच्चस्तरीय एवं वयस्क शिक्षा के लिए और अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। इस कार्य के लिए सरकारी एवं निजी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वह वयस्कों को विदेशी भाषा का ज्ञान एवं प्रशिक्षण दे सकें।

15. यह संगोष्ठी पुरजोर सिफ़ारिस करती है कि भाषायी समरसता को आगे बढ़ाने के लिए केंद्रीय सरकार "भारतीय भाषाओं का राष्ट्रीय आयोग" शीघ्र ही स्थापित करे।

16. केंद्रीय सरकार भारतीय भाषाओं के लिए यूनीकोड तथा अन्य संबंधित आई. टी. उपकरणों को बढ़ावा देने के लिए यथोचित संसाधनों की व्यवस्था करे, जिससे कि "भारत की सार्वभौमिक अखण्डता एवं एकता" को भारत तथा विश्व में स्थापित किया जा सके। इसके लिए भारत तथा विदेशों में व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना आवश्यक है।

इस परियोजना को सफल बनाने के उद्देश्य से इसका अगला कार्यक्रम इसी रूपरेखा के अनुसार 2006 या 2007 में भारत में होना निर्धारित हुआ था। विभिन्न संगठनों से सहयोग मिलने की पूर्ण आशा है जिसमें श्री सोम ठाकुर एवं श्री उदय प्रताप सिंह जी के सहयोग से यू.पी. हिंदी संस्थान लखनऊ की भूमिका अहम होगी ऐसा मैं मानता हूँ। इस वर्ष हुए कार्यक्रम में भी इनके माध्यम से ही यह सफल हो सका था।

वैश्वीकरण में इस परियोजना की सार्थकता

भूमण्डलीकरण के इस युग में हम अपने को अलग-अलग करके जीवित नहीं रख सकते हैं। विचारों एवं उत्पादों का आदान-प्रदान अनिवार्य है जिसके लिए अपने सहयोगी राष्ट्रों की भाषा एवं संस्कृति का समुचित ज्ञान लाभप्रद होता है। विश्व में अँग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में उभर कर आई है। वैश्वीकरण को ध्यान में रखते हुए अँग्रेजी रहित द्विभाषी भारत में अधोलिखित कार्यक्रम को अपनाना होगा।

1. ब्रिटिश कांउसिल के समान जगह-जगह पर अनेक केंद्रों को स्थापित किया जाए, जिनके माध्यम से :

1. विदेश जाने वाले लोग काम काज की व्यवहारिक भाषा 2-3 सप्ताह में सीख सकें।

2. गंतव्य स्थान की संस्कृति के बारे में यथोचित ज्ञान ले सकें।

ऊपर लिखे कार्यक्रम के व्यय को टैक्स के माध्यम से नियोजित किया जा सकता है या अन्य कोई सरकारी योजना ही बनाई जा सकती है।

उपसंहार

भारतीयों की सार्वभौमिक अखण्डता के लिए भारतीयता की पहचान एवं इसमें आस्था रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर एक सुनियोजित कार्यक्रम के अनुसार द्विभाषायी सूत्र को अंगीकार कर एक निर्धारित समय में भारत को अँग्रेजी भाषा से मुक्त कराने में ही राष्ट्र का कल्याण एवं चिरस्थायी लाभ होगा। भारतीयों की अखण्डता एवं एकता के लिए प्रस्तावित परियोजना का सफल बनाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। "संपूर्ण भारत भाषा" के चयन में ज़ल्दबाजी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सावधानी, सतर्कता एवं संवेदनशील विचारों के आधार पर इस प्रक्रिया को आधारित करना चाहिए। यद्यपि इस कड़ी की पहली संगोष्ठी में पारित प्रस्ताव 7 के अंतर्गत हिंदी की ओर इशारा किया गया है, किंतु मेरी धारणा है इसको और अधिक परिपक्व होने की आवश्यकता है।

संपर्क- संस्थापक एवं अध्यक्ष
गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिकम समुदाय
21 विडफॅर्ड ड्राइव, सेली ओक
बर्मिंघम, बी 29 6 क्यू.जी.(यू.के.)

पेज नं. 12 का शेष भाग

चलकर 'देशबंधु' के नाम से प्रतिष्ठित हुए। चितरंजनदास के सशक्त तर्क से अरविंद घोष तीन माह की जेल के बाद रिहा हो गये।

वारीन्द्र घोष, उपेन्द्रनाथ बनर्जी, उल्लासकर दत्त, इंद्रभूषण राय, कन्हैयालाल दत्त, हेमचन्द्र दास आदि का मामला लंबा खिचता गया। क्रांतिकारियों की धड़पकड़ के नाम पर मासूम लोगों को अकारण सताया जाने लगा। जब क्रांतिकारियों ने यह महसूस किया कि उन पर लगा अभियोग तो नहीं छूटेगा और साथ ही मासूम लोग भी पिसते जा रहे हैं, तो वारीन्द्र के साथ अन्यों ने भी अपने बयानों में भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई की बात स्वीकारी। इन क्रांतिकारियों को काला-पानी की सजा सुनाई गई।

अरविंद घोष ने अपनी जेल-यात्रा के दौरान चिंतन-मनन किया और आध्यात्म की ओर रूख किया। उन्होंने फ्रांसिसी टापु पांडिचेरी को अपना नया आशियाना बनाया जहाँ वे अंतिम समय तक आध्यात्मिक चिंतन-मनन करते हुए प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु की ख्याति प्राप्त की। इस प्रकार दो भाइयों का अलग-अलग टापुओं पर अलग-अलग ढंग से अंत हुआ।

संपर्क: 1-8-28, यशवंत भवन
अलवाल, सिकंदराबाद
500 010 (आं.प्र.)

राष्ट्रीयता के बेरी

O आर० विक्रम सिंह

अरुंधती राय के रूप में कश्मीर को आजादी का नया पैरोकाल मिला है। वह अकेली न होंगी। बीमार बुद्धिजीवी मानसिकता इस मुल्क में अमरबेल के समान जिंदा रही है। ये मानसिकताएँ भी सरकारी ग्रांटों, पुरस्कारों पर अक्सर अलगाववादी राजनीति की बेलों के साथ पनपती है। बहरहाल, यह सब राष्ट्रीयता की राह में खड़ी की जाने वाली मामूली बाधाएँ हैं, जो अपनी हैसियत से बड़ा होने की कोशिश करती है।

कश्मीर अगर कोई समस्या है तो इसका समाधान क्याा है? न जाने कितने मंचों से, चाय की दुकानों से लेकर संयुक्त राष्ट्र तक समाधान खोजे जाते रहे हैं परेशानी यह है कि उस समस्या का समाधान कैसे किया जाए जो समस्या है ही नहीं? समाधान तो दूर, समस्या ही परिभाषित नहीं हो सकी है। यह समस्या मूलत: विभाजन के माहौल में शेख अब्दुल्ला की महत्वाकांक्षा से पैदा हुई थी। उस समय सोचा गया था कि वक्त के साथ समस्या के समाधान का कोई रास्ता बनेगा, लेकिन पाकिस्तान की राजनीति की मजबूरियों और अपने यहाँ के तुष्टीकरण ने ऐसा नहीं होने दिया।

कश्मीर विवाद के समाधान का रास्ता पाकिस्तान से होकर जाता है। तात्पर्य यह है कि कश्मीर पाकिस्तान के वजूद की मजबूरी बन चुका है। अगर कश्मीर मुद्दा न रहे तो पाकिस्तान का बिखरना हो सकता है या यूँ कहें कि अगर किसी दुर्भाग्य से पाकिस्तान बिखर जाए तो कश्मीर कोई मुद्दा न रहेगा। सियासत के खेल में प्यादे की भूमिका निभा रहे कश्मीर घाटी के 35 लाख लोगों की कोई गलती नहीं है। तुष्टीकरण के डोज और अनायास ही फोकस में रखे जाने के कारण वे सामान्य भारतीय नागरिक हो ही नहीं सके। हमारी नीतियों ने कश्मीर नागरिकों को कश्मीर की सीमाओं तक ही सीमित कर दिया। अनुच्छेद 370 की सीमाओं में ही रह जाने से अपनी आभासी दुनिया में वे राष्ट्रीय मानसिकता विकसित ही नहीं कर सके। वे उस बच्चे के समान हो गए जिसे अच्छी शिक्षा नहीं दी जा सकी है। उन्हें यह बताया जाना था कि तुम्हारी हदें सिर्फ घाटी के छोटे से समाज तक ही नहीं है।

जरूरी था कि सस्ता सरकारी राशन खाने के बजाय वे रोजगार, कारोबार की तलाश में शेष भारत जाते। दुर्भाग्य से राजनीति के राष्ट्रीय धुरंधरों की ऐसी सोच नहीं है। वे सरकार और सत्ता से आगे कहाँ सोच पाते हैं? यह समझना जरूरी था कि कश्मीरी पंडितों में अगर कश्मीरियत के साथ राष्ट्रीयता की सोच जिंदा है तो यह सोच वहाँ के मुसलमानों में क्यों नहीं है? 60 वर्षों का तुष्टीकरण हमें इस मुकाम तक ले आया है कि आज जम्मू के राष्ट्रीय झंडे के बरक्स घाटी में पाकिस्तानी झंडा लहराया जा रहा है। इसलिए आगे का रास्ता अब तुष्टीकरण का नहीं है। समस्या के अपने आप समाधान के इंतजार में बैठे नेताओं का मुकाबला मजहबी उन्माद और आतंकवाद से हो गया है।

विभाजनकारी राजनीति से सत्ता प्राप्ति में दक्ष नेतृत्व के पास तुष्टीकरण का डोज बढ़ाने के अलावा समाधान का कोई रास्ता है ही नहीं। इसलिए वे बार-बार वार्ताओं की ही रट लगाए रहते हैं, जबकि इस समस्या का समाधान अब राजनीति की परंपरागत सीमाओं से बाहर चला गया है। दुनिया में पाकिस्तान एक गैर-कानूनी फौजी सरकारें ही स्वाभाविक लगती है। हमारी समस्या कश्मीर नहीं, बल्कि पाकिस्तान है। एक विवेकपूर्ण कश्मीरी कभी भी पाकिस्तान के साथ नहीं जाना चाहेगा। शेख अब्दुल्ला कश्मीर को पंजाबी कालोनी बनने से बचाने के लिए ही भारत के साथ आए, क्योंकि वह जानते थे कि पाकिस्तान में शामिल होने के बाद तो आजादी का आंदोलन असंभव है, जबकि भारत में आगे चल कर यह संभव हो जाएगा।

जम्मू के इस आंदोलन से लाभ यह हुआ है कि हमें कश्मीर समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देखने में मदद मिली है। जाहिर हो गया है कि कश्मीरियत एक ढकोसला था। कश्मीरी पंडितों को निकाल बाहर करना अलगाववाद की रणनीति के लिए जरूरी था। क्यों न वह सुरक्षित इलाका उसी घाटी में चिन्हित किया जाए जहाँ 5 लाख कश्मीरी पंडितों का समाज अपने पूरे अधिकार के साथ रह सके?

यह मांग रखने पर अलगाववादियों की असलियत और खुलकर सामने आ जाएगी। हमें जानना चाहिए कि जो लोग श्राइन बोर्ड को अस्थायी रूप से 100 एकड़ देने को तैयार नहीं, क्या वे कश्मीरी पंडितों के लिए जमीन देंगे? भारतीय मुस्लिम समाज, जो 1947 से पाकिस्तान के विचार का आलोचक रहा है, कश्मीर पर खामोश क्यों है? आज भारतीय राजनीति की बहुत सी तुष्टीकरणवादी समस्याओं का समाधान राष्ट्रवादी मुस्लिम समाज के हाथ में है।

(लेखक पूर्व सैन्य अधिकारी हैं)

भारतीय संस्कृति में हिंदू-मुस्लिम रिश्ते

○ नंदलाल

यह सच है कि कई दौर में हिंदू और मुसलमान एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहे हैं, पर यह भी उतना ही सत्य है कि कई दौर ऐसे भी रहे हैं जब दोनों एक साथ राजी-खुशी रहे। भारतीय संस्कृति के कई पक्ष ऐसे हैं जिस पर दोनों की साझा कोशिशों की मुहर लगी है जैसे शास्त्रीय संगीत। यही नहीं दोनों सदियों से एक ही सरजमीं पर रह रहे हैं और दोनों की साझा संस्कृति से उपजे भावुक राष्ट्रवाद की बात होती है।

आजादी के बाद देश के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने अक्टूबर 1947 में कहा था, 'हमारे देश में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, लेकिन संख्या में वे इतने ज्यादा हैं कि अगर वे चाहें भी तो भी कहीं और नहीं जा सकते। यह वह मूलभूत तथ्य है, जिस पर कोई बहस नहीं हो सकती। पाकिस्तान कितना भी भड़काए, गैर मुसलमानों की वहाँ जितनी भी बेइज्जती की गई हो, हमें अपने इन अल्पसंख्यकों से सभ्य समाज की तरह ही व्यवहार करना होगा। लोकतांत्रिक देश में हमें उन्हें सुरक्षा और नागरिक के सारे अधिकार देने ही होंगे।'

जब हम हिंदू-मुस्लिम रिश्तों पर एक नजर डाल रहे हैं, तो दो विपरीत विचारधाराओं के शीर्ष नेतृत्व के विचारों पर गौर करना लाजिमी हो जाता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लंबे समय तक सर संघचालक रहे गोलवलकर ने सन 1966 में बैंगलुरु से प्रकाशित अपने भाषणों के संग्रह 'बंच ऑफ थॉट्स' के परिशिष्ट में सन् 1956 में कहा था, 'हमें जिसमें भी विश्वास करते हैं, मुसलमान उसके विरोधी हो जाते हैं। हम मंदिर में पूजा करते हैं, वे उसे अपवित्र करते हैं। हम गाय की पूजा करते हैं, वे उसे खाते हैं। अगर हम औरत को पवित्र माँ का प्रतीक मानते हैं, तो वे उसकी इज्जत से खिलवाड़ करते हैं। वैधार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से हमारी जीवन-शैली का हर तरह से विरोध करते हैं। वे मान बैठे हैं कि शत्रुता ही मूल है।' यह तो हुई गोलवलकर की बात। इसके ठीक 16 साल पहले यानी मार्च, 1940 में लाहौर में आयोजित मुस्लिम लीग के एक सालाने जलसे में मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था, 'भारत में समस्या अंतर-सांप्रदायिक नहीं है, यह एक तरह से अंतरराष्ट्रीय चरित्र से जुड़ी है और इसका समाधान भी इसी तरह होना चाहिए। यह बस एक सपना ही है कि हिंदुओं और मुसलमानों को अपनी एक समान राष्ट्रीयता बनानी होगी। यह एक भ्रम है कि भारत की एक समान राष्ट्रीयता होगी, यही सारी समस्याओं की जड़ है। और अगर हम अपने तौर-तरीकों को समय रहते नहीं बदल सके, तो यह भ्रम भारत को तबाह कर देगा। हिंदू और मुसलमान के मजहबी फलसफे अलग हैं, उनकी सामाजिक परंपराएँ अलग हैं उनका साहित्य अलग है। उनमें रोटी-बेटी को संबंध नहीं होता। वे दो अलग-अलग सभ्यताओं के लोग हैं। उनकी सोच और समझ एक दूसरे की विरोधी हैं। जिंदगी का उनका नजरिया भी अलग-अलग है।'

इन दोनों के विचार अलग-अलग हैं पर समानता यह है कि दोनों यह मानते हैं कि हिंदू हिंदू हैं और मुसलमान मुसलमान। मगर भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उपर्युक्त दोनों महानुभावों के विचारों का विरोध करते हुए लाहौर में हुए मुस्लिम लीग के जलसे के ठीक एक सप्ताह पहले बिहार के रामगढ़ कस्बे में आयोजित एक सभा में कहा था। यह तो हिंदुस्तान की ऐतिहासिक फितरत है कि यहाँ मानव जाति की कई संस्कृतियाँ एक साथ रहती हैं। कई संस्कृतियों ने इसकी जमीन को अपना बसेरा बनाया। कई कारवां यहा रुके और यहीं रह गए। हिंदुस्तान में हिंदुओं और मुसलमानों के ग्यारह सौ साल के साझा इतिहास की कई उपलब्धियाँ हैं। हमारी जबान एक जैसी हैं, हमारी शायरी एक जैसी है साहित्य एक जैसा है, हमारी संस्कृति, हमारी कला, हमारी वेशभूषा, हमारे व्यवहार, हमारी परंपराएँ, रोजाना की जिंदगी की न जाने कितनी ऐसी चीजें हैं, जिन पर हमारी साझा मुहर लगी हैं। हजारों साल के इस साझा जीवन ने हमें एक ही साझा राष्ट्रीयता के साँचे में ढाल दिया है-अब यह हमें अच्छा लगे या न लगे। अब हम एक भारतीय राषट्र हैं-एकताबद्ध और अलग न हो सकने वाले। कल्पना की कोई भी उड़ान या कोई भी षड्यंत्र हमें तोड़कर अलग-अलग नहीं कर सकता।'

उपर्युक्त दोनों कट्टरपंथी महानुभावों के विचारों के आलोक में मौलाना अबुल कलाम आजाद के विचार काफी तार्किक और युक्ति संगत हैं। वैसे इतिहास भी साक्षी है कि अतीत में हिंदुओं और मुसलमानों के रिश्ते प्रेम और भाईचारे के रहे हैं। कभी कभार नफरत के बावजूद उनमें आपसी सहयोग और भाईचारा बरकरार रहा है।

वर्तमान दौर में यदि हिंदू-मुस्लिम के रिश्तों में खाटास देखने में आ रहा है, तो प्रमुख कारण है पाकिस्तानी आतंकवाद में उत्तरोत्तर वृद्धि। सामान्यतया धारणा यही है कि इस देश में जो बम बिस्फोट तथा विध्वंसक कार्रवाइयाँ हुई हैं उनमें आई एस आई का हाथ रहा है जबकि पाकिस्तान स्वयं आतंकी हमलों का शिकार है। उनकी धारणा यह है कि 'रा' ही उनके देश में हिंसककृत्यों के पीछे हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि दोनों देशों की गुप्तचर एजेंसियाँ

शेष भाग पेज नं. 25 पर

गणतंत्र के आर्थिक स्वरुप से तात्पर्यः-

गणतंत्र का आर्थिक स्वरूप पूँजीवादी अथवा समाजवादी

○ डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल'

गणतंत्र के आर्थिक स्वरूप से तात्पर्य है कि कोई प्रजातांत्रिक ढाँचे को अपनाने वाला देश अपनी अर्थ-व्यवस्था को किस प्रकार संचालित करेगा? वर्त्तमान विश्व में विभिन्न संप्रभुता-संपन्न देशों में दो प्रकार की अर्थ-व्यवस्था संचालित हैं-(1) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और (2) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था। किसी भी अर्थ-व्यवस्था की समुचित सफलता के लिये तीन कसौटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं-(1) वह देश के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के बुनियादी सुविधाएँ-रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, शुद्ध पर्यावरण, जल आदि-उपलब्ध कराने में समर्थ है। (2) देश के सर्वतोमुखी विकास के लिये उसके पास पर्याप्त धन अथवा आर्थिक संसाधन हैं। जिससे उसे देशी या विदेशी कर्ज का सहारा न लेना पड़े। (3) उससे संपूर्ण देश के साथ-साथ पूर्ण विश्व में सुख-शांति सुनिश्चित होती हो।

पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति कहाँ तक संभव?-वर्त्तमान विश्व में अधिकांश देशों में पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को ही अपनाया गया है। इस अर्थ-व्यवस्था की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नानुसार हैं-(1) पूँजी का अत्यधिक महत्त्व-इस अर्थ-व्यवस्था में पूँजी को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। फलतः जिन पूँजीपतियों के पास पूँजी होती है देश की अर्थ-व्यवस्था में उनका विशेष वर्चस्व होता है। वे देश के प्रशान को भी प्रभावित करते हैं। प्रशासन उन्हें प्रतियोगिता की पूर्ण छूट देता है किंतु यथासंभव किसी एक पूँजापति के किसी क्षेत्र में एकाधिकार को नियंत्रित करता है। (2) **मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी का निरंतर विकास।** इस अर्थ-व्यवस्था में पूँजीपतियों और उनकी कंपनियों में गला-काट प्रतियोगिता चलती रहती है। इस प्रतियोगिता में सदा आगे रहने के लिये पूँजीपति और उनकी कंपनियाँ निरंतर मशीनों और प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण में संलग्न रहती हैं। उद्देश्य होता है कम से कम लागत में अधिक से अधिक उत्पादन। ताकि वे गला-काट प्रतियोगिता में आगे रह सकें। (3) पूँजीपतियों और उनकी कंपनियों द्वारा देश-विदेश में अपनी आर्थिक इकाइयाँ-शाखाओं की स्थापना-बड़े-बड़े पूँजीपति और उनकी कंपनियाँ व्यापार-चुंबक (ठनेपदमे डंहदमजे) बन जाती हैं। इससे देश-विदेश का धन उनके पास जमा होने लगता है। जिस तरह तालाब में छोटी मछली को बड़ी मछली निगल जाती है उसी तरह बड़ी पूँजीवाली कंपनियाँ छोटी पूँजीवाली कंपनियों को समाप्त कर देती हैं। (4) **विश्व-व्यापार में वर्चस्व एवं पूँजीवादी कोषों की स्थापना**-विश्व-व्यापार में अपना वर्चस्व स्थापित करने वाली बड़ी-बड़ी कंपनियाँ-व्यापार चुंबक-अंतरराष्ट्रीय कोषों की स्थापना कर विश्व भर के देशों को कर्ज देने लगती हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष, विश्व-बैंक आदि इसी प्रकार की आर्थिक शक्तियाँ हैं। धीरे-धीरे ये अनेक देशों की अर्थ-व्यवस्था एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर भी अपनी पकड़ बना लेती हैं।

पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के परिणाम-पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के निम्नांकित परिणाम होते हैं-(1) **श्रम का शोषण और श्रमिक की बेकारी**-पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का सबसे घातक परिणाम होता है श्रम का तिरंतर शोषण। क्योंकि वे श्रमिक को कम से कम वेतन देकर अधिक से अधिक काम लेना चाहती है। इतना ही नहीं निरंतर मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप अधिकाधिक श्रमिक बेकार होने जाते है। अनेक श्रमिकों का स्थान एक मशीन ले लेती है कुछ श्रमिक तो नई मशीनों का संचालन करने की कला सीखकर कुशल तकनीशियन बन जाते है पर अधिकांश श्रमिक बेकार हो जाते हैं।(2) **श्रम और पूँजी में निरंतर संघर्ष**-पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का दूसरा घातक परिणाम होता है श्रम और पूँजी में निरंतर संघर्ष का प्रारंभ। चूँकि पूँजीपति श्रमिक से अधिक से अधिक काम लेकर उसे कम से कम वेतन देना चाहता है। फलतः श्रमिक का शोषण होता है और वह पूँजीपति से अपने अधिकार के लिये निरंतर संघर्ष करता रहता है। श्रम और पूँजी के निरंतर संघर्ष का दूसरा कारण होता है एक मशीन द्वारा अनेक श्रमिकों को बेकार कर देना। (3) **पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का तीसरा घातक परिणाम होता है आर्थिक विषमता का निरंतर विकास**-पूँजीवादी अर्ािं-व्यवस्था जहाँ पूँजीपतियों को पोषित करती है वहरीं वह श्रमिकों को शोषित करने का कारण बनती है। इससे नागरिकों और देशों के बीच आर्थिक विषमता-अमीरी और गरीबी का अंतर बढ़ता जाता है- अमीर नागरिक गरीब नागरिकों का और अमीर देश गरीब देशों का शोषण करते हैं जिससे आर्थिक विषमता राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती जाती है। (4) **पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का चौथा घातक परिणाम है विश्व शांति को खतरा एवं विश्व-युद्ध की संभावना में वृद्धि**-पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था नागरिकों और देशों के बीच आर्थिक विषमता बढ़ाकर मानव-जीवन में संघर्ष और अशांति के बीज बौनी है। इससे विश्व-युद्ध की संभावना बढ़ती है और विश्व-शांति भी खतरे में पड़ जाती है। पूँजीवादी देश दुसरे देशों का शोषण कर अपने देशवासियों की सुख-सुविधायें बढ़ाते हैं। इससे भी विश्व-शांति खतरे में पड़ जाती है। विकसित

देश विकासशील एवं अविकसित देशों का निरंतर शोषण करके भी विश्व-युद्ध को आमंत्रण देते है।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति कहाँ तक संभव?–समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के ठीक विपरीत दशा में चलती है। इस अर्थ-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं-(1)**श्रम का विशेष महत्व**-समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में श्रम अथवा श्रमिक को विशेष महत्व प्राप्त होता है। सरकार भी समाजवादी विचारधारा की होती है। जिसका लक्ष्य होता है श्रमिक का कल्याण। (2) आर्थिक स्रोतों का राष्ट्रीयकरण कर सरकार पूँजी पर अपना आधिपत्य स्थापित करती है। इस प्रकार सरकार स्वयं उद्योपति बन जाती है। सभी नागरिकों को रोटी, कपड़ा मकान, शिक्षा स्वास्थ्य की सुविधाएँ प्रदान करना सरकार अपनी जिम्मेदारी समझकर राष्ट्रीय उद्योगों की स्थापना करती है। देश की संपूर्ण पूँजी या आर्थिक संसाधन सरकार के पास होते हैं। व्यक्ति जन संपत्ति नाम की कोई चीज़ नहीं होती। सभी नागरिक सरकार के नौकर होते हैं। (3) **समाजवाद से साम्यवाद की ओर-एक पार्टी का अधिनायक शासन**-समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में एक पार्टी का, अधिनायक शासन स्थापित हो जाता है। प्रजातंत्र एक पार्टी के शासन की सीमा में घिर जाता है। (4) **स्वतंत्र विचारधारा अथवा विचारों की स्वतंत्रता के लिये कोई स्थान नहीं**-एक पार्टी के अधिनायक शासन में उस पार्टी की विचारधारा के अतिरिक्त किसी अन्य विचारधारा के लिये वहाँ स्थान नहीं होता। इस प्रकार प्रजातंत्र सीमाओं में घिर जाता है। मानव अधिकारों का हनन होता है।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के परिणाम-समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के निम्नांकित परिणाम सामने आए हैं-(1) **प्रतियोगिता का अभाव**-चूँकि सभी उद्योग सरकार के होते हैं अत: वहाँ उद्योगों के बीच प्रतियोगिता की गुंजाइश ही नहीं रहती सारा काम एक निश्चित व्यवसाा के अंतर्गत चलता रहता है।

(2) **कर्मचारियों में उत्साह की कमी**– व्यक्तिगत संपत्ति के अभाव के कारण कर्मचारियों में काम के प्रति उत्साह की कमी होती है। क्योंकि वह जानता है कि अधिक काम करने से उसे कोई विशेष सुविधा मिलने वाली नहीं है। (3) **काम कम खर्च अधिक**-मनुष्य का स्वभाव है कि वह व्यक्तिगत लाभ के लिये ही अधिक काम करने को त्त्पर होता है। चूँकि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में व्यक्तिगत लाभ या हानि के लिये कोई स्थान नहीं होता अत: कर्मचारी क्रमश: आलसी होता जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम होता है सरकार को निरंतर घाटा। उसे खर्च अधिक करना पड़ता है, किंतु उसके मुकाबले काम कम होता है। इससे उत्पादित वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना माल बेचने में सरकार को कठिनाई होती है। (4) **ओवर स्टाफिंग की समस्या**-समाजवादी अर्थ व्यवस्था में ओवर स्टॉफिंग की समस्या सहज ही उत्पन्न हो जाती है। अपने सभी नागरिकों को काम देने के चक्कर में प्राय: सभी सरकारी उद्योगों में आवश्यकता से अधिक कर्मचारी नियुक्त हो जाते हैं। इससे उत्पादित वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं। उनकी गुणवत्ता भी प्रभावित होती है जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजारों में वे प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाती। इससे देश के अंतरराष्ट्रीय व्यापार को क्षति पहुँचती है। साथ ही देश की अर्थ-व्यवस्था भी कमजोर पड़ जाती है।

आदर्श गणतंत्र का आर्थिक स्वरूप-पूँजीवादी एवं समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ समाजवादी अर्थ-व्यवस्था अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर असफल हुई है, जैसा कि रूस और दूसरे कम्युनिष्ट सहयोगी देशों में हुआ, वहाँ पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर भले ही सफल हुई हो-अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि देशों के नागरिक खुशहाल हैं- किंतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस अर्थ-व्यवस्था ने अनेक कठिनाइयाँ और समस्याएँ उत्पन्न की हैं विकासशील और अविकसित देशों का शोषण और उनकी ऋणग्रस्तता इसका ज्वलंत प्रभाव है। कोई भी गणतंत्र जो केवल राष्ट्रवाद का समर्थक है- केवल अपने राष्ट्र का हित चिंतन करता है बिना यह सोचे कि विश्व के अन्य देशों को अथवा शेष मानवता को उसके राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से कितनी परेशानियाँ झेलनी पड़ रही हैं; प्रशंसा का पात्र नहीं बन सकता। ऐसे गणतंत्र की तुलना उस खजूर के ऊँचे पेड़ से की जा सकती है जिससे न तो राहगीर को छाया मिलती हैं और न फल। एक आदर्श गणतंत्र को आज केवल अपने राष्ट्र की नहीं संपूर्ण विश्व की मानवता के कल्याण की भी बात सोचनी चाहिए। इतना ही नहीं अनावश्यकता पड़ने पर अंतरराष्ट्रीय हित के लिये राष्ट्रीय हित का बलिदान करने के लिये भी तत्पर होना चाहिये।

गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था से ही हल संभव-पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था व्यक्तिवादी है क्योंकि वह मुख्य रूप से एक व्यक्ति-पूँजीपति-के हित साधन में संलग्न होती है। फिर पूँजीपतियों की मदद से दूसरे राष्ट्रों का शोषण कर अपने राष्ट्र का पोषण करती है। समाजवादी व्यवस्था राष्ट्रवादी तो होती हैं, किंतु राष्ट्र के आर्थिक स्रोतों के राष्ट्रीयकरण, एक पार्टी के अधिनायक शासन, कर्मचारियों में प्रतियोगिता और उत्साह के अभाव, अधिक लागत कम उत्पादन ओवर स्टाकिंग आदि के कारण वह असफल हो चुकी है। ऐसी स्थिति में गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था का मानवतावादी दृष्टिकोण एवं पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था तथा समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के बीच समुचित समन्वय उसे आदर्श गणतंत्र की सफल अर्थ-व्यवस्था बना सकता है। अत: गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था न केवल विश्व को स्वार्थी और उग्र राष्ट्रवाद की समस्या से निजात दिला सकती है वरन संपूर्ण विश्व में सुख,

शांति और समृद्धि ला सकती है।

गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें-

(1) **मानवतावादी दृष्टिकोण-** गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था की पहली विशेषता है उसका मानवतावादी दृष्टिकोण जो उसे स्वार्थी राष्ट्रवाद एवं उग्र राष्ट्रवाद के दोषों से मुक्त करती है।

(2) **श्रम और पूँजी का समान महत्व**-गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था में श्रम और पूँजी का समान महत्व हैं उसके अनुसार श्रमिक कर्त्तव्य समझकर अपना काम करता है और उससे जीविकोपार्जन करता हैं पूँजीपति संपूर्ण संपत्ति का मालिक नहीं ट्रस्टी होता हैं संसार की संपूर्ण संपत्ति का मालिक ईश्वर को माना जाता है। अत: पूँजीपति ईश्वर की सम्पत्ति का ट्रस्टी बन उसका इस प्रकार उपयोग करता है कि उसके उद्योग में लगे सभी व्यक्तियों का समुचित हित साधन हो।

(3) **मानव और मशीन के बीच समन्वय**- जो मशीन अनेक श्रमिकों को हटाने का काम करती है उसका बहिष्कार किया जाता है, किंतु जो मशीन श्रमिक की उत्पादन क्षमता बढ़ाती है उसका सत्कार लिया जाता है।

(4) **किसी का शोषण नहीं सबका पोषण**-गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था न श्रमिक का शोषण करती है न पूँजीपति का वरन् वह सबका पोषण करती है। सबको रोजगार देने की व्यवस्था करती है। तब विश्व-कोष भी सबके पोषण हेतु उपयोग में आते हैं।

(5) **आर्थिक विषमता का अंत**-गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था में संपूर्ण विश्व वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा के कारण एक इकाई बन जाता है। इसमें सभी राष्ट्र एक दूसरे के प्रतियोगी नहीं सहयोगी बन जाते हैं। अत: विश्व में सुख शांति स्वयंमेव सुनिश्चित हो जाती है।

(6) आर्थिक स्रोतों के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। एवं अधिक लागत और कम उत्पादन की समस्या की स्वयं ही हल हो जाती है। कारण स्पष्ट है। पूँजीपति संपूर्ण पूँजी का मालिक नहीं ट्रस्टी बन जाता हैं और श्रमिक कर्त्तव्य समझकर निष्ठापूर्वक अपना काम करता है।

निष्कर्ष- इस प्रकार स्पष्ट है कि आदर्श गणतंत्र का आर्थिक स्वरूप न तो पूँजीवादी होना चाहिये और न समाजवादी उसे गाँधीवादी अथक मानवतावादी होना चाहिये।

संपर्क: 1436/सरस्वती कॉलोनी, चेरीताल वार्ड, जबलपुर (म.प्र.) 482002

URGENT DIGITAL PRINTING OF :
• CATALOGUES
• BROUCHERS
• PHOTOGRAPHS
• VISITING CARDS
• LETTER HEADS
• POSTERS ETC.

CONTACT FOR :
• COLOR Prints 12"x18"
• COLOR Photocopies A3
• PLASTIC I-CARDS

Anil Varshney
BALAJI
COMPU-PRINTERS

"Service with excellence & dedication"
9313410033
1/5, White House, Lalita Park, Laxmi Nagar, Delhi-110092 E-mail : balajic_p@yahoo.com

पेज नं. 22 का शेष भाग

असंतुष्टों और बागी तत्त्वों को बढ़ावा देने में एक-दूसरे के क्षेत्र में सक्रिय रहती हैं। पिछले दिनों समझौता एक्स-प्रेस में हुए बम विस्फोटों में आई एस आई का हाथ होने के बारे में उनके पास 'ठोस प्रमाण' हैं। इस्लामाबाद द्वारा बार-बार आग्रह करने पर भी इन ठोस प्रमाणों को उसे उपलब्ध नहीं कराया गया और न ही दोनों देशों की जनता के समक्ष उन्हें लाया गया।

जहाँ तक मैं समझता हूँ हिंदू और मुसलमान के रिश्तों में सुधार के लिए वार्ता का कोई दूसरा विकल्प नहीं है, चाहे इस्लामाबाद में सत्ता प्रतिष्ठान जितना भी क्षोभ क्यों न दिलाए। युद्ध कोई विकल्प नहीं है। खासतौर पर तब जब दोनों के पास ही परमाणु हथियार हैं। इस संदर्भ में एक और बात काबिले गौर है कि पाकिस्तान अपने फायदे के लिए तालिबान को महज एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल कर रहा है।

अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व काबुल में भारतीय दूतावास पर हमला जिसमें आई एस आई लिप्त था, इसका प्रमाण है। दरअसल, पाकिस्तान के सैनिक प्रतिष्ठान को जो बात परेशान करती है वह है उसका परिकल्पित शत्रु-भारत। आई एस.आई अपने पड़ोस में भारत के प्रति मैत्री भाव रखने वाले प्रतिकूल देश को कतई सहन नहीं कर सकती। अपने पिछवाड़े में भारत के बढ़ते प्रभाव को सीमित करने के प्रयास में उसने तालिबान को कबाइली क्षेत्रों में सुनियोजित ढंग से सहायता दी है।

भारत और पाकिस्तान के बीच अच्छे संबंध अफगानिस्तान में आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी लड़ाई में सहायक सिद्ध होंगे। यही नहीं भारत-पाक सीमा पर व्याप्त अविश्वास और चिंताओं को खत्म करने की आवश्यकता है और भारत-पाक के बीच तनाव कम करने का हर संभव प्रयास की जरूरत है। ■

महँगाई कौन जिम्मेदार-क्रिकेट, सिनेमा-टीवी, भ्रष्टाचार

○ हितेश कुमार शर्मा

महँगाई इस सीमा तक बढ़ चुकी हैं कि परिवार के परिवार भुखमरी से तंग आकर आत्महतया कर रहे हैं। दैनिक उपयोग की वस्तुएं गरीब व्यक्ति की पहुंच से बाहर हो चुकी हैं। सड़कों पर कारें बहुत दौड़ रही है किंतु अधिकतर बैंक से कर्जा लेकर खरीदी गई है। और जब बैंक का कर्जा देना संभव नही होता तो आत्मदाह ही करना पड़ता है। गेहूँ, चावल, चीनी, कपड़ा, नमक, सब्जी, फल आदि सभी वस्तुऐं गरीब आदमी के लिए तो सपना हैं मध्यवर्ग के व्यक्ति के लिए भी दुश्वार हो गई हैं। रोज अखबारों में पड़ने को मिलता है कि भुखमरी से तंग आकर एक व्यक्ति ने परिवार सहित आत्महत्या कर ली। किसान जो सारे समाज के लिए अन्न उगाता है वह भी भूख से पीड़ित है। कही-कही पर तो न खाने को है, ना पहनने को है, आदमी और जानवर तड़प-तड़प कर जान दे रहे है। इस सबके लिए आदमी खुद जिम्मेदार है लेकिन यदि प्रमुख रूप से देखा जाऐं तो यह जिम्मेदारी उन तीन विधाओं पर हैं जो देश की संस्कृति को नष्ट कर रही हैं। देश के नौजवानों की कार्यक्षमता को घटा रही हैं। तथा व्यक्ति को आलसी और कामचोर बना रही हैं। देश की आर्थिक असमानता भी इसके लिए जिम्मेदार है।

क्रिकेट के खेल पर हजारों करोड़ रुपये खर्च किये जाते हैं। बजट में जो धन आवंटित होता हैं उसमें सभी का हिस्सा होता है। क्रिकेट का खेल जिससे कोई लाभ नही है वह जब शुरू होता हैं तो कार्यालयों में काम बंद हो जाता हैं अधिकारी से लेकर कर्मचारी तक क्रिकेट का मैंच देखने में व्यस्त हो जाते हैं। फलत: दफ्तर का कार्य रूक जाता है। विशेष रूप से कार्य कराने के लिए कुछ विशेष करना पड़ता है। जिससे भ्रष्टाचार बढ़ता है और तदनुसार भ्रष्टाचारी की क्रय शक्ति भी बढ़ जाती हैं जो महँगाई को जन्म देती हैं। इसी प्रकार से एक-एक क्रिकेटर को वर्षभर में करोड़ों रूपया मिलता हैं। और वह पैसा पानी की तरह बहाते हैं। जिससे महँगाई का जन्म होता है क्योंकि करोड़पति किसी भी वस्तु को खरीदने के लिए मोल भाव नही करता। और खरीदता भी इतनी अधिक मात्रा में है कि वह वस्तु उसके स्टोर में पड़े-पड़े नष्ट हो जाती है। वर्तमान में बड़े-बड़े नामीगिरामी करोड़पतियों ने क्रिकेटर्स को खरीद लिया है। और अपनी टीमें बना ली है। यह करोड़पति क्रिकेटर्स जिस शहर में जाते हैं वहां वस्तुओं का भाव बढ़ जाता है और एक बार बढ़ा हुआ भाव आसानी से नीचे नही आता। मुहँ मांगे पैसे देने में इन्हें कोई एतराज नही होता, क्योंकि इनको अँधाधुंध पैसा मिलता है।

पैट्रोल की कीमत कितनी भी बढ़ जाए इन पर कोई असर नही होता। भले ही 10 रु० किलो. की प्याज को हवाई जहाज से मंगाना पडें इन पर कोई असर नही होता। यही क्रिकेटर्स कुछ वस्तुओं का विज्ञापन भी टीवी पर अखबारों में करते दिखाई देते हैं जिसके लिए यह कई-कई सौ करोड़ रुपये लेते है। इनको दी गयी विज्ञापन की राशि भी मूल्यों को बढ़ाने में सहायक होती है। देश को इस क्रिकेट से कोई लाभ नही है। केवल कुछ लोगों की तिजोरियाँ भरती जा रही हैं। जो महँगाई को बढ़ा रही है। देश आतंकवाद की आग में जल रहा है। नक्सली अपहरण करवा रहें है। मुंबई में बाप का राज आरंभ हो चूका है। उग्रवादी और उल्फा सक्रिय हैं। और हम क्रिकेट खेल रहे हैं। जयपुर में विस्फोट हुआ सैकड़ो जाने गई। नाकारा शिखण्डी सरकार केवल मूक दर्शक बनी रही।

हमारे नेतागण क्रिकेट के खेल में दिलचस्पी रखते हैं। भले ही सारा देश आतिंक वाद की आज में जल जायें भले ही बम्बई में उत्तर भारतीयों का कत्लेआम हो जाएँ। अब तो प्रत्येक अखबर भी पूरा एक पृष्ठ क्रिकेट के खेल के लिए देने लगा है। जयपुर के विस्फोट की खबर केवल एक कॉलम मे छापकर मगरमच्छी आँसू बहाने वाले अखबारों में उस दिन भी पूरा पृष्ठ क्रिकेट से रंगा हुआ था। जयपुर विस्फोट में मरने वालों के प्रति कोई आँसू नही बहाया गया। और अगर सचिन तेन्दुलकर की उंगली में चोट भी लगती है। तो समाचार प्रमुखता से प्रकाशित होता है।

धन्य है, हम धन्य है हमारी सरकार और धन्य है वह समाचार पत्र जो क्रिकेट को इतनी प्रमुखता से छाप रहे हैं। अमेरिका, चीन, जापान, रूस आदि देशों में क्रिकेट नही खेला जाता और इन देशों ने कितनी तरक्की की है, कितना विकास हुआ है यह सभी जानते है। जाने कब हमारे धृतराष्ट्र की आँख खुलेंगी। और क्रिकेट पर पाबंदी लगेगी। क्रिकेट के खेल से हिंदुस्तान, पाकिस्तान के बीच द्वेष की खाई बढ़ती जा रही है। अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। आतंकवाद, उग्रवाद, माओवाद, नक्सलीवाद तथा उल्फा आदि में क्रिकेट से कोई कमी नही होनी हैं। जनता को चाहिए कि क्रिकेट के खेल के विरूद्ध आवाज उठाऐं। जबतक आतंकवाद, उग्रवाद, माओवाद, नक्सलीवाद तथा उल्फा आदि समाप्त नही हो जाते तबतक क्रिकेट के खेल पर पूर्ण पाबन्दी होनी चाहिए।

महँगाई को बढ़ाने में दूसरा स्थान सिनेमा और टी.वी का है। सिनेमा का एक अभिनेता एक फिल्म में काम करने के कई-कई करोड़ रुपये लेता है और मुहँमाँगे दाम देकर वस्तुएं खरीदता हैं। प्याज चाहे 500 रु० किलो. हो उसकी आँख में आँसू नही आते जबकि गरीब 10 रु. किलो. की प्याज में ही रो पड़ता है। यह उल्टे सीधे पैसे कमाने वाले लोग कुछ श्वेत और कुछ काले धन में प्राप्त करने वाले लोग महँगाई को बढ़ाने में सहायक होते हैं। क्योंकि एक फिल्म के कई करोड़ लेने वाला अभिनेता महँगी से मंहगी कार खरीदता हैं

वस्तुओं की मुह मांगी कीमत देता है। अभिनेताओं ने जगह-जगह पर फार्म हाउस बनाकर जमीनों के दाम बढ़ा दिये हैं।

काले धन की कमाई करने वाले यह अभिनेता जानते ही नही कि आटा, दाल, चावल, चीनी, का बाजार भाव क्या है। ऐसे लोग जो अँधाधुंध कमा रहे है। वह मंहगाई बढ़ाने के अलावा और कुछ नही करते। अभिनेत्रियाँ करोड़ों रुपये तो लेती ही है 6 इंच का नेकर और बिकनी पहनकर जो प्रर्दशन करती है उससे भी मंहगाई बढ़ती हैं। क्योंकि कपड़ा जितना छोटा होता जाता है कीमत उतनी बढ़ती जाती हैं। युवक मोह ग्रस्त होकर नग्न अभिनेत्रियों को देखने के लिए और उनको पाने की इच्छा पूरी करने के लिए अनैतिक कार्य करने लगते है और इस अनैतिक आय को खर्च करने में उन पर मंहगाई का कोई प्रभाव नही होता। अनैतिक आय अनैतिक कार्यो में खर्च होती है। कामतुर पुरुष इन कम वस्त्र पहने अभिनेत्रियाँ को देखने के लिए महँगे से महँगा सिनेमा का टिकट प्राप्त करने का साधन जुटाते हैं।

जिस शहर में भी यह अभिनेता या अभिनेत्री जाते हैं वहाँ यदि गहन अध्ययन किया जाये तो वस्तुओं के दाम एकदम बढ़ जाते हैं। क्योंकि शुटिंग के लिए गई हुई यूनिट को वस्तुएँ चाहिए पैसे की परवाह नही होती। साथ ही नामचीन अभिनेता और अभिनेत्री जिस वस्तु का विज्ञापन करते हैं उस वस्तु के दाम भी करोड़ों रूपये से बढ़ जाते है। क्योंकि कोई भी अभिनेता या अभिनेत्री विज्ञापन के लिए करोड़ से कम नही लेते। इन लोगों के लिए एक करोड़ एक हजार के बराबर भी नही होता। महँगाई का बढ़ाने में अभिनेता और अभिनेत्रीयों की काली कमाई की अहम भूमिका हैं। तीसरा प्रमुख कारण जो महँगाई के लिए बराबर का जिम्मेदार है वह है भ्रष्टाचार, जिसका दूसरा नाम है रिश्वतखोरी। रिश्वत लेने वाले अधिकारीयों को नेताओं को डकैतों की तरह आमदनी होती है और वह इच्छीत वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए कोई भी कीमत देने को तैयार रहते हैं। जिस तरह से एक डकैत 100 रुपया की शराब की बोतल के लिए हजार रुपये तक दे देता हैं। 150 का खाना 500 रुपया में प्राप्त करता है और उसे कोई दर्द नही होता। इसी प्रकार रिश्वत की मोटी कमाई करने वाला व्यक्ति भी प्रत्येक कीमत देकर इच्छित वस्तु खरीदने का प्रयास करता हैं। उस पर कोई असर नहीं पड़ता कि दूध 50 रु० किलो है या 15 रुपया किलो। ऐसे व्यक्ति के यहाँ सस्ती से सस्ती चीज मंहगी होकर प्रवेश करती है। क्योंकि उसे पैसे का दर्द नही होता। महँगे से महँगा खाना भी उसके यहाँ बरबाद होता है। जितना खाना फेका जाता है उससे कई गरीब लोगों का पेट भर सकता हैं। मुँह मांगे दाम पर वस्तु खरीदने वाला रिश्वतखोर अधिकारी, नेता, कर्मचारी महँगाई को बढ़ाने में पूर्णतः सहायक होते हैं।

महँगाई बढ़ने के बहुत से कारण है किन्तु उपरोक्त तीन कारण प्रमुख हैं क्योंकि तीनों माध्यम से बेतहाशा पैसा आता है जिसे खर्च करने का कोई दर्द नही होता। यदि किसी क्रिकेटर अभिनेता, अभिनेत्री अथवा रिश्वतखोर नेता या अधिकारी का ड्राईवर 50 रु० किलो. का आलू खरीदकर लाता है तो फिर वह दुकानदार किसी गरीब को वही आलू 10 रु० किलो देने को तैयार नही होता।

यदि हम महँगाई खत्म करना चाहते हैं तो सिनेमा का, क्रिकेट का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए। अभिनेताओं और क्रिकेटरों की आय निश्चित होनी चाहिए। मंहगाई अपने आप नीचे आ जायेगी। रिश्वतखोर अधिकारियों का, नेताओं का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। यदि क्रिकेट और सिनेमा का राष्ट्रीयकरण करके इनकी आय निश्चित कर दी जायें और लगातार 3 बार मैंच हारने पर अथवा खराब प्रर्दशन करने पर क्रिकेटर और अभिनेता को बाहर निकाल दिया जाये तो सामाजिक सुधार भी होगा और महँगाई भी कम होगी।

यह दर्दनाक और अफसोसनाक बात है कि जिस देश के राष्ट्रपति को वेतन एक करोड़ रुपये साल नहीं मिलता वहा एक क्रिकेटर को साल भर में 40 से 50 करोड़ रुपये तक मिल जाते हैं। एक अभिनेता और अभिनेत्री को 10 से 20 करोड़ रुपये मिलना आम बात हें। इन क्रिकेटरों और अभिनेताओं के कर्मचारी भी महँगाई से अप्रभावित रहते हैं, क्योंकि इनको मिलने वाला वेतन सामान्य वेतन से कई गुना अधिक होता हैं। इसी प्रकार विज्ञापनों पर भी प्रतिबंध होना चाहिए। क्योंकि जिस वस्तु के विज्ञापन पर करोड़ों रूपये क्रिकेटर, अभिनेता या नेता को दिये जाते हैं। उतने ही रूपये से उस वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है। आजकल विद्यालयों में भी प्रवेश के लिए रिश्वत अथवा तथाकथित डौनेशन का प्रचलन बढ़ गया है। डौनेशन भी एक प्रकार से रिश्वत ही है।

जब कोई डाक्टर या इंजीनियर डौनेशन या रिश्वत देकर विद्यालय में प्रवेश लेता है तो डॉक्टर या इंजीनियर बनकर वह उस डौनेशन या रिश्वत देकर विद्यालय में प्रवेश लेता हे तो डॉक्टर या इंजीनियर बनकर वह उस डौनेशन की राशि को वसूल करने के लिए अपना मूल्य बढ़ा देता है। फलस्वरूप पूरे समाज पर इसका असर पड़ता है और डॉक्टर की फीस तथा इंजीनियर की रिश्वत का रेट बढ़ जाने के कारण अन्य वस्तुओं की कीमतों पर फर्क पड़ता है फलतः महँगाई आसमान छूने लगती है। जब भारतवर्ष में बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो सकता है तो क्रिकेट का राष्ट्रीयकरण क्यों नहीं हो सकता। भले ही संबन्धित कर दिया जायें। इससे समाज का भी भला होगा। और महँगाई कम होगी। तथा प्रतिभाओं को उचित स्थान मिलेगा। अब तो एक खिलाड़ी को जब वर्षभर खेलने के कई करोड़ रूपये प्राप्त होते हैं, तो वह चयनित होने के लिए भी उसमें से कुछ करोड़ खर्च कर सकता है। जिससे पुनः महँगाई प्रभावित होती है। महँगाई रोकने के लिए कुछ कठोर कदम उठाने आवश्यक है जिनमें से यह प्रमुख है।

संपर्कः गणपति काम्पलैक्स
सिविल लाइन्स, बिजनौर-246701
(उ०प्र०), भारत

प्राचीनता एवं आधुनिकता के आइने में भारत की तस्वीर

○ डॉ० जय प्रकाश खरे

भारत एक प्राचीन देश एवं आधुनिक राष्ट्र है। लिखित संविधान, लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, नागरिकों को एक समान मूल अधिकार जैसी अवधारणाएँ इसकी आधुनिकता का परिचायक है। वर्ण और जाति पर आधारित सामाजिक संरचना, धर्म का नागरिकों के जनमानस पर व्यापक प्रभाव तथा सामंतवादी मनोवृत्ति का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तंत्र पर अवांछनीय प्रभाव इसकी प्राचीनता को रेखांकित करती है।

अत: यह संदिग्ध है कि आधुनिकता और प्राचीनता के मिश्रण से विकसित, क्या यह देश अपनी उस पहचान को प्राप्त कर पाएगा, जिस गौरव के लिए भारत प्राचीनकाल से विश्व में अपना एक विशेष स्थल रखता था, या अंधकारमय स्थितियों में भटककर रह जाएगा, जो इसने लगभग बारह सौ वर्षों की गुलामी में झेली थी। क्या भारत उस आदर्श को प्राप्त करेगा, जिस आदर्श को पाने की सपने हमारे स्वतंत्रता संग्राम के महापुरुषों ने संजोये थे, जिसके लिए उन्होंने असह्य पीड़ा, घोर अपमान और महान् बलिदान देकर आजादी की सूरज को देश के क्षितिज पर चमकाया था?

इस तरह के अनेकानेक प्रश्न मन-मसितष्क में उभरते रहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार से हमारे राजनेता, पदाधिकारी तथा जन-समुदाय आचरण आज कर रहे हैं, वे कोई आशा और उम्मीद जगाने में बिल्कुल असमर्थ हैं, जिसके आधार पर एक महान राष्ट्र के निर्माण की कल्पना की जा सके। एक महान राष्ट्र की सही पहचान उसके विचारों, मानवता के प्रति उसकी आस्था, राजनीतिक प्रणाली के प्रति विश्वसनीयता, समृद्ध प्रथाओं एवं परंपराओं के प्रति सम्मान तथा सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त बुराइयों के निर्मूल करने से ही संभव हो सकती हैं, परंतु जिस प्रकार हमारा समाज धर्म और जातियों में बँट कर रह गया है, हमारी राजनीतिक प्रणाली धर्म और राजनीति की शिकार हो गई है समाज और राजनीति में भ्रष्टाचार ने आज अपनी जड़ें मजबूत कर ली हैं। संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों के रहते देश के आम नागरिकों के साथ विशेषकर कमजोर वर्गों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अत्यंत पिछड़ा वर्ग, महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों के साथ जो व्यवहार किया जा रहा है, वह हमारे समृद्ध मूल्यों, प्रथाओं एवं परंपराओं के प्रतिकूल हैं वह लोकतंत्र, मानवाधिकार हमारे राजनीतिक व्यवस्था के आधार स्तंभ हैं।

इसी आधार पर आज हम अपने को आधुनिक समझते हैं, जिसका आज उपहास किया जा रहा है। इतिहास साक्षी है कि धर्म-जाति, उच्च-नीच के आधार एक स्वच्छ एवं शुचि समाज का निर्माण हम नहीं कर सकते, जो हर दृष्टिकोण से अत्याचार मुक्त हो, जो राष्ट्र की चुनौतियों को एक जूट होकर सामना कर सके। तभी समाज एवं राष्ट्र की बेकारी, बीमारी, अशिक्षा गरीबी एवं कुपोषण जैसी समस्याएँ समाप्त हो सकती हैं और भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में अपनी अस्मिता को कायम रख सकती है।

आज आजादी के 57 साल पूर्ण होने के पश्चात् भी भारत में 26 से 33 प्रतिशत जनता गरीबी रेखा से नीचे है। लगभग 36 प्रतिशत जनता अशिक्षित एवं अनपढ़ है। बेरोजगारों की संख्या इस देश में 10 करोड़ से अधिक है। प्रतिदिन हमारे सामने नये-नये घोटाले आ रहे हैं जो अरबों रुपये की राशि को पार कर गये हैं। उदाहरण स्वरूप 64 करोड़ का बोफोर्स घोटाला, 1986 ई० में 1.33 करोड़ का यूरिया घोटाला, 900 करोड़ का चारा घोटाला, 33 सो करोड़ का तेलगी स्टांप घोटाला, अढ़ाई सौ करोड़ का रेलवे स्लीपर घोटाला को लिया जा सकता है। उक्त घोटाले के बराबर तो कई राज्यों के वार्षिक बजट भी नहीं होंगे। उदाहरण के लिए झारखण्ड के 75 अरब का प्रथम बजट की राशि का लगभग 40 प्रतिशत तेलगी स्टांप घोटाले की भेंट चढ़ गये। ऐसे छोटे-मोटे घोटाले तो आज आम बात हो गई है, जिन्हें गणना करना संभव नहीं है।

संविधान के प्रस्तावना में वर्णित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय भी जातिवाद और सामंती मानसिकता का शिकार हो कर रह गया है। सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए संविधान में जो पहला संशोधन किया गया उसके आधार पर साढ़े 22 प्रतिशत सरकारी नौकरियाँ अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित की गई। तत्पश्चात् मण्डल आयोग की अनुशंसा पर 27 प्रतिशत नौकरियाँ पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित की गई। विशेषरूपेण अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जातियों को आरक्षण का लाभ में विशेष परिवर्तन इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि निर्धारित संख्या में इन वर्गों का विशेषकर हरिजन आदिवासियों को कोटा ही नहीं भर सका और दूसरे जिन लोगों ने इस आरक्षण का लाभ लिया, उनकी पीढ़ी-दर-पीठी लाभ उठाती गई, शेष इस लाभ से वंचित

रह गये। परिणाम यह हुआ कि समयानुसार इन वर्गों में भी अभिजात वर्ग उत्पन्न हो गये। आरक्षण का लाभ इन अभिजात वर्गों को अपने से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए छोड़ देना चाहिए था, वहाँ ये अभिजात वर्ग आरक्षण का लाभ लाभान्वित परिवार को ही देने लगे। यही कारण है कि इन लोगों ने अपने लिए एक विशेष स्थिति प्राप्त कर राजनीतिक, आर्थिक के साथ-साथ अन्य लाभ भी हासिल करने में समर्थ सिद्ध हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि इन वर्गों के आरक्षण की सुविधा से वंचित शिक्षित वर्ग एवं युवक अपने ही वर्गों के आरक्षण का लाभ उठाकर संपन्न हुए वर्ग से प्रतियोगिता करने में आज असमर्थ है। फल यह है कि आज इन वर्गों में भी शिक्षित बेरोजगारों की संख्या अत्यधिक बढ़ गई है।

आर्थिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने 50 के दशक से 80 के दशक तक जिन समाजवादी आर्थिक नीतियों का सहारा लिया था, 90 के दशक में उन नीतियों का परित्याग कर भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य राज्यों कें पूँजीगत निवेश और व्यापर के लिए खोल दिया गया है। सरकारी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर देश के नागरिकों को रोजगार प्राप्त होता था, अब सरकार नागरिकों को सरकारी क्षेत्र में रोजगार देने के लिए बचनबद्ध नहीं है। रूग्ण सरकारी निगमों के साथ लाभ कमाने वाले सरकारी प्रतिष्ठानों को बेचा जा रहा है। और इससे जो राशि प्राप्त हो रही है, उस राशि का इस्तेमाल बजट के घाटे को पूरा करने के लिए हो रही है। वैश्वीकरण के इस युग में सरकार आर्थिक क्षेत्र में भी अपनी भूमिका सीमित करना चाहती है, परंतु सामाजिक क्षेत्र में अपनी भूमिका न बढ़ाकर करोड़ों भारतीयों के साथ घोर अन्याय कर रही है, जो पहले से ही सामाजिक एवं आर्थिक अन्याय के शिकार रहे हैं।

वर्त्तमान में राजनीतिक न्याय को भी ग्रहण लग गया है। भारत की लोंकतांत्रिक प्रणाली पर आज परिवारवाद हावी है। परिवारवाद के विरूद्ध लोकतंत्र के प्रति समर्पित अधिकांश नेता मुखर होकर इसके खतरों के प्रति लोगों को सजग रहने की सलाह देते थे। आज वही नेता परिवारवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। नेहरु परिवार के वगैर काँग्रेस की सफलता संदिग्ध है, तो समाजवादी पार्टी मुलायम सिंह और संभवत: उनके पुत्र अखिलेश सिंह पर निर्भर है। यही हालत बिहार में सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्ध और संप्रदायवाद के विरुद्ध खड़े राष्ट्रीय जनता दल का है, जो लालू यादव के परिवार के प्रभाव में है। अन्य प्रभावशाली दल भी अपवाद स्वरूप कुछ वामपंथी दलों को छोड़कर परिवारवाद के शिकार हो गये हैं। देश की सभी प्रतिनिधि संस्थाओं के लगभग 20 प्रतिशत प्रतिनिधि किसी-न-किसी शक्तिशाली राजनीतिक परिवार के सदस्य हैं। संविधान के 73वें संशोधन के द्वारा जिस पंचायती राजय को अपनाया गया और जिसमें 33 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये, विभिन्न अध्ययनों से यह निष्कर्ष सामने आया है कि अधिकांश महिलाएँ पूर्व में रहे मुखिया या ग्राम प्रधान के संबंधी हैं, जो महिलाएँ इन पदों पर चुने गये हैं। इनमें से अधिकांश महिलाओं के काय उनके पिता या पति अथवा कोई निकटतम पुरुष ही करते हैं।

अत: संविधान में वर्णित उच्च आदर्शों या स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं के सपने तथा भारत के धर्म और दर्शन में अंतर्निहित मानवीय मूल्य जिसको अपनाकर हम अपने समाज को एक मानवीय चेहरा प्रदान कर सकते हैं, वह आदर्श एवं मूल्य आज आधुनिक समाज के भेंट चढ़ गये हैं। परंतु सौभाग्य की बात यह है कि भारतवासियों को अपने संविधान, अपनी लोकतांत्रिक प्रणाली और न्याय पालिका में आस्था बरकरार है। इसी आस्था के आधार पर लोकतांत्रिक मूल्यों के सहारे हम निकट भविष्य में एक ऐसा आधुनिक समाज निर्माण करने में सफल होंगे जिसपर धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों, जातिओं एवं सामंती मनोवृत्तियों का प्रभाव समाप्त नहीं तो क्षीण अवश्य हो जाएगा। इस आशावाद का प्रमुख कारण भारत को दुनिया का सबसे युवा देश होने से हैं 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की लगभग 54 प्रतिशत आवादी 25 वर्ष से कम आयु के लोगों की हैं इसलिए युवाशक्ति की ऊर्जा का लाभ भारत अवश्य उठाएगा।

भारतीय युवाओं ने जिस प्रकार से नालेज वेस्ट तकनीकों का परिचय दुनिया के समक्ष रखा है, वह संपूर्ण विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदेश है। एक युवा देश के रूप में भारत आनेवाले समय में अपनी शक्ति की छाप विश्व के मानचित्र पर स्थापित करेगा। इन्हीं युवाओं की क्षमताओं को ध्यान में रखकर हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम ने ट्वेन्टी-टवेन्टी (2020 ई०) तक भारत को विकसित देश बन जाने की जो योजना दिया हे, वह अवश्य सफल सिद्ध होगा, जब भारत अपनी सभी वर्तमान समस्याओं पर विजय प्राप्त करेगा, तभी विजय प्राप्त कर सकता है। इसके लिए भारत को आर्थिक दृष्टि से विकसित और राजनीतिक दृष्टि से मजबूत होना पड़ेगा। फलस्वरूप वह सामाजिक कुरीतियों, समाज में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार से लड़ सकेगा और अंततोगत्वा विकास की ऊँचाई एवं शिखर को प्राप्त कर अपने नागरिकों के लिए संविधान की प्रस्तावना में वर्णित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय उपलब्ध करा पाएगा।

संपर्क : शिवगंज (किशोरगंज के पास) हरमू रोड, राँची-1, झारखंड

महान विभूतियोंवाला महान देश

○ ओम प्रकाश 'मंजुल'

पुरानी पुस्तकों में पढ़ा था 'भारत 'जगद्‌गुरु' रह चुका है, 'भारत' ऋषि प्रधान देश रहा हे' स्कूल-कॉलेज में पढ़ते समय कोर्स की किताबों में पढ़ा था, 'भारत' सोने की चिड़िया रह चुका है', 'भारत 'कृषि-प्रधान' देश है' लगभग दो दशक पूर्व से राजनीति के डिजाइनर्स द्वारा प्रायोजित 'भारत महान', 'बुलंद भारत की बुलंद तस्वीर' आदि के नारे सुनता-पढ़ता आ रहा हूँ पर जब देश की यथार्थ जमीन पर दृष्टि डालते हैं, तो भारत-भुमि पर उपरोक्त में से आज कुछ भी दिखाई नहीं देता।

हम एकदम ऊपर से 'नं० वन' से चलते हैं (किसी विद्वान और अनुभवी ने कहा भी है 'भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे की ओर चलता है') भारत के राष्ट्रपति को 'राष्ट्र का प्रथम नागरिक' माना जाता है दलगभग यही स्थिति सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायधीश से होती है। संविधान में भले ही इस बात का स्पष्ट उल्लेख न हो कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का पद राष्ट्रपति पद के स्तर का है, पर व्यवहार में संवैधानिक उपचारों एवं दायित्वों के निर्वहन के प्रकाश में देखे, तो दोनों ही पद समान स्तरीय हैं, राष्ट्रपति को पद की गोपनीयता की शपथ प्रधान न्यायधीश दिलाते हैं और प्रधान न्यायाधीश को यह शपथ राष्ट्रपति दिलाते हैं। प्रतिष्ठा एवं उच्चता की दृष्टि से हम राष्ट्रपति एवं प्रधान न्यायाधीश को 'ए-बन' और 'ए-टू' कह सकते हैं।

भारत के प्रधान न्यायाधीश सहित संपूण न्यायपालिका के बारे में कुछ दिनों पूर्व प्रख्यात लेखक एवं राज्यसभा-सदस्य श्री राजीव शुक्ला का एक लेख, 'निशाने पर न्यायाधीश' दैनिक जागरण के 14 जून, 008 अंक में छपा था (हालांकि यह न्यायधीश विशेष (वाई०के०सब्बरवाल) पर विशेषतः अधृत था) श्री शुक्ल को ही बात को आगे बढ़ाते हुए यहाँ कुछ बातें दृष्टव्य हैं इस लेख में श्री शुक्ला ने श्री सब्बरवाल पर श्री शांति भूषण (पूर्व कानून मंत्री) के सुपुत्र श्री प्रशांत भूषण द्वारा लगाये गये आरोपो (जिनसे सम्बद्ध कागज जाँच के लिए केंद्रीय कानून मंत्रालय के पास पड़े हुए हैं) का वर्णन किया है। इनमें अधिकतर आरोप कदाचार एवं भ्रष्टाचार के ही हें। अपने लेख में श्री शुक्ला ने न्यायाधीशों के कदाचार से सम्बद्ध पूर्व कानून मंत्री, अरूण जेटली के एक कथन को उद्धरित किया है, उन्हीं के शब्दों को यहाँ उद्धरित किया जा रहा है'......इस देश में राजनेताओं की तो जवाबदेही है, उन्हें सजा भी मिल जाती है, लेकिन जजों की कोई जवाबदेही नहीं है। कोई व्यक्ति यदि जज बन जाता है, तो वह बीस साल तक कुछ भी करे, उसके खिलाफ कुछ भी नहीं होता है। महाभियोग का प्रावधान इतना जटिल है कि आज तक किसी जज को उसकी सजा नहीं मिली। अब जब आये दिन जजों के बारे में किस्से आ रहे हैं, तरह-तरह की शिकायतें भी आ रही हैं, तो न्यायापालिका और इस देश के लोगों को सोचना होगा कि जजों की जवाबदेही कैसे तय हो और गलत आचरण करने पर उनको दंड कैसे मिले?.......... जजों पर मीडिया हमला करने से कतराता हे, सरकारी एजेंसियाँ झिझकती हें, आखिर न्यायपालिका अपने लोगों यानी जजों के पीछे क्यों पड़ेगी? जजों को जनता से वोट माँगने की भी जरूरत नहीं है। ऐसे हालात में गड़बड़ किस्म के जज बीस साल तक बैंठे रहते हैं और उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता' इसी लेख में बताया गया कि इस समय देश में ढाई करोड़ मुकदमें कई वर्षों से लटके पड़े हैं हालांकि इसके ही अगले दिन जारी अपने बयान में उच्चतम न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश माननीय बालाकृष्णन ने बताया कि देश में 58 लाख बाद लंबित हैं (58 लाख की संख्या भी कम नहीं है.) शायद इन्हीं श्री सब्बरवाल से पूर्व जज के संदर्भ में एक बात उन दिनों यह भी जोर-शोर से चर्चित रही कि मुख्य न्यायाधीश ने अपनी जन्मतिथि को 2 वर्ष बढ़ाकर लिखा है। इन्हीं वर्षों में एक मजिस्ट्रेट कुछ हजार रूपयों के लालच में मुख्य न्यायाधीश के विरूद्ध वारंट जारी कर दिया था। यह घटना शायद अहमदाबाद की है। वास्तव में यदि न्यायाधीशों की दैनन्दिन किसी को देखनी है, तो वह कुछ दिनों तक जिला न्यायालयों में गाँव के बाढ़ग्रस्त लोगों के साथ रहकर देखे, उसे इनकी संपूर्ण नैतिकता के दर्शन हो जायेंगे पर दूसरा तात्पर्य यह नही है कि सभी न्यायाधीश एक जेसे हैं जिला-न्यायालयों में भी अति ईमान द्वार प्रकार के अनेक न्यायधीश मिल जाएँगे। सर्वोच्च न्यायालय के संदर्भ में भी ऐसा ही रहा जा सकता है समझ में नहीं आ रहा कैसे लिखा जाये? बात ही उल्टी है इन्हीं भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री वाई० के० सब्बरवाल का उदाहरण हमारे समक्ष है, वे नितांत अंतर्मुखी, आत्म निरीक्षक एवं आस्तिक प्रकार के जज थे। सज्जनता की वे प्रतिमूर्ति ही थे वे जनता से कहा करते थे, ''मुझे 'लार्ड' (डम स्वतक) मत कहा करो, 'लार्ड' तो केवल भगवान ही होता है। मेरे लिए तो 'सर' का संबोधन ही काफी है,'' (न्यायापालिका के कदाचार से सहमत होने के बावजूद मुझे श्री सब्बरबाल का मामला विचित्र व विरोधाभासी लगता है)

अब देश के प्रथम नागरिक, राष्ट्रपति के पद और व्यक्तित्व को लेकर भी अखबारों में अक्सर कथन-वक्तव्य छपते रहते हैं वर्त्तमान राष्ट्रपति के चुनाव के समय ही पक्ष-विपक्ष से एक दूसरे पर कैसे आरोप लगाये गये बताने की आवश्यकता नहीं है, जबकि सारा देश यह जानता हो कि इन्हीं प्रत्याशियों में से कोई भारत का राष्ट्रपति

बनेगा सेवाकाल के बाद तो शायद ही कोई राष्ट्रपति होगा, जिसकी तत्काल ही आलोचना शुरू न हो जाती हो इन्ही पूर्व राष्ट्रपतियों में एक राष्ट्रपति पर तो यहाँ तक आरोप लगाया गया कि भारत में बांग्ला देश के घुसपैठिये उसी की देन हैं, श्रीलंका के राष्ट्रपति जब हिंदुस्तान आते हैं, तो धोती पहन कर आते हैं, मारीशश के राष्ट्रपति जब भारत आते हैं, तब विधि-विधान के साथ सपत्नीक गंगा की आरती उतारते हैं, यज्ञ करते हैं और धार्मिक कर्मकाण्डों में भागीदारी करते हैं तथा यूनान देश का प्रधान भारत के राष्ट्रपति (डा० कलाम) के यूनान पहुँचने पर 'राष्ट्रपति महाभाग: सुस्वागतम भवन देशे' कह कर उनका स्वागत-सम्मान करता है, जबकि भारत का राष्ट्रपति, जो रोज यहाँ धोती पहनता है, विदेश जाते समय धोती को घटा बता कर पैजनियाँ पहन लेता है यदि मुझे भ्रम न हो, तो हिंदुस्थान के एक हिंदू राष्ट्रपति को पत्नी ने विदेश में प्लेन से उतरते समय बुरका पहना था संन्यासी समान डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के बाद के अधिकांश राष्ट्रपतियों की छवि 'पैजनियाँ-प्रेसीडेंट' वाली छवि ही बनी हैं. इस विश्लेषण का तात्पर्य यह भी नहीं है कि सभी राष्ट्रपति एक जैसे रहे हैं। 'मुण्डे-मुण्डे मतर्मिन्न:' कहा जाता है। यूँ, वहाँ किसी भी राष्ट्रपति की अलोचना नहीं की जा रही है। सभी के प्रति समुचित सम्मान व्यक्त करते हुए मैं निवेदन करना चाहूँगा कि इन्हीं राष्ट्रपतियों में एक नाम माननीय डॉ०ए०पी०जे० अब्दुल कलाम का भी है, सज्जनता एवं सौम्यता के मामले में जो कमाल के व्यक्तित्व रहे हैं, वे सज्जन, समझदार और राष्ट्र भक्त रहे हैं।

'हाथी के पांव में सब का पांव होता है,' देश के न०एक लोगों की स्थिति यह है, नीचे के लोगों के बारे में सोचा जा सकता है। यूँ, मैं किसी भी नेता राजनेता या अधिकारी से कम राष्ट्रभक्त नहीं हूँ, पर मुझे वोट नहीं चाहिए मैं एक लेखक हूँ, इस नाते मेरा दायित्व है कि रात को दिन न कहकर देश के समक्ष सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करूँ-हम दावे कितने ही करे कि हमने बहुत विकास किया है, हमारी वजह से देश ने बहुत प्रगति की हे, पर वास्तविकता यह हे कि देश को स्वतंत्र हुए आज इतने वर्षों के बाद भी हम इतना भी नहीं कर पाये कि देश के नागरिकों को पर्याप्त मात्रा में हवा ही दे सके होते, भोजन, पानी तथा आवास की बात छोड़िये, देश में प्रति वर्ष ही हजारों लोग इसलिए मर जाते हैं कि गर्मियों में उन्हें प्राण बचाने के लिए शीतल वायु नहीं मिलती। जबकि विदेशों की ओर निगाह करें तो पता चलेगा कि फ्रांस जैसे देशों ने अपने यहाँ मच्छरों का समस्त नाश कर दिया है (और हम राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री के निवास-स्थानों के मच्छरों का भी सफाया नहीं कर पाये हैं।) अमरीका, आस्ट्रेलिया और कनाडा आदि की सड़कों को दूरदर्शन पर देख कर ही उन पर चलने को मन मचलने लगता है कितनी अधिक प्रगति की है इस विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र ने। प्रगति को ऐसी ही रफ्तार हो भी क्यों न-जहाँ का प्रधानमंत्री यह कुछ घोषणा करता हो कि 'देश के संसाधनों पर पहला हक अल्पसंख्यकों का है' तथा जहाँ के मुख्यमंत्रीगण अल्प संख्यकों के बच्चों को कक्षा एक से ही छात्रवृत्ति देने की घोषणा करते हो, वहाँ यही होगा उनके लिए बढ़ती जनसंख्या अभिशाप नहीं, वरदान लगती हे उनका गणित राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नहीं, पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में होता है उनके लिए एक बच्चे के आने का अर्थ होता है लगभग दो-ढाई हजार रुपया की सालाना आमदनी देश का बच्चा-बच्चा जानता है कि देश की सबसे बड़ी समस्या जनाधिक्य' है। यह सभी समस्याओं की जननी है। इस सुरसा के मुँह जेसी समस्या को अभी तक तो सर्वाधिक मुसलमानों ने ही बढ़ाया था, पर अब ईसाई भी इस मामले में मुस्लिमों से पीछे नहीं रहना चाहते केरल स्थित कैथोलिक चर्च में हाल ही में एक प्रस्ताव पारित किया गया है, जिसके अनुसार 3 या अधिक बच्चों वाले परिबारों को उनके संप्रदाय की ओर से विशेष सुविधाएँ दी जाएँगी

'विचार दृष्टि' के सफलतापूर्वक दस वर्षों तक नियमित प्रकाशन के लिए हमारी

हमारी हार्दिक बधाई

नरेश कुमार सिंह

सीमेंट एवं छड़ के थोक विक्रेता

खगौल रोड, मीठापुर, पटना-800001

मोगरी-एक गुमनाम शहीद

○ श्रीमती शुक्ला चौधरी

'चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

वो कौन सी इतिहास की किताब होगी जिसमें सन् सत्तावन के पहली आजादी की लड़ाई का जिक्र हो और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम ना हो? ऐसी कोई किताब कम से कम इस मुल्क में तो नहीं। पर जिनके बल पर उस सिंहनी ने दहाड़ा था कि "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।" उनका क्या नाम था? कितना टेढ़ा सवाल हैं उनका नाम कहाँ मिलेगा? उन हजारों स्त्री-पुरुषों का नाम जिन्होंने महारानी के हुँकार को जोरदार बनाने के लिए अपनी आवाज उसमें मिलादी, अपने फूल से शरीर को उनके एक इशारे पर मिट्टी में मिला दिया। खून से खेले गए उस होली में अंत समय तक महारानी का साथ दिया। नहीं किसी इतिहास के किताब में उन लोगों का नाम दर्ज नहीं है। बुंदेले हरबोलों ने उनकी कहानी नहीं सुनाई क्योंकि वे गुमनाम शहीद थे ना।

पर ऐसे ही एक गुमनाम शहीद की कहानी मैं सुनाऊँगी जिसका नाम इतिहास के पन्नों से गुम हो गया पर मातृभूमि के मिट्टी ने अपने कणों में कहीं ना कहीं तो छुपाकर रखा होगा उसके अस्थियों को।

वो थी मागरी।

गोरी सी, प्यारी सी, चुलबुली, घर भर की लाड़ली। उम्र-पंद्रह वर्ष, मातृभूमि-झाँसी, पिता-नगर सेठ।

ग्यारह साल के उम्र में ग्वालियर के नगर सेठ के कनिष्ठ पुत्र के साथ विवाह संपन्न हुआ था पर पिता अपने स्नेहपालिता इकलौती पुत्री को इतनी जल्दी ससुराल भेजने को तैयार ना थे। तय था पंद्रह साल पूरा होते ही विदाई की रस्म अदा कर दी जाएगी।

झाँसी की नगरसेठ की बेटी ग्वालियर के नगरसेठ के घर दूल्हन बन कर जाएगी। ईश्वर ने क्या खूब तकदीर रची थी। दूध खेली-सोने चाँदी में पली। पर नियति को शायद कुछ और ही मंजूर था।

मोगरी ने जिस दिन से महारानी लक्ष्मीबाई को महाराज के साथ झाँकी में देखा, उसी दिन से वो महारानी साहिबा की दीवानी सी हो गई थी।

कहा जाता है कि किसी भी चीज की अति, विरक्ति उत्पन्न करती है। मोगरी भी अपने चारो तरफ फैले अपार धन वैभव से धीरे-धीरे उकता रही थी। कईबार वो सोचती कि काश वो भी अपने पड़ोसिन रज्जो की तरह महारानी की सेविका होती तो कितना अच्छा होता, महारानी के पास-पास रहती, उन्हे देखती, उनकी सेवा करती, उनसे शस्त्र चलाना सीखती।

रज्जो महारानी लक्ष्मीबाई की सेविका थी। सारा दिन महारानी की सेवा करके वो शाम को घर लौटती। मोगरी उसका इंतजार करती। जैसे ही रज्जो को लौटते देखती तो अपने घर वालो से छुपछुपाकर उनके पास पहुँच जाती। कहाँ उसका परिवार और कहाँ रज्जो का परिवार। माँ-बेटी दोनो विधवा और गरीब पर स्नेह से अमीर। नगर सेठ की बेटी उनके घर आए यह उनके लिए कितनी सम्मान की बात थी।

एक दिन रज्जो ने कहा- "जानती है मोगरी, महारानी ने राजय के सारे नाचशालाएँ बंद करवा दिए। महाराज नाराज तो है पर महारानी के आदेश उनके सर आँखो पर। महारानी ने कहा देश पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। ऐसे में स्त्री के पैरो में घूँघरू नहीं, बल्कि हाथों में तलवार होनी चाहिए। उन्होंने हम सब सेविकाओ को भी आदेश दिया है कि कल से रोज सुबह किले के पीछे वाली खाली मैदान में सैनिकों से शस्त्र चलाने की शिक्षा ले। मुझे तो बहुत डर लग रहा है। जाने क्या हो। मैंने तो कभी तलवार छुआ तक नहीं। पता नहीं चलाऊँगी कैसे।" मोगरी फटी-फटी आँखो से रज्जो को देख रही थी। उसकी बाते तन-मन में सिहरण पैदा कर रहे थे। मन था कि चेतक की तरह उड़-उड़ कर किले के पीछे की तरफ के मैदान में पहुँच जाता था पर पैरो पर तो धन वैभव पारिवारिक सम्मान की बेड़ी पड़ी हुई थी। उसने सहमे-सहमे से पूछा- "तो क्या यह शस्त्र-शिक्षा सिर्फ सेविकाओं के लिए है?" "हाँ अभी तो ऐसा ही है, बाद का मालूम नही। "रज्जो बोली।

इसी तरह रज्जो कितनी बाते बताती महारानी के संबंध में। मोगरी उन्हें मंत्र मुग्ध सी सुनती। कि तभी एक दिन रज्जो ना लौटी। फिर दूसरे दिन भी नहीं। मोगरी के लिए दिन-रात काटना दूभर हो गया। वाली उमर और ये बेचैनी। दिनभर चहकने वाली मोगरी को इतना उदास देखकर घरवालों ने सोचा कि शायद साजन के लिए मन, उदास हो। उम्र ही ऐसी है। बात पिता के कानों तक पहुँची। विदाई की तैयारी शुरू हुई।

उधर इन सबसे बेखबर मोगरी रजजो की राह देखते नाथकती। तीसरे दिन रज्जो लौटी तो तन मन पर मातम छाया हुआ था।

महारानी का राजदुलारा नहीं रहा, जाने क्या बात हुई। कितने बैद्य आए पर कुछ ना कर सके। महारानी ने तो यह सदमा फिर भी सह लिया पर महाराज ने बिस्तर पकड़ लिया। पता नहीं कौन सा पहाड़ टूटने वाला है अब झाँसी पर।

मोगरी ने धड़कते दिल से सब सुना।

अजीब कश्मकश में घिरी थी वो। ना किसी से कुछ कह पाती थी ना सह पाती थी। घर में खुशियो का महौल छाया हुआ था। विदाई की तैयारी की जा रही थी। पकवानों से, अतिथियों से घर भरा था। बस

चंद दिनो की मेहमान है यह जानकर सब उसे खुश रखना चाहते थे, जहाँभर की खुशियो से सब उसका दामन भरना चाहते थे पर उसके हृदय में तो मानो शमशान की शून्यता थीं जब छटपटाहट हद से बढ़ जाती तो वो भागकर छत पर चढ़ जाती। पर वहाँ भी चैन कहाँ। नजर खुद ब खुद महारानी के महल के दिशा के तरफ मुड जाते। वहाँ से कौन पुकार रहा है उसे? मातृभूमि? झाँसी? बलिदान? शाहदत? कौन?

उसका बचपन जाने कहाँ खो रहा था। जब वो घरवालो के उत्साह को देखती तो उनका दिल रखने के लिए अपने मानसिक संरचना को भावी दूल्हन का स्वरूप देने का भरसक प्रयत्न करती कि तभी जैसे मातृभूमि उसे पुकारती या फिर शायद महारानी की आवाज पुकारती कि ये चूड़ी पहनने का वक्त नही है। पहले मातृभूमि की रक्षा का व्रत ली, श्रृंगार पीछे करना। और तभी राज्य में फिर से मातम का माहौल छा गया। महाराज नही रहे! प्रजा इस सदमा से अभी उभरी भी ना थी कि एक और सनसनीखेज खबर फैल गई। फिरंगी ने महारानी के दत्तक पुत्र को भावी उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया और महारानी ने भी अपनी झाँसी को फिरंगी को सौंपने से इन्कार कर दिया। रानी साहिबा ने प्रजा को शारीरिक एवं मानसिक रूप से युद्ध के लिए तैयार हो जाने को कहा है।

निकल गई मोगरी।

एक मध्यरात को अपने कुल देवता को प्रणाम करके, मन ही मन घर के बड़े बुढ़े से आर्शीवाद माँग कर रज्जो एवं अपने मुँह बोले भाई के सहारे वो अपने पिता के भवन से निकल गई।

वो जो नाजो पली थी, धन दौलत में राज करने चली थी, वो जो डोली बगैर कभी घर से ना निकली थी, मातृभूमि के पुकार पर बलिदान होने चल पड़ी थी।

नंगे पाँव भागते-हाँफते, रज्जो का हाथ पकड़कर वो महारानी के चरणों पर जाकर गिर पड़ी। महारानी ने उसका चेहरा अपने हथेली मे लिया, आँखो के चमक को देखा और अपने खास टुकड़ी में शामिल कर लिया। शुरू हो गया प्रशिक्षण! अंत समय तक उसने महारानी का विश्वास रखा था। उस दिन जब महारानी ने नया घोड़ा लिया, घोड़ा नाले पर अड़ा और फिरंगी फौज गर्जन करते हुए आ धमके, वो महारानी के साथ थी। उसने अपना सुकोमल शरीर प्राचीर की तरह फिरंगी के सामने डाल दी और मात्रभूमि के वेदी पर अपना बलिदान चढा दिया।

उ.पूर्व साहसिकता, का उदाहरण देशवासियों के सामने रखते हुए झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भी शहीद हो गई। देशमुख, रघुनायसिंह और गुल मुहम्मद ने मिलकर जल्दी-जल्दी महारानी की चिता जलाई और एक समाधि भी बना डाली।

पर मोगरी का शव? कौन जाने वो गिद्धो के भेंट चढ़ी या पृथ्वी कें पंचाभूत तत्वों में विलीन हो गई। जहाँ तक उसके नाम का सवाल है, उसे इतिहास के पन्नों ने जाने कहाँ छुपा लिया और देश ने उसका नाम अनामी शहीदों में दर्ज कर लिया।

संपर्क: हिंदी शिक्षा-साहित्यकार
22 सी/ जगत राय चौधरी रोड,
पता०-बारिशा, कोलकाता-8
फोन: 033-24474513

With Best Wishes From

JAI JAI RAM SINGH

(Civil Contractors & Engineers)

LG-15, SomDutt Chamber-II,
Bhikaji Cama Place, New Delhi-66
Ph. : 011-26175981 Fax : 011-46032352

राष्ट्रीय एवम् भावात्मक एकता में भारतीय भाषाओं की भूमिका

○ डॉ० बी० जी० हिरेमठ

अपनी धरती, अपना अंबर, अपना हिंदुस्तान ।
अपनी हिंदी, अपनी संस्कृति, अपना सदाचार ।।

माता एवम् मातृभूमि के पश्चात महत्त्वपूर्ण स्थान मातृभाषा का ही होता है। जिससे व्यक्ति, समाज, देश के स्वाभिमान गौरव की पहचान होती है। किसी भी देश की संस्कृतिक विरासत उस देश की साहित्यिक भाषाओं में विद्यमान रहती है। वही भाषाएँ उस देश की भावनाओं, संस्कारों को परिष्कृत और परिलाक्षीत करती हैं। एक बार आचार्य विनोबा भावेजी ने कहा था कि, यदि मैने हिंदी एवम् अन्य भारतीय भाषाओं का सहारा न लिया होता, तो काश्मीर से कन्याकुमारी तक और आसाम से गुजरात तक, गाँव-गाँव जाकर, मै भूदान और ग्रामदान आंदोलनों का क्रान्तिकारक संदेश जन-मानस तक नहीं पहुँचा सकता था।

भारत बहुभाषा-भाषी विशाल देश है। इस विशाल राष्ट्र में अनेक प्रान्त है। हमारे देश में संविधान से मान्यता प्राप्त अनेक भाषाएँ और उपभाषाएँ है। इन राज्य सरकारों तथा केन्द्र सरकार में संपर्क स्थापित करने के लिए, एक रायभाषा या राष्ट्रभाषा का होना नितांत आवश्यक है। भारत की राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता तथा देश की अखंडता को बनाए रखने के लिए, अनेकता में एकता स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है। जिस प्रकार किसी देश का राष्ट्रध्वज एक होता है, राष्ट्रगीत भी एक ही होना है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा भी एक ही होता चाहिए।

दो सौ वर्षो की अँग्रेजों की दासता से देश तो आजाद हुआ, किंतु अँग्रेजीयत की मानसिक दासता अभी भी हमारी संस्कृति और सभ्यता पर हावी है। मानव सभ्यता के उदय के साथ भाषा-चेतना के उद्भव और विकास का आरंभ हुआ। राष्ट्रीय एवम् भावनात्मक एकता और सभी भाषायी सामंजस्य के लिए यह अनिवार्य भी है कि बहुभाषिकता के मध्य ऐक्य का खोज करना आवश्यक भी है। यह प्रक्रिया आसान नही है, यद्यपि असाध्य भी नही है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भारत बहुभाषी देश होने पर भी यहाँ के हर प्रान्त की प्रांतीय भाषा अपनी गौरवशाली परंपरा लिए हुए है। भाषावार प्रान्तों की रचना के बाद, आशा किया गया था कि, उससे भारतीय समाज का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय एवम् भावात्मक एकता का विकास होगा। लेकिन उसका परिणाम आशा के विपरित हुआ जो देश के सर्वोतामुखी उत्थान और सर्वांगिण विकास के लिए वरदान बनना चाहिए था, लेकिन वह एकता के लिए अभिशाप बन गया।

वस्तुत: भाषाएँ केवल विचार विनिमय के साधन मात्र नही, बल्कि वे मानव के चारित्र का, समाज का और राष्ट्र के चरित्र का भी उद्धाटन करती है। एक भाषा की असिमता और दूसरी भाषा की अस्मिता के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है। उससे राष्ट्रीय एकता पर स्वाभाविक रूप से परिणाम हो रहे है। उसका मूल कारण देश की शिक्षण नीति, जो हमें मैकाले ने अँग्रेजी शिक्षा पर जोर देकर दिया था। अत: शिक्षण-प्रणाली में सुधार करना अत्यंत आवश्यक है। एक ओर भारतीय भाषाएँ राष्ट्रीय एवम् भावात्मक एकता के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है, तो दूसरी ओर समाज में तनाव विद्वेष द्वंद्व विघटन, प्रवृत्ति को बढ़ावा दे सकती है। मूलत: भारतीय भाषाएँ देश की संस्कृति संस्कार एवम् देश की एकता के लिए रीढ़ की हड्डी का काम करती है।

मजहब अलग-अलग सही, वतन तो एक है।

बोलियाँ अलग-अलग सही राष्ट्रभाषा हिंदी तो एक है।

प्रागैतिहासिक काल से समस्त भारत वर्ष को एक अखंड भूभाग के रूप में मानते हुए आ रहे है। अत: जंबु द्रीपे भरतवर्षे भरतखंडे जपने का क्रम चलते आया है। कोई भी किसी जाति-पति, धर्म-पंथ भाषा भेद आदि का भेद-भाव नही करना चाहिए। मनुष्य मननशील और चिंतशील है। भाषा बहुत शक्तिशाली होती है। भाषा के सृजन है बिना भाव का उन्मेष संभव नही है। भाषा और भाव के बिना संस्कृति, की कल्पना भी नहीं कर सकते। भाषा बिना जागृति ही नहीं स्वप्न भी संभव नहीं, क्योंकि स्वप्न भी भाषाश्रयी है। भाषा के बिना संस्कृति लिपिबद्ध नहीं हो पाती। भाषा गतिशील हैं भाषा कभी भी सांप्रदायिक अथवा आंचलिक नहीं होती। हम टॉलस्टाय रवीन्द्रनाथ, गोर्की आदि विद्वानों को पढ़कर समझने का प्रयत्न करते तो वह हमारे हृदय की भाषा जैसे लगती है। एक संस्कृति, एक देश और एकता की परिकल्पना भाषा ही हमें सिखाती है। पवित्र भारत भूमि पर जन्म लेकर हमारी संस्कृति, हमारी एकता को मजबूत बनाने में देश की सभी भाषाओं का योगदान रहा है। मात्रभाषा और मातृभूमि की असिमता को निश्चित् करने में भारतीय भाषाओं का पात्र महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत समय में राष्ट्रीय एकता एवम् भावात्मक एकता को कायम रखने में सभी भाषाओं के लेखको की सूझ-बूझ पर निर्भर रहता है। अब समय का तकाज़ा है कि हम अपने आपको, तमिल, पंजाबी, बंगाली या हिंदू, मुसलमान ईसाई कहने के बदले, मैं भारतीय हूँ का कहना आवश्यक है।

मैं भारतीय हूँ इस स्वाभिमान को भारतीय भाषा में ही चिंतन, मनन करना है। देश की सभी भाषाएँ, जैसे सभी फूल देव योग्य होते है, वैसे ही सभी भाषाएँ देश को एकता को कायम रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाति है। इतिहास हो साहित्य हो, सामाजिक परिवर्तन की शिवधारा में वाणी यानी भाषा

ही सर्वशक्तिशाली है।

भारत में भाषाओं की विविधता है, लेकिन अनादि काल से, भौगोलिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अलग-अलग होते हुए भी भारत देश की अखंडता अक्षुण्ण है और रहेगा। भाषा और संस्कारों की सीमाएँ कितनी भी सीमित हो लेकिन दक्षिण भारतवासी गंगा, हिमालय के दर्शनार्थ उत्तर भारत की यात्रा करेगा और उत्तर भारतवासी रामेश्वरम्, कन्याकुमारी के दर्शनार्थ दक्षिण भारत की यात्रा करेगा। आज भी यह भावना जीवित है। यही भावात्मक एकता का प्रतीक है। यह भक्तिभाव जनमानस में युग-युग से भरा हुआ है, और सदैव रहेगा। हम भाषा का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व रहता है, लोगों के ह्रदयों में प्रवेश करके उनकी वाणी पर विकसित होती है।

भारत के चिंतन और दर्शन का मूलश्रोत भारतीय भाषाएँ है। इन्ही भाषाओं के द्वारा भारत की आत्मा को पहचाना जा सकता है। इतिहास साक्षी है कि देश पर जब-जब संकट आया था, तब-तब सभी भारतीय अपने भाषा-भेद, जाति-भेद, वर्ग-भेद आदि विभिन्न भावनाओं को मिटाकर एक हो गए थे, और विदेशी दुश्मनो की शक्ति का डटकर मुकाबला किया था और करेंगे। फिर प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के संकट के शिकार क्यों हो रहे है? आ बैल उसे मार वाली स्थिति के शिकार हुए है। एक ओर हम विश्व एकता की बात करते हैं, अपने उच्च आदर्शो का प्रमाण देते हैं, और दूसरी ओर एक भाषा का दूसरी भाषा से द्वेषपूर्ण नजरों से देखा करते है। भारतीय भाषाओं में एकता की भावना की कमी नही बल्कि राजकयी नेताओं में अपने स्वार्थ-साधना के खातिर, लोगों के बीच ईर्षा-द्वेष निर्माण करते है और कृत्रिम दिखावा करते है। राजकीय नेताओं में एकता कायम करने की इच्छाशक्ति की कमी दिखाई देती है। भारतीय भाषाओं में एकता की भावना की कमी नहीं है। व्यक्ति और समाज के निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई भाषा ही है। वह संस्कार देती है और हमारे सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती है। भारतीयता और भारती भाषाओं की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय का आद्य कर्त्तव्य है। भारत में भारतीय भाषाओं के बिना स्वाभिमान और असिमता की बात सोची भी नहीं जा सकती।

साष्ट्रीय एवम् भावात्मक एकता में भारतीय भाषाओं की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की यह काव्योक्ति सराहनीय है।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हियको सूल ।।

हमारे देश में आत्मभिमान एकता, श्रेष्ठता का भाव, आदर्श तथा सिद्धान्तों की कमी नही है।

अन्त में मैं राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्तजी के काव्य की मार्मिकता की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

जिनको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान।

वह नर नहीं है पशु जिसे है मृतक समान ।।

संपर्क : 45, 111 मेन्, मिल्क कालोनी, मल्लेश्वरम् (पश्चिम्), बेंगलोर-560 055. (कर्नाटक)

With sustainable R&D

M&M CONSULTANTS

INDIGENOUS, AFFORDABLE AND BUILT WITH TRUST

"SWADESHI, SASTA, SUNDER AUR TIKAU"

M&M ON THE MOVE - ADDING TO ITS LARGE ARRAY OF MACHINES.

M&M EQUIPMENTS COMPETE IN QUALITY WITH IMPORTED PRODUCTS.

M&M LESS BY MORE THAN 50% COST OF IMPORTED & MAINTENANCE LESS THAN 10% SAVES FOREIGN EXCHANGE.

M&M ASSURED SUPPLY OF SPARE AND PROMPT SERVICE FACILITIES AT YOUR DOOR-STEP

M&M GLAXY OF MACHINES & EQUIPMENT- ACCLAIMED EXCELLENT PERFORMATION BY MORE THAN 75 USERS AMONG THEM ARE :

DELHI GOLF CLUB, QUTAB GOLF COURSE, ARMY COLF COURSES
AIR FORCE GOLF COURSES, NAVAL GOLF COURSES

Office : F-8/19, Vasant Vihar, New Delhi-57 (P) : 91-011-26148109, Mobile : 98108-20219
Factory : F-8/19, Vasant Vihar, New Delhi-57 (P) : 91-011-26148109, Mobile : 98108-20219

हमेशा खराब नहीं होते दांपत्य जीवन में तकरार

❍ सिद्धेश्वर

यह बात ठीक है कि पति-पत्नी के बीच मतभेद होना अच्छी बात नहीं, मगर कभी-कभी दंपपितों के बीच तकरार वैवाहिक जीवन के लुत्फ को बढ़ा भी देती है। यों तो शायद ही ऐसा कोई युगल हो, जिसके बीच आपस में कभी न कभी तकरार न हुई हो और उसके कारण उनके बीच के रिश्ते और भी तनावग्रस्त हो जाते हैं, पर यह भी सच है कि हर दिन आइस क्रीम की तरह जमे रहना दांपत्य जीवन में उब भी पैदा करता है ठीक उसी तरह जिस तरह रोज-रोज चावल, दाल, रोटी और सब्जी खाते रहने से आदमी उब जाता है। इसी उब की उपज की वजह से ही कभी-कभी घर में चावल और करी अथवा चावल और बरी या कोंहड़ौरी का झोर बनाया जाता है।

रिश्तों की भी यही स्थिति है। पति-पत्नी में कभी-कभी चकचूक हो जाने से तथा उसके चलते कुछ देर तक एक दूसरे से मुँह फुलौवल की स्थिति में दोनों को यह महसूस होने लगता है कि अमूक मुद्दे पर बेकार दोनों ने तकरार कर एक दूसरे को भला-बुरा कह दिया। मुझे तो ऐसा लगता है कि पति-पत्नी रोज-दो रोज तो बहुत हुआ घंटे-दो घंटे भी आपस में यदि बातचीत बंद कर देते हैं, तो बातचीत के लिए फिर दोनों बेकरार हो जाते हैं। यह मैं केवल नव विवाहित युगलों के बीच के तकरार की बात नहीं कह रहा हूँ, साठ-सत्तर की उम्र के दंपति बुजुर्गों की भी वही हालत होती है। मैं अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ कि हम दोनों पति-पत्नी साठ से ऊपर के हैं, मगर अभी-अभी किसी बात को लेकर बात का बतंगड़ हो गया और हम दोनों उलझ पड़े तो दो-तीन घंटे तक बातचीत बंद होने से बात समझ में आने लगती है कि बेकार हमने श्रीमती जी को अमूक बात कह दी। अपनी गलती का अहसास न केवल हमें, बल्कि मेरी श्रीमती जी भी महसूस करने लगती हैं क्योंकि आग दोनों तरफ लगी रहती है। तकरार के बाद जब बातचीत की शुरुआत होती है, तो जिंदगी का लुत्फ ताज़ा हो आता है, क्योंकि आपसी तकरार के दौरान दी जाने वाली दलीलों से एक दूसरे की भावनाओं को अच्दी तरह समझने में मदद मिलती है। होता तो यह है कि किसी विषय पर भिन्न राय रखने से अंततः हमलोग करीब ही आते हैं। साथ ही एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करते हैं और सार्थक संवाद से समस्या का समाधान निकल आता है।

वैसे भी कोई भी रिश्ता हमेशा फूलों की सेज नहीं होता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्वस्थ तकरार अथवा स्वस्थ-मतभेद कभी-कभी आपसी संबंधों में संतुलन स्थापित करने में सहायक हो सकती है, बशर्ते आपको पता हो कि इस विवाद या कलह की लक्ष्मण रेखा क्या है। हाँ यह जरूर है कि आपसी रिश्तों में किसी विवाद को लेकर दलीलें प्रस्तुत करना या बहस करना बुरा है, मगर कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि भावनाओं को दिमाग में कैद करके रखने से ज्यादा बेहतर है कि विवाद के जरिए उनको बाहर निकाल देना।

यह कठोर सत्य है कि दो परिवार से आए पति-पत्नी की आदत, स्वभाव, रुचि और मानसिक बौद्धिक स्तर तो एक जैसे नहीं हो सकते। पति-पत्नी को इस बात का अहसास होना चाहिए कि जब दो व्यक्तियों के बीच इतना फर्क है, तो यह तय है कि उनके बीच किसी न किसी मुद्दे पर मतभेद होगा ही। इसलिए प्रत्येक दंपति को इस तथ्य को स्वीकारना चाहिए कि असहमति और मतभेद वैवाहिक जीवन का स्वाभाविक अंग है जिसे सार्थक संवाद के जरिए सुलझाकर दो अलग-अलग व्यक्तित्ववाले लोगों को अंततः एक ही छत के नीचे रहना है। सच तो यह है कि जहाँ मतभेद होते हैं, वहीं समझौते की भी गुँजाइश होती है। किसी तकरार के बाद पति-पत्नी को अपने कृत्यों की जिम्मेदारी स्वयं लेनी चाहिए। यदि किसी पक्ष में कोई गलती की है या भला-बुरा कह दिया हो, तो उसे अपनी ओर से दुःख प्रकट करने कोई संकोच नहीं करना चाहिए। कारण कि वास्तव में क्षमा करना, माफी माँगना और अपने किए को भूल जाना स्वस्थ तकरार का महत्त्वपूर्ण गुण है।

इस दृष्टिकोण से पति-पत्नी को एक दूसरे की भावनाओं के साथ-साथ धारणाओं और सिद्धांतों का सम्मान करना दोनों के हक में होता है और इससे रिश्तों में मजबूती भी आती है। पति-पत्नी को एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है। कभी-कभी पति-पत्नी के बीच बड़े मुद्दे को लेकर नहीं, बल्कि छोटी-छोटी बातें भी तकरार का कारण बन जाती हैं। वस्तुतः आपसी समझदारी की कमी के चलते भी अधिकतर विवाद उत्पन्न होते हैं। आपस में तर्क-कुतर्क करने और दलीलों के दुष्क्रम में फँसने से विवाद नहीं थमते हैं, विवाद थमते हैं आपसी समझदारी सें सच बताऊँ हम दोनों पति-पत्नी के बीच ज्यादातर विवाद या तकरार हमारी पत्नी के तर्क-कुतर्क और दलीलों के दुष्क्रम में फँसने के चलते होते हैं।

हालांकि यह कहकर मैं यह नहीं सिद्ध करना चाहता कि मेरी ओर से गलती बिल्कुल नहीं होती हैं खासकर मेरे भीतर का मर्दवाद तो कभी-कभी सर चढ़कर बोलने ही लगता है, किंतु उत्तेजना उत्पन्न करने वाले और विवाद को उलझाए रखने वाले कारकों को मैंने रंखांकित किया है

नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ

Arvind Kumar

Rajiv Kumar

RAJIV PAPER MART

Deals in :

All Kinds of White Printing Paper,

Art Paper

&

L.W.C. etc.

S-447, School Block-II, Shakarpur, Delhi-110092
9968284416, 98102508349891570532, 9871460840
Ph. : (O) 55794961, (R) z22482036

With Best Compliments from :

अच्छे लोग अच्छा बैंक

Good People to Bank with

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया

Union Bank of India

73-74, शीतला हाउस, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019

73-74, Sheetla House, Nehru Place,

New Delhi-110019

With Best Compliments from :

SARAT JAIN
MANAGING PARTNER

ARCHITECTS BUREAU

+ 91 98110 67540 | scjain@architectsbureau.com | DELHI

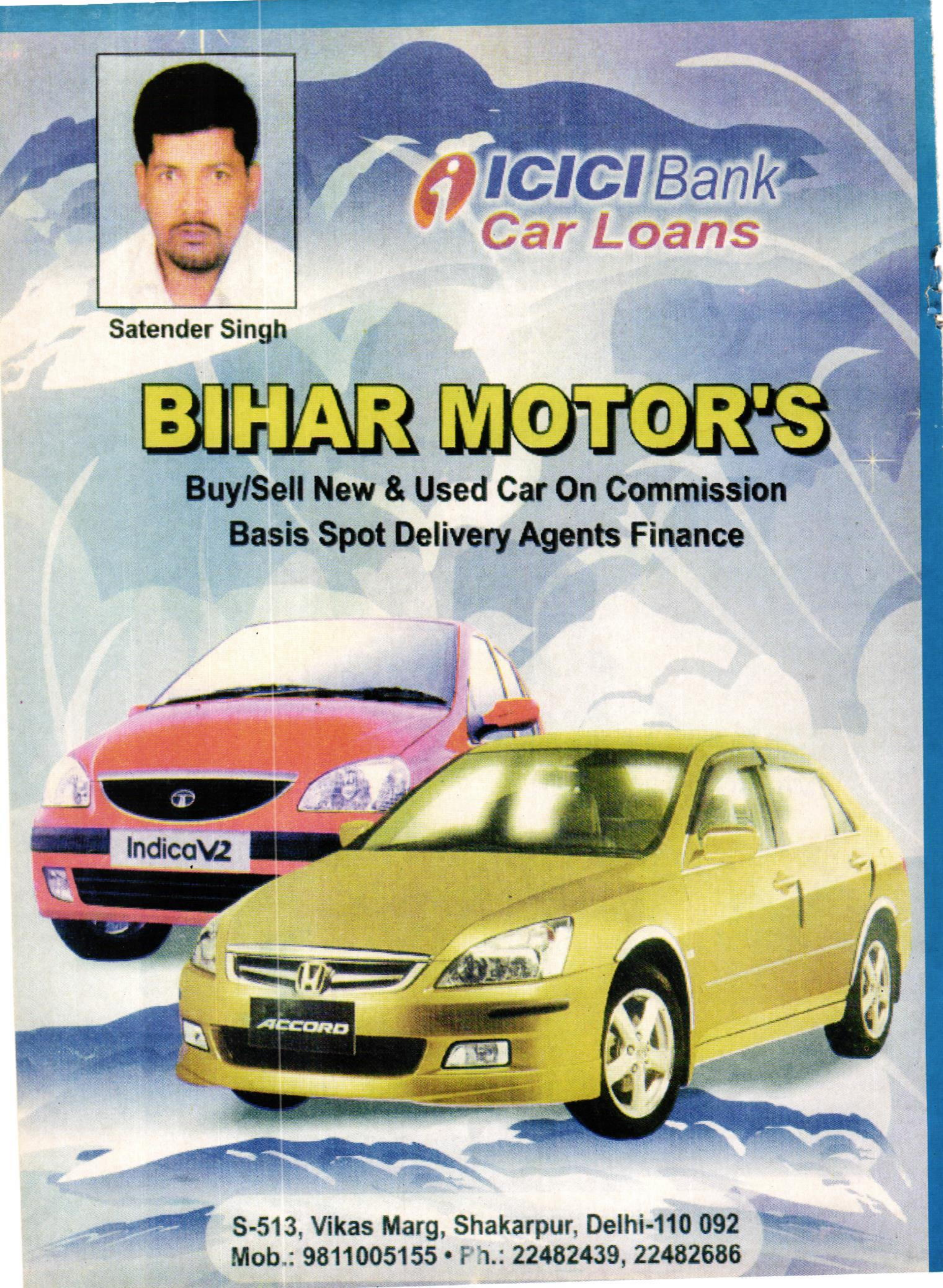
Satender Singh
ICICI Bank
Car Loans
BIHAR MOTOR'S
Buy/Sell New & Used Car On Commission
Basis Spot Delivery Agents Finance
IndicaV2
ACCORD
S-513, Vikas Marg, Shakarpur, Delhi-110 092
Mob.: 9811005155 • Ph.: 22482439, 22482686

और उन्हें न दोहराने का संकल्प लेकर आपसी समझदारी विकसित की है। आप भी ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

आपसी समझदारी के बावजूद कभी-कभार तू-तू, मैं-मैं का होना, जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि जरूरी है जिससे दांपत्य जीवन में एक अलग तरह का लुत्फ आता है। मुझे तो आश्चर्य होता है उन दंपतियों पर, जो तकरार कर एक दूसरे पर जीत हासिल करना चाहते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि आपसी रिश्तों में जीत-हार का सवाल ही नहीं होता। इससे ठीक विपरीत सच तो यह है कि हारकर भी दांपत्य जीवन में पति-पत्नी जीत महसूर करे। इस संदर्भ में मुझे याद आ रही हैं सुप्रसिद्ध कथा लेखिका तथा भारत सरकार के केंद्रीय समाज कल्याण परिषद की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती मृदुला सिन्हा की प्यार भरी वो बातें, जो उन्होंने पिछले दिनो दिल्ली के आनंद विहार स्थित विवेकानंद उच्च विद्यालय के सभागार में आयोजित अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के 12 वें राष्ट्रीय अधिवेशन में स्त्री विमर्श के विषय की संगोष्ठी के अपने अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने स्पष्ट तौर पर सभागार में उपस्थित महिला प्रतिनिधियों को धिक्कारा-''आप सभी कैसी महिलाएँ हैं, जो अपने पति को अपने वश में नहीं कर पाती और पुरुषों के खिलाफ आग उगल रही हैं। मैंने तो शादी के बाद आज तक अपने पति को अपने कब्जे में रखा है।

इसका मतलब है कि आप सभी मर्दों को कब्जे में रखने का गुर नहीं जानती। पतियों को कब्जे में रखने का सबसे महत्त्वपूर्ण गुर यह है कि आप पति की एक बात मानकर उनके प्रति समर्पित हो जाएँ, फिर जो चाहें आप उनसे करबा लें। ''श्रीमती मृदुला जी की यह बात सुनकर जहाँ सभागार में उपस्थित देश के कोने-कोने से महिला प्रतिनिधि हतप्रभ हो गई, वहीं पुरुष प्रतिनिधियों ने जमकर ठहाका लगाया। मैंने तो खैर भोजन के वक्त मृदुला जी को हार्दिक बधाई दी उनके स्पष्ट वक्तव्य और पूरे अधिवेशन में 'वुमेन ऑफ द अधिवेशन' के लिए। और तो और आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि उस वक्त सभागार में मृदुला जी के आदरणीय पति डॉ० राम कृपाल सिन्हा, जो भारत सरकार के राज्य मंत्री रह चुके हैं, सभागार में मौजूद थे, यकीन मानिए भोजन के वक्त मृदुला जी को उनके पति महोदय के सम्मुख बधाई देने वालों का तांता लग गया।

यह तो हुई श्रीमती मृदुला सिन्हा के द्वारा पति को अपने वश में करने की बात। अब मेरे साथ अभी-अभी यानी इस ललित निबंध को लिखते वक्त जो घटना घटी उस पर भी आप नजर डालें, जो मृदुला जी की तरह पत्नी को भी कैसे अपने वश में किया जाता है उसका गुर मुझसे सीखें। हुआ यूँ कि पिछले कई दिनों से पटना में लगातार रिमझिम वारिश होने की वजह से अधिकतर सड़कों पर पानी भर आया। मेरी श्रीमती जी जब हल्दी पिसाकर घर लौटी, तो उन्होंने फरमाया-''लिखना छोड़िए और जल्द ही एक बाल्टी पानी लाकर दरवाजे पर ही मेरे दोनों पाँव धोइए, ताकि मैं साफ-सुथरे पैर होने के बाद घर में प्रवेश कर सकूँ।'' यकीन मानिए मैं तुरंत लिखना छोड़कर एक बाल्टी उन्हें समीप उपलब्ध कराया और मग से उनके दोनों पाँव, जो कीचड़ से भरे थे, धोए यह कहते हुए कि श्रीमती जी आपने मुझे मेरे द्वारा विरचित लेख के लिए अच्छी-खासी सामग्री दे दी।'' लेखन-विषय का शीर्षक यही था ''हमेशा खराब नहीं होते दांपत्य जीवन में तकरार''।

बस अब मैं यही अपनी बात समाप्त करता हूँ। इंसान के लिए इशारा काफी है।

संपर्कः 'दूष्टि', यू. 207, शकरपुर
विकास मार्ग, दिल्ली-92,
दूरभाष : 011-22530652,
011-22059410
0612-2510519

■

लौह पुरुष
सरदार पटेल
की
133वीं जयंती
पर
30-31 अक्टूबर,
2008 को

नई दिल्ली में
आयोजित
राष्ट्रीय अधिवेशन
की
सफलता
के लिए हमारी
शुभकामनाएँ

कर्नल एस.एस.
राय
वरिष्ठ उपाध्यक्ष
राष्ट्रीय विचार मंच,
बिहार
भूतनाथ रोड, पटना-26

कैसे हो विस्तार हिंदी साहित्य का
कैसे बनेगी राष्ट्रभाषा हिंदी माथे की बिंदी

○ सिद्धेश्वर

भारत की आधुनिक भाषाओं में राष्ट्रभाषा हिंदी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है और इसीने निरंतर भारत की समग्र चेतना को वाणी देने की कोशिश की है। यही नहीं भारत की आजादी हिंदी के बल पर लड़ी गई, किंतु आजादी के बाद जैसे सब कुछ एक बैग परलट गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को राजभाषा तो घोषित कर दिया गया, किंतु बाद के बर्षों में यह राजनीलतिक के छल-छद्मों में ऐसी उलझी कि आजतक इसे अँग्रेजी की सहचरी बनकर रहना पड़ रहा हैं चाहकर भी इसे हम अपने माथे की बिंदी नहीं बना पा रहे हैं। अँग्रेजियत का भूत हम भारतवासियों पर इस तरह सवार है कि नीति निर्धारक अँग्रेजी माध्यम से ही तकनीकी और विज्ञानपरक शिक्षा देने का हठ ठाने बैठे हैं।

उन्हें शायद यह नहीं मालूम कि नानक, कबीर, सूर और तुलसी पहले ही क्षेत्र तैयार कर गए थे राष्ट्रभाषा के लिए। उनकी वाणी और पद्य देश के कोने-कोने में उन असंख्य नर-नारियों के कंठों से आज कई शताब्दियों से प्रतिध्वनित हो रहे हैं खास तौर पर उन प्रदेशों में भी जहाँ के लोगों की मातृभाषा हिंदी नहीं है। पर पता नहीं क्यों हिंदी प्रदेशें में ही हिंदी लुप्त होती जा रही है। दरअसल, सुविधाभोगी अँग्रेजी मानसिकता के लोग समाज में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए अँग्रेजी को ही बनाए रखना चाहते हैं। इसमें तनीक संदेह नहीं कि उच्च पदों पर आसीन नौकरशाहों, राजनेताओं एवं विदेशी शक्तियों का ही यह षडयंत्र है कि हिंदी पूर्णतः सक्षम होते हुए भी सार्वभौम राष्ट्र की भाषा नहीं बन पा रही है।

तो आइए, हम सभी इस राष्ट्र के मुकुट के दर्द को महसूस करें और हिंदी की सिसकियों को शब्द दें, स्वरूप दें और आवाज दें ताकि हिंदी साहित्य के जरिए इसे समाज में, जन-जन में यह भर दें कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्र की सापेक्षता की भाषा हिंदी ही भारतवासियों की एक मात्र राष्ट्रभाषा और प्रतिनिधि भाषा हो सकेगी। हिंदी साहित्य का विस्तार कैसे हो इस पर गंभीर रूप से आज चिंतन करने की जरूरत है।

राजनीति के छल-छद्म से मुक्त होने का केवल एक ही रास्ता है कि हम अपनी लेखनी के साथ सदा राम रावण को, कृष्ण कंस का, देव दानव का ध्यान रखें और हिंदी भाषा के विचलन को रोकने का हमारा प्रयास हो। राष्ट्रभाषा हिंदी ही ऐसी लोकप्रिय भाषा है जो हमें गिरने से बचा सकती है, परकीय संस्कृति और सभ्यता से दूर कर सकती है, अपनी माता, ममता और समता का गौरव जगा सकती हैं और तभी हम सच्चे भारतीय कहलाने के अधिकारी होंगे।

हिंदी साहित्य के विस्तार और समृद्धि के लिए भिन्न भाषा-भाषियों के बीच परस्परता की प्रक्रिया तत्काल प्रारंभ की जानी चाहिए। इससे न केवल भारतीय भाषाओं की समृद्धि उदार दृष्टिकोण और भावात्मक एकता आएगी, बल्कि राष्ट्रीय एकता को भी अक्षुण्ण बनाए रखने में आसानी होगी। हिंदी सभी भारतवासियों के बीच संपर्क भाषा और सेतु-भाषा का काम तो करती ही है, यह उपभाषाओं से अपने को समृद्धतर भी कराती है। मात्र ज्ञान बघारने, बाजार के दबाब तथा वैश्वीकरण की विवशताओं आदि के नाम पर अँग्रेजी को हिंदी के शरीर पर ओढ़ाना बेढ़ंगा काम है और दुर्भाग्यपूर्ण भी। दरअसल, हमारे राजनेताओं ने हिंदी को मात्र अनुवाद की भाषा बनाकर हिंदी को अकारण दुरुह, कठिन और अव्यावहारिक बना दिया और शिक्षा को प्राथमिकता कभी दी ही नहीं राष्ट्रीय बजट में नगण्य सा हिस्सा शिक्षा को दिया जाता रहा है, राजभाषा आयोग, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग जैसी सरकारी संस्थाएँ सफेद हाथी बनी रही है। यही नहीं, हिंदी की चिंतन-शक्ति और अपार अभिव्यक्ति क्षमता को नजरअंदाज किया जाता रहा।

वस्तुतः परोक्ष रूप में अँग्रेजी को बनाए रखने का षड्यंत्र रचा गया है और हमारे राजनेता वोट बैंक के चक्कर में अपने तात्कालिक लाभ के लिए भाषा नीति को राजनीतिक रंग देने का प्रयास करते हैं, मगर अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। हमें चौकस और चौकन्ना होने की जरूरत है, क्योंकि आज भी साम्राज्यवादी तकते हमारी ही भाषा का उपयोग कर अपने उत्पाद और अपनी विचारधाराओं को बेचने में करती हैं कभी धर्म के नाम पर जातीय विद्वेष को हवा देकर और हमारे देश के हिंदी की रोटी खाने वाले साहित्यकार भी वही कर रहे हैं, जो साम्राज्यवादी ताकते चाहती हैं। इसीलिए हमारे सामने चुनौतियाँ एकायामी नहीं, बहुआयामी हैं जिनसे मुकाबला हमें डटकर करना है, क्योंकि हिंदी जीवन का संदेश देती है और यह देशवासियों को जोड़ने का काम करती है। यह हमें उम्मीद जगाती है कि रात मितनी ही अँधकारमय क्यों न हो उसका जाना अनिवार्य है।

राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसके सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संसार से होती

है। भोजन एवं परिधानों से भी राष्ट्र निश्चय जाना जाता है, किंतु साहित्य एवं संस्कृति ही असली छाप डालने में समर्थ होते हैं। विश्व के अनेक समृद्ध देशों में सारा कामकाज अँग्रेजी में न होकर उनकी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही होता है और वह गर्व से दूसरे देशों में भी अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही अनुवाद के माध्यम से संवाद करते हैं। चीन फ्रांस, जापान, रूस, जर्मनी और स्पेन इसके जवलंत उदाहरण हैं। आर्थिक दृष्टि से ये सारे राष्ट्र विश्व के मानचित्र पर नित नए कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। हमें इन राष्ट्रों से भारत के चिरस्थाई भविष्य के लिए सीख लेकर भाषायी समस्या का यथोचित समाधान करना चाहिए।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आदिकाल से भारत में दो भाषाओं के समूह साथ-साथ रहे हैं। 21 वीं सदी में इस देश को पुनः द्विभाषी सूत्र अपनाना चाहिए, क्योंकि त्रिभाषा सूत्र असफल हो चुका है। सच तो यह है कि अहिंदी प्रदेशों में तो लोगों ने इस त्रिभाषा सूत्र को लागू कर हिंदी को प्रश्रय दिया और आज तेजी से वहाँ हिंदी का उन्नयन हो रहा है, मगर उत्तर भारत के प्रदेशों में ही हिंदी लुप्त होती जा रही है और न त्रिभाषा सूत्र को लागू किया गया। इस लिहाज से द्विभाषा सूत्र कारगर साबित होगा, क्योंकि इस सूत्र के अनुसार भाषाई विभाजन नहीं होगा और न ही भाषाओं को उच्च या निम्न वर्गों में बाँटा जाएगा। भाषा अपना स्थान स्वतः निर्धारित कर लेगी और एक सरिता की तरह सरलता से अपना मार्ग खोज कर बहने लगेगी।

इस द्विभाषा सूत्र के तहत राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म, साहित्य, शासन और कामकाज के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को और अधिक सशक्त बनाकर रोजी-रोटी से जोड़ना होगा और एक सुनियोजित योजनाबद्ध कार्यक्रर्म के अंतर्गत बाह्य भाषा अँग्रेजी को विस्थापित करना होगा। एक क्षेत्रीय अनुवाद काउंसिल के अंतर्गत क्षेत्रीय अनुवाद केंद्रों की स्थापना होनी चाहिए जिससे क्षेत्रीय सूचनाएँ सभी को मिलती रहें। आज के समय में क्षेत्रीय भाषाओं की कीमत पर अँग्रेजी पनप रही है जिसे रोकना अनिवार्य है। दूसरी बात यह कि क्षेत्रीय आदान-प्रदान को सहज एवं सरल बनाने के लिए एक संपर्क भाषा का होना अनिवार्य है और राष्ट्रभाषा हिंदी ही संपर्क भाषा के रूप में आज मौजूद है जो राष्ट्र को सशक्त बनाने और पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए समर्थ है और जिसमें सबको निष्ठा हो सकती है। संपूर्ण भारत की इस भाषा का हर भारतीय मातृभाषा के रूप में हिंदी को देखे। आपसी आदान-प्रदान एक संपर्क भाषा के माध्यम से हो सकता है। राष्ट्रनायक डॉ० राम मनोहर लोहिया ने भी अनेक योजनाओं का सूत्रपात कुछ ऐसे ही विचारों से किया था, किंतु राजनैतिक वातावरण प्रतिकूल होने की वजह से उनका भाषाई समन्वय का सपना साकार न हो सका।

सच तो यह है कि केंद्र सरकार प्रारंभ से ही हिंदी का मार्ग अवरूद्ध करती प्रतीत होती रही हैं देश के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरु ने हिंदी और गैर हिंदी वालों के बीच खाई पैदा होने का जो हौआ खड़ा किया वह निरर्थक थ, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक महात्मा गाँधी के प्रभाव से दक्षिण भारत सहित पूरे भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मानसिकता विकसित हो चुकी थी। वैसे भी नेहरु जी अँग्रेजी के पक्षधर थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि 15 अगस्त, 1947 को भारत के आजाद होने पर नेहरु के द्वारा तत्कालीन लोकसभा में दिया गया पहला भाषण अँग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए भारत की सहभाषा बनाना, हिंदी के साथ उसके पूर्ववत जारी रखना, उनकी अँग्रेजी मानसिकता का प्रमाण है।

यही कारण है कि आज हमारा राष्ट्र राष्ट्रभाषा विहीन एक गूँगा-बहरा राष्ट्र बनकर रह गया है। विगत छह दशकों शासकीय स्तर पर हिंदी को पीछे ढकेलने और अँग्रेजी को आगे बढ़ाने का काम अधिक हुआ है जबकि संविधान की भावना के अनुरूप हिंदी को आगे बढ़ाने और अँग्रेजी को पीछे ढकेलने का काम होना था। इस स्थिति का लाभ उठाकर अँग्रेजी परस्त नौकरशाहों और तकनीकी शाहों ने अँग्रेजी को अघोषित राष्ट्रभाषा बना दिया है और हिंदी को उसकी सहभाषा।

हमारा सुझाव है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नयन और विस्तार के लिए चौदह वर्ष तक की उम्र के प्रत्येक विद्यार्थी को हिंदी का समूचित ज्ञान कराया जाए तथा समूचे देश में माध्यमिक स्तर पर हिंदी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए। सभी विश्व विद्यालयों को चाहिए कि हिंदी माध्यम से जो विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठना चाहे उसके लिए उचित प्रबंध करे। ऐसा नियम बने जिसके तहत प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए हिंदी का निश्चित अवधि में आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाए।

इसी प्रकार राज्य और केंद्र सरकारों के लिए किसी स्तर को हिंदी ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाए। राष्ट्रभाषा हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी स्थापित की जाए। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिंदी की इस शर्मनाक दशा से मुक्त होने के लिए हमें अपने स्वार्थी दृष्टिकोण त्यागकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना होगा और प्रांतीयता तथा क्षेत्रीयता की बजाय राष्ट्रीयता को महत्त्व देने की आवश्यकता है। इसके लिए देशवासियों में राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के प्रति जागरूकता लाने के लिए उनमें राष्ट्रीयता की भावना भरनी होगी और यह काम हिंदी को बढ़ावा देकर ही संभव है।

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207,
शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652
011-22059410

■

विदेशों में पुष्पित-पल्लवित हिंदी

○ पी० आर० वासुदेवन 'शेष'

जो हिंदी हित की बात करेगा
वही दिलों पर राज करेगा ।।
देश प्रेम कण-कण में
हिंदी प्रेम जन-गण में ।।

यह निर्विवाद सत्य है कि समय और समाज सदा परिवर्तनशील रहा है, किंतु बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विशेषतया उसके अंतिम डेढ़ दशक और इक्कीसवीं सदी के इस अर्ध दशक में विश्व में जितना परिवर्तन आया है, उतना पिछली अनेक सदियों में नहीं आया था। सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति और उन्नत संचार व्यवस्था ने समूचे विश्व को एक विश्वग्राम में परिवर्तित कर दिया है । विश्व के सातों महाद्वीपों में व्यक्तियों और वस्तुओं का आवागमन बहुत बढ़ गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के वाहक कम्प्यूटर और इंटरनेट से सूचनाओं और विचारों के आदान-प्रदान से जहाँ मानव जीवन अत्यधिक सुविधापूर्ण हुआ है, वहीं अपसंस्कृति एवं घोर विकृत्ति के प्रसार पर कोई अंकुश नहीं रहने के कारण उसका जनमानस पर दूषित प्रभाव पड़ रहा है।

इसके अलावा इस काल खण्ड में जिस विचारधारा ने विश्व को सर्वाधिक प्रभावित किया है, वह है ''वैश्वीकरण''।

वैश्वीकरण शब्द अँग्रेजी के 'ग्लोबलाइजेशन' का हिंदी रूपांतर है। 'ग्लोबलाइजेशन' के लिए हिंदी में 'भूमंडलीकरण' शब्द का प्रयोग भी प्रचलन है। यह भारत की भव्य एवं उच्च प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति ''वसुधैव कुटुम्बकम'' पर आधारित है। अर्थात विश्व एक कुटुंब है।

किसी भी भाषा के वैश्विक स्वरूप से परिचित होने के लिए यह मानना आवश्यक है कि विश्व स्तर पर उसे कितने लोग बोलते हैं। इस संदर्भ में यदि हिंदी की वस्तुस्थिति की बात छेड़ दी जाए, तो मालूम होगा कि 1931 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी का 69 प्रतिशत हिस्सा हिंदी बोलता या समझता था। इसलिए गाँधीजी ने जोर देकर कहा था कि हिंदी और उर्दू के मेल से पनपी हिंदुस्तानी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो तथा आजाद भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो।

सन् 1918 में गाँधीजी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन इन्दौर की अध्यक्षता की थी, वहीं से इस बात की शुरुआत हो गई थी। उनसे भी पहले 1917 में भागलपुर (बिहार) छात्र सम्मेलन में बोलते हुए गाँधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा था, ''इस सम्मेलन का काम इस प्रांत की भाषा में हो, और राष्ट्रभाषा भी है, हिंदी में काम करने का निश्चय करके अपनी दूरदृष्टि से काम लिया है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि आप लोग यह प्रथा जारी रखेंगे।''

इस संदर्भ में यह कहना उचित ही है कि जब तक हमारी मातृभाषा के हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती है और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझे जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। यह भी सिद्ध सत्य है कि सारी जनता को नए ज्ञान की आवश्यकता है, सारी जनता कभी अँग्रेजी नहीं समझ सकती है, तो सारी जनता को नया ज्ञान मिलना असंभव है। कहने को तात्पर्य यह है कि हिंदी का महत्त्व केवल राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में नहीं, बल्कि जनभाषा के रूप में सर्वोपरि है, क्योंकि हिंदी साक्षरों की ही नहीं, अपितु निरक्षरों की भी संपर्क भाषा है।

आज हिंदी ही नहीं, बल्कि भारत की अनेक भाषाएँ, अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के रूप में स्वीकृत हैं। मिसाल के तौर पर भारत में जनमी और विकसित भाषा उर्दू भारत तथा पाकिस्तान में प्रयोग में लाई जाती हैं। यह आश्चर्य ही है कि पाकिस्तान की राजभाषा वही भारतीय भाषा उर्दू है। सिंधी, तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, गुजराती, बांग्ला, पंजाबी, नेपाली, मराठी आदि भाषाओं को बोलने वाले भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी हैं। फिर भी भारत की सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली भाषा हिंदी, फिजी, सूरीनाम और मॉरीशस में बहुतायत में बोली जाती है।

हिंद महासागर के मध्य बसा एक सुंदर सलोना देश 'मॉरीशस' । अगर मारीशस को 'लघु भारत' भी कहा जाए, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मॉरीशस का इतिहास बताता है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' के आगमन से वहाँ देवनागरी लिपि और खड़ीबोली का प्रचलन हुआ और इसी ग्रंथ के जरिए मॉरीशस में हिंदी साहित्य का विकास संभव हुआ। मॉरीशस में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1926 में 'तिलक विद्यालय' के नाम से हुई। 10 दिसंबर 1935 को यह संस्था हिंदी प्रचारिणी सभा के नाम से पंजीकृत हुई।

कोरिया में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के रूप में अपनाई गई है। आस्ट्रेलिया में स्कूल के स्तर पर हिंदी को पढ़ाई का विषय दिया गया है। न्यूजर्सी के बर्लिटाउन के सनातन मंदिर में हिंदी दिवस मनाया गया। जय हिंद, जय हिंदी की घोषणा के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

दक्षिण अफ्रीका संसद में उसके एक सदस्य श्री मावालाल रामगोविंद ने बजट पर अपना भाषण हिंदी में प्रस्तुत किया।

कनाडा के प्रसिद्ध नगर टोरन्टो में 'संगम' नाम पा पाक्षिक पत्र अभी भी प्रचलित है साथ ही मासिक पत्रिका 'संवाद' भी प्रकाशित की जाती है। नेपाल, बर्मा, पाकिस्तान, इंग्लैंड आदि देशों में ऐसी इकाईयाँ हैं, जहाँ हिंदी का प्रयोग होता है। अत: जब हम हिंदी के विश्व स्वरूप की

बात करते हैं, तब यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हिंदी भाषा का प्रयोग भारत के बाहर अनेक देशों में होता है। मास्को में रूसी भाषा से हिंदी में अनुवाद कार्य का एक बहुत बड़ा केंद्र है।

हिंदी के क्षेत्र में खाड़ी देशों की एक बड़ी उपलब्धि है हिंदी बाल पत्रिकाएँ, जो विश्व में प्रतिमाह 6000 से अधिक लोगों द्वारा 120 देशों में पढ़ी जाती हैं। अभिव्यक्ति व अनुभूति नाम की ये पत्रिकाएँ एंईपनलाजप. ोपदकपण्वतह तथा एंदनईनजप.ीपदकपण्वतह के पते पर विश्वजाल पर मुक्त उपलब्ध हैं। क्योंकि इनका प्रकाशन और संपादन संयुक्त अरब अमीरात से, टंकण कुवैत से साहित्य संयोजन इलाहाबाद से और योजना व प्रबंध न कैनेडा से संचालित हैं। इन पत्रिकाओं से जुड़े छह सदस्यों– प्रवीण सक्सेना, अश्विन गाँधी, पूर्णिमा वर्मन, दीपिका जोशी, प्रबंध कालिया और ब्रजेश शुक्ला, जो क्रमशः पत्रिका के प्रकाशन परियोजना निदेशन संपादन कला का कार्य देखते हैं की टीम कम्प्यूटर व नेट मीटिंग के द्वारा अलग अलग देशों से दिन में दो बार रूबरू होती है। पत्रिकाओं की टीम के साथ-साथ इसके अनेक लेखक व पाठक 'आई.सी. क्यू' नामक बात कार्यक्रम द्वारा इनके विकास और सहयोग में लगे हुए हैं। पत्रिकाओं के लेखकों में भारत नेपाल, यू.के., नार्वे, फ्रांस, कैनेडा, अमरीका, तथा न्यूजीलैंड जैसे देशों के अनेक प्रतिष्ठित व उदीयमान लेखक शामिल हैं।

15 अगस्त, सन् 2000 में प्रारंभ हुई, अभिव्यक्ति के 24 से अधिक स्तंभों में भारतीय साहित्य, कला, दर्शन, संस्कृति पर्यावरण तथा परिवार के अनेक विषयों को संजोया गया है। कहानियों, कविताओं समसामयिक लेखों, हास्य-व्यंग्य बच्चों और परिवार के लिए विभिन्न रोचक सामग्रियों को प्रस्तुत करने वाली इन सुरुचिपूर्ण पत्रिकाओं में लेखकों व कवियों के व्यक्तित्व व कृतित्व का एक विशेष स्तंभ बनाया गया है। इंशा अल्ला खाँ और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी से लेकर प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु से गुजरते हुए शैलेश मटियानी व सूर्यबाला तक कहानियों के क्षेत्र में तथा तुलसीदास से लेकर निराला व छायावादी कवियों को साथ लेते हुए धर्मवीर भारती व मंगलेश डबराल तक की रचनाओं को संकलित करने वाली ये पत्रिकाएँ विश्व के हर कोने में पहुँचने वाले सर्वसुलभ पुस्तकालय के समान हैं।

1 जनवरी 2001 में प्रारंभ हुई कविताओं की पत्रिका अनुभूति के 18 से अधिक स्तंभों में प्राचीन व आधुनिक कवियों, पाठकों व उदीयमान रचनाकारों की कविताओं को संकलित किया गया है। दोहों, गजलों और हाइकु के लिए विभिन्न स्तंभ बनाए गए हैं। और नए कवियों के लिए काव्य चर्चा नामक स्तंभ की रचना की गई है, जो विदेशों में रहने वाले हिंदी कवियों का अच्छा मार्गदर्शन करता है।

एक सच्चाई यह भी है कि विश्व के कई देश तो सरकारी स्तर पर हिंदी को मान्यता दे चुके हैं। फिजी, मॉरीशस और सूरीनाम में हिंदी भाषा के शिक्षण की विशिष्ट सुविधाएँ प्राप्त है। ब्रिटेन में जिन जातीय इकाईयों को शिक्षा की स्वतंत्रता प्राप्त है उनमें एशियाई मूल के भारतीय भी हैं। भारतीयों को अपने बच्चों को हिंदी उर्दू गुजराती तथा पंजाबी पढ़ाने के अवसर सरकार द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं। विश्वभर में विश्व भाषाओं के अध्ययन की यदि तुलनात्मक परीक्षा करें, तो हम पाएँगे कि पश्चिमी देशों में पश्चिम की भाषाओं के केंद्र प्रर्याप्त संख्या में हैं लेकिन भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक रुचि हिंदी में सकारण है।

1991 की जनगणना से स्पष्ट होता है कि अपनी विभिन्न शैलियों में जो हिंदी बोली जा रही है वह 71 प्रतिशत के लगभग है। आज की तारीख में यह प्रतिशत बढ़कर 83 प्रतिशत हो गया है। स्पष्ट है कि पश्चिमी जगत इससे प्रभावित हुआ है। और नतीजन विदेशी विश्वविद्यालयों में भारत विद्या के संस्थानों और अन्य भाषाई संस्थानों में हिंदी के अध्ययन एवं शोध की सुविध एँ मिल जाती हैं।

विश्व भाषा की पहचान का एक रूप यह भी है कि विभिन्न क्षेत्रों में उसकी सर्जनात्मक स्थिति कैसी है? निसंदेह, हिंदी के संदर्भ में विश्व के अनेक देशों में हिंदी के पठन प्रशिक्षण एवं शोध के अनेक केंद्र हैं। जहाँ निरंतर हिंदी का शिक्षण प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इन केंद्रों में भारतीय मूल के आचार्य एवं मूर्धन्य विद्वान समय-समय पर भारत सरकार द्वारा चयनित 'विजिटिंग प्रोफेसर्स' अध्यापन निर्देशन का कार्य कर रहे हैं, अनेक बड़े संस्थानों में तुलनात्मक शोधकार्य भी उच्च स्तर के हुए हैं। तथा अभी भी जारी हैं यह तथ्य उल्लेखनीय है कि न केवल भारतवंशी बल्कि भारतेतर लोग भी व्यापक स्तर पर चलते एक नए ढंग का वातावरण बन रहा है, जो हिंदी के सर्जनात्मक स्वरूप की ओर प्रेरित करता है।

आश्चर्य नहीं कि भारत के बाहर हिंदी लेखकों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है इनमें कई रचनाकारों ने तो कविता, कहानी और उपन्यास में बड़े मार्के का काम किया है।

अनिरूद्ध सिंह सेगर 'आकाश' के संपादकत्व में गुना (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित 'साहित्य क्रांति' शीर्षक मासिक पत्रिका में भारतेत्तर हिंदी लेखकों की रचनाएँ प्रायः छपती रहती हैं।

इसी प्रकार हिंदी प्रचारक पत्रिका संस्थान वाराणसी ने हाल ही में एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें इंग्लैंड, अमेरिका, मॉरीशस, फिजी आदि देशों में रह रहे भारतीय रचनाकारों की मूल रचनाओं को संकलित किया है। वाणी प्रकाशन, दिल्ली ने भी भारतेत्तर लेखकों की कुछेक कृतियों को प्रकाशित किया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साहित्यिक एवं वैचारिक आदान प्रदान की यह प्रक्रिया निश्चित रूप से सुखद मानी जानी चाहिए।

हिंदी में सृजनात्मक कार्य के विश्व

पटल पर भारतेत्तर लेखकों की दो श्रेण्यिाँ देखी जा सकती हैं। एक तो भारतीय मूल के लेखक तथा दूसरे अन्य देशों के लेखक। उधर कुछ सर्वाधिक चर्चित लेखकों में अभिमन्यु अंनतश मॉरीशस के प्रख्यात लेखक हैं, जो भारतीय मूल के हैं। सोमदत्त बखौरी, पूजानंद नेमा, रामदेव धुरंधर आदि। इसकी तरह रूस, चेक, पोलैंड, अमेरिका तथा इंगलैंड के अन्य लेखक हैं, जो वहाँ की जातीय इकाइयों के मूल से हैं तथा अपनी-अपनी भाषाओं के दक्ष हैं। रूस के वारिन्नकोव, चेलीशेव, सैकेविच, उलत्सफरावे आदि कुछ प्रसिद्ध नाम हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा व्याकरण एवं आधुनिक हिंदी साहित्य के बारे में महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। इसी तरह चेकवासी प्रोफेसर ओदोलेन स्मेकल हैं, जो हिंदी के कवि हैं। इनकी अनेक पुस्तकें भारत में बहुचर्चित रही हैं तथा उन्हें हिंदी लेखक के रूप में अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। पोलैंड के मारिथा क्षिस्तोफ बृसको एक विवेचक और चिंतक हैं तथा वे हिंदी में बराबर लिखते रहते हैं। जाहिर है कि भारतेत्तर हिंदी विद्वान सृजन विवेचना और मूल्यांकन में मुख्यधारा के हिंदी सृजन और चिंतन से परे नहीं है। अमेरिका में अनेक अमरीकी मूल के प्राध्यापक हैं जिन्होंने हिंदी भाषा के विषय में कई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं।

कहना न होगा कि सर्जनात्मक रूप से भारतेत्तर हिंदी लेखकों के योगदान की स्वीकृत अब नए रूपों में उपलब्ध हो रही है। इधर कुछ नए विद्वानों ने आंकड़ों सहित जो अपने नए अध्ययन प्रस्तुत किए है उनसे स्पष्ट होता है कि भारतेत्तर हिंदी साहित्य का एक पूर्ण आकार है। यह सामग्री एक प्रकार से नया आधार निर्मित कर रही है जिससे कालांतर में भारतीय हिंदी साहित्य के समानांतर भारतेतर अर्थात भारत के बाहर के हिंदी साहित्य का एक बृहद ग्रंथ सामने आया है जिसमें मॉरीशस के साहित्य का ऐतिहासिक आकलन भी किया गया है। भारत की तुलना में यद्यपि मॉरीशस का हिंदी साहित्य अभी केवल 160 वर्षों का है तथापि भाषाई स्तर पर उसने 1000 वर्षों से भी पुराने हिंदी साहित्य की परंपरागत उन सभी विशेषताओं को समेटा है जिन्हें भारतेत्तर क्षेत्रों में देखना कल्पना से भी परे की वस्तु है। लेकिन भारतीय मूल के जिन लोगों ने यह साहित्य रचा है उनकी चेतना में या कहें उनके मनोलोक में पुराना भारत मिथकीय रूप से उपस्थित था। यह मिथक रामकथा और महाभारत कथा या अन्य स्रोतों से उन्हें तत्काल उपलब्ध रहा। मॉरीशस और फिजी के साहित्य के बारे में जो शोध कार्य हुए हैं वे भी सतत् विकासशील हिंदी साहित्य की उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

विदेशों में हिंदी पत्रकारिता पर यदि दृष्टिगत किया जाए, तो मालूम पड़ता है कि यह 100 वर्ष से भी अधिक पुरानी हो चुकी है, आश्चर्य नहीं कि कलाकार रामपाल सिंह ने 1883 में लंदन से 'हिंदोस्तान' नामक त्रिभाषी, हिंदी उर्दू और अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया था, जो 1887 में दैनिक समाचार पत्र के रूप में परिवर्तित हो गई। विदेशी भूमि पर प्रकाशित होने वाली यह प्रथम पत्रिका थी। अमेरिका से प्रकाशित होने वाली हिंदी पत्रिकाओं 'सौरभ विश्वा' और 'विश्व विवेक' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमेरिका के डॉ गाई लिओन बैक और जर्मनी के डा० क्रिस्टयाना श्नलनकाख आदि विद्वानों द्वारा हिंदी में लिखे लेखों से न केवल उनका हिंदी प्रेम व्यक्त होता है, बल्कि भारत से बाहर हिंदी की प्रतिष्ठा भी रेखांकित होती है। चीन से हिंदी में प्रकाशित होने वाली प्रमुख पत्रिकाओं में 'चीन सचिव' और 'जन सचिव' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पेइचिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विद्यार्थी एक हस्तलिखित भित्ति पत्रिका निकालते हैं। उसमें विद्यार्थियों द्वारा हिंदी में लिखी गई कहानियाँ, लेख, निबंध आदि प्रकाशित किए जाते हैं।

आज का कम्प्यूटर युग के विकास और प्रसार का है जिसका आधार साफ्टवेयर, प्रोग्राम आदि प्रथम रूप से अँग्रेजी या अन्य भाषाओं में है। इस क्षेत्र में भी विदेशों में हिंदी में कार्य हो रहा है। आज वर्ड प्रोसेसिंग डेटा प्रोसेसिंग वेब दुनिया आदि में हिंदी का प्रवाह के साथ प्रयोग हो रहा है। आज 'गुरु' शब्दमाला 'अक्षर' आलख मल्टावर्ड 'सुलेख' शब्दरत्न लिपि 'लीप' आफिस 'श्रीलिपि' देवबेस, आकृति अंकुर, बैंकमित्र, इज्म, लीला, हिंदी एल्प, पर्सनल आदि ऐसे द्विभाषिक पैकेज हैं जिनमें हिंदी में कार्य करने की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

इसी तरह भाषा एक बहुभाषी शब्द संसाधक है। इसमें संगणन मार्जिन रखने कटशीट प्रिंट जैसी सुविधाएँ प्राप्त हैं। स्पष्ट है कि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी में शब्द संसाधकों की कोई समस्या नहीं रह गई है।

ताज्जुब नहीं कि आज इंटरनेट पर अँग्रेजी के बाद जिस भाषा का वर्चस्व है, वह हिंदी ही है। टामी ब्लेयर मार्क टुली एवं कई राष्ट्राध्यक्ष हिंदी के वैश्विक स्वरूप को मान्यता तक प्रदान करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में कई बार हिंदी गुंजित अनुगुंजित हो चुकी है।

कम्प्यूटर के संचालन प्रणाली की हिंदीकरण की योजना भी विदेशी कंपनियों के द्वारा की जा रही है। हिंदी के विदेशी उपासकों में बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के का नाम अग्रणीय है। अँग्रेजी हिंदी शब्दकोष के प्रस्तुत करने वाले रचयिता हैं। रामकथा के अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान हैं। रामभक्ति के विकास विषय पर शोध कार्य किया। 1950 में रांची में हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। 1974 में वे पद्मभूषण से सम्मानित किए गए।

अमेरिका के डॉ० माइकल शीपरों पै शिकागो विश्वविद्यालय से भाषा विज्ञान में हिंदी विषय पर पीएच-डी की उपाधि प्राप्त की।

आस्ट्रेलिया के रिचार्ड ने भी हिंदी के विकास में योगदान किया। मॉरीशस में हिंदी का सांस्कृतिक महत्त्व विषय पर एक

शोध लेख प्रस्तुत किया।

रूस के अलेक्सेइ पेत्राविच बरान्निकोच हिंदी के भाषाविद रहे। हिंदी के प्रति लगाव एवं भारतीय भाषाओं की बुनियाद रूप में रखने वाले यही विद्वान थे। हिंदी रूसी शब्दावली भी बनाई जातक कथाओं का अनुवाद किया। इंग्लैंड के डॉ० रूपर्ट स्नेल विदेश में बृजभाषा व खड़ी बोली के रुचि कर विद्वान रहे। हिंदी से अँग्रेजी अनुवाद की कृतियाँ प्रस्तुत कीं। डॉ० हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के चारों खण्डों का हिंदी से अँग्रेजी में अनुवाद किया।

चेकोस्लावाकिया के महान हिंदी कवि के रूप में डॉ० आंदोलन स्मेकल का नाम सर्वोपरि है। आपने चार्ल्स विश्वविद्यालय से एम.ए. हिंदी किया। हिंदी के लोक साहित्य व अत्यधिक उपन्यासों पर शोध कर पीएच. डी की उपाधि यहीं से प्राप्त की। प्रेमचंद के 'गोदान' का चेक भाषा से अनुवाद किया।

इटली के जोजो मिलालेलि ने हिंदी में अवधी ब्रज ओर खड़ी बोली के साहित्य में शोध किया तथा संत साहित्य पर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त विदेशों में नियमित रूप से हिंदी की लोकप्रिय पत्रिकाएँ निकलती हैं। शांतिदूत नार्वे इस पत्रिका में मौलिक और अनुदित रचनाओं का अनुपात प्रायः बराबर बराबर रहता है। 'कोहेनूर' आर्य संदेश 'ज्योति' आदि पत्रिकाओं का ट्रिनीडाड एवं टोबेगों से साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन किया जाता है।

सूरीनाम से हिंदी में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में सनातन धर्म प्रकाश विकास और जागृति उल्लेखनीय है। सूरीनाम दर्पण सूरीनाम की सबसे अधिक उल्लेखनीय हिंदी पत्रिका है। यह बताना न होगा कि अब तक आयोजित आठ विश्व हिंदी सम्मेलन इस बात के साक्षी हैं कि वैश्विक स्तर पर हिंदी अपना एक सर्वमान्य धरातल निर्मित कर चुकी है। इन सम्मेलनों में हिंदी के निष्कर्ष पर विद्वानों द्वारा पढ़े गए पर्चे परिचर्चाएँ, विमर्श, निष्कर्ष, सुझाव, निर्णय आदि हिंदी को ग्लोबव्यापी बनाते हैं।

भूंमडलीकरण उदारीकरण निजीकरण मुक्त बाजार और विराट पूँजी के इस दौर में सर्वत्र हिंदी को स्वीकृति मिल रही है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनिया भारत की जमीन पर अपने पैर जमाने तथा कारोबार को बढ़ाने के लिए विज्ञापनों, होर्डिगों तथा प्रचार-प्रसार सामग्री में हिंदी को विशेष स्थान दे रही है। शिखर कम्प्यूटर कंपनियों के स्वामी विशेषज्ञ हिंदी की संप्रेषणीयता पर मुग्ध हैं।

हिंदी भाषा को समग्र रूप में संसार के सामने लाने के लिए इसे लचीली एवं संग्राहक बनाए जाने के भरपूर प्रयास भी किए जा रहे हैं।

इसमें मतैक्य है कि विश्व भाषा के रूप में हिंदी इसलिए विकसित हो रही है, क्योंकि इसमें आत्मसातीरण की जर्बदस्त ताकत है, इसकी खूबसूरती सहजता इसके शब्दों के संगीत जादू एवं वैज्ञानिकता से सूचना प्रौद्योगिकी जगत अच्छी तरह से परिचित हो चुका है। गंगा नदी कलकत्ता से कभी हिमालय की ओर वापस नहीं मुड़ी है। हिंदी का विश्व परिदृश्य की ओर प्रवाह भी अवरूद्ध होने वाला नहीं है। इसने अपने अधिक फैलाव एवं. प्रसार के लिए शक्ति अर्जित कर ली है। हिंदी में भावात्मक एकता का एक ऐसा गुण है, जो विश्व के देशों को भाषाई एवं भावनात्मकता के सूत्र में पिरोने में सक्षम है।

आज यदि भौगोलिक दूरियाँ नजदीकियों में रूपांतरित हुई है, तो अन्य कारणों के साथ साथ हिंदी का भी इसमें अप्रतिम योगदान है।

कह देना होगा कि वैश्विक स्तर पर हिंदी का भविष्य देदीप्यमान है। इक्कीसवीं सदी में हिंदी पूर्वीकरण और पश्चिमीकरण के मध्य एक भावात्मक सेतु साबित होगी यह तय है। विदेशों में भी हिंदी अपनी सुगंध को सुशोभित कर रही है इसमें आश्चर्य नहीं, वरन फक्र है।

संपर्क : ट्रिप्लिकेन, चेन्नई

प्रदर्शनप्रिया

○ रमेश कुमार सोनी

खामोशी
सुंदर विद्या है
तकरार से बचने
(मूखेषू विवादं न कर्त्तव्यं)
किंतु
वाणी को मुखर करना
शोषण के खिलाफ
उससे सुंदूर विद्या है।
तब्दील हो जाती है
चोरी, डकैती में
छेड़खानी, बलात्कार में और
अपहरण, हत्या में
तुम्हारी खामोशी से।
ऐ, गूंगे-बहरों
अपनी जड़ता को
प्रखर आक्रोश की चक्रवात में
तब्दील कर
प्रदर्शनप्रिया बना दें
झूठ को महिमामंडित कर
उत्पीड़न के बवंडरों ने
तुम्हारी खुशियों के बसंत की
भ्रूण हत्या कर दी थी।
तुम पाषाण होकर
अपनी दारुण दास्तान
ज़माने को नहीं सुना सकते
तुम्हें प्रयोगों के पुखराज पहनकर
वाचाल वक्ता के वेश में
दरिंदे-भेड़ियों की सभा बीच
अपने यौवन और पौरुष का
बीजारोपण करना होगा
ज्योतिर्मय होने का
यही एकमात्र मूलमंत्र है ।।

संपर्क : जे.पी.रोड, बसना
(छ.ग.) 493554

■

पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा

❍ डॉ० नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

लक्ष्मण रेखा की कहानी हम सभी जानते हैं, इसके निहितार्थ को भी भली भाँति समझत हैं। पत्रकारिता के संदर्भ में इसका आशय मर्यादा या अभीष्ट सीमांकन के रूप में समझना बेहतर होगा। लक्ष्मण रेखा के उल्लंघन से जो भयावह स्थितियाँ पैदा हुईं उसी प्रकार की स्थितियाँ पत्रकारिता द्वारा किन्हीं मर्यादाओं के उल्लंघन से हुई हैं या हो सकती हैं। इसलिए बहुत जरुरी है कि हम पत्रकारिता के लक्ष्य को रेखांकित कर उन अपेक्षित मर्यादाओं का भी ज़िक्र करें जिनकी अनदेखी पत्रकारिता-जगत में हो रही है। यहाँ प्रारंभ में यह स्पष्ट करना ठीक होगा कि मैं पत्रकारिता को एक व्यापक संदर्भ में ले रहा हूँ जिसमें मीडिया के सभी स्वरुप, जैसे अखबार, पत्रिकाएँ, रिसाले आदि के साथ साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या इससे जुड़े अन्य दृश्यश्रव्य साधन शामिल हैं। साथ ही, यह भी कहना ठीक रहेगा कि यहाँ पत्रकारिता के इतिहास को दोहराना या अपने देश के स्वतंत्रता-संग्राम में पत्रकारिता की सकारात्मक भूमिका का विवेचन शायद ग़ैरजरूरी है, क्योंकि उस तरह की मिशनरी पत्रकारिता अब बहुत कम दिखाई पड़ती है। इसलिए आज की पत्रकारिता के बारे में ही अपनी बात कहना चाहूँगा, क्योंकि इस पत्रकारिता के बदलते मंज़र को समझना तथा पत्रकारिता द्वारा, उसके लिए खिंची लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन कैसे हुआ है या हो रहा है तथा इस उल्लंघन के क्या दुष्परिणाम हुए हैं या हो रहे हैं, इन बातों पर ग़ौर करना इस लेख का प्रमुख मन्तव्य है। मेरा प्रयत्न यह भी है कि 'ऐसी स्थिति में क्या किया जाये जिससे कि बदहाल पत्रकारिता को उसका अभिप्रेत मिल सके और उसकी लोकमंगलोमुखी भूमिका समाज-परिवर्त्तन के लिए यथोचित दिशा प्रदान कर सके,' इस पर भी विचार कर सकूँ।

जब मैं आज की पत्रकारिता की बात कर रहा हूँ, तो मेरे ज़हन में अनायास विक्टोरियन युग के अँग्रेज़ी कवि रॉबर्ट ब्राउनिंग की एक कविता की यह पंक्ति उभर आती है, ''गॉड इज़ इन हिज़ हैविन एण्ड ऑल इज़ वैल विद 'द वर्ल्ड'' अर्थात् ईश्वर अपने स्वर्ग में बैठा है और दुनिया में सब ठीक ठाक चल रहा है। हो सकता है उस कवि के समय में उसके देश में सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था, पर हमारे देश में पत्रकारिता जगत में सब कुछ ठीक ठाक चल रहा है यह कहना शायद कठिन होगा। ऐसी बात नहीं है कि पत्रकारिता में सब जगह अँधेरा ही अँधेरा हो। कतिपय इने गिने अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, दृश्य श्रव्य कार्यक्रम आज भी मूल्योन्मुखी मुहिम के तहत पत्रकारिता के अभीष्ट लक्ष्यों की ओर बढ़ रहे हैं और सामाजिक रूपांतरण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। पर यह भी सच है कि अधिकांश रूप में वर्त्तमान पत्रकारिता का परिदृश्य निराशाजनक ही है। कारण इसका एक दम साफ है। पत्रकारिता व्यावसायिकता और पश्चिमी दुनिया की तर्ज़ पर संस्कारहीनता, वर्जनाहीनता और स्वच्छंदता के चंगुल में फँसकर अपने मूल उद्देश्य-लोकक्षेम-को भुला बैठी है। यह अत्यंत अशिव स्थिति है। ध्यातव्य है कि पत्रकारिता के सामने कुछ लक्ष्मण रेखाएँ होती हैं जिनके भीतर रहकर ही पत्रकारिता अपनी समाजोपयोगी भूमिका निभा सकती है। दुर्भाय यह है कि कतिपय अपवादों को छोड़कर पत्रकारिता अपने विभिन्न रूपों में मर्यादाओं की अवहेलना कर समाज को अमंगल की ओर ले जा रही है। पत्रकारिता का तकाज़ा है कि वह शुभ-अशुभ, सद्-असद् और शिव-अशिव में भेद करके 'सत्यं शिवं सुंदरं' के आदर्श को समाज के हितार्थ रूपायित करे, ताकि समाज में मानवोचित मूल्यों का विकास हो सके। इसके विपरीत यदि पत्रकारिता इन अपेक्षाओं या मर्यादाओं की लक्ष्मणरेखा को लाँघकर उपभोक्तावाद की 'आक्टोपस' गिरफ्त में फँसकर अनैतिकता, असंवेदना, आपराधिकता, सामाजिक विद्रूपता, मनोमालिन्य, असमरसता आदि जैसे द्वेषों से ग्रस्त होकर सामाजिक वि शृंखलता को बढ़ावा देने लगे, तो ऐसी पत्रकारिता किसी देश का क्या हित कर सकती है। पत्रकारिता की लक्ष्मणरेखा जैसा विषय के संदर्भ में इस पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए।

अब देखें कि पत्रकारिता के वास्तविक सरोकार क्या हैं या होने चाहिए। इन्हीं को हम चाहें तो लक्ष्मणरेखा का नाम दे सकते हैं। इन सरोकारों की उपेक्षा या अवहेलना इस लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन ही है। मोटे रूप में सरोकार एक दम साफ हैं। जीवन-जगत की जानकारी के साथ साथ जनमत निर्माण, तथ्यों की यथासंभव वस्तुनिष्ठ प्रस्तुति, सामाजिक सद्भाव संस्कार निर्माण विश्व बंधुत्व के दायरे में राष्ट्रप्रेम आदि जैसे मानवोचित गुणों की सम्यक् प्रस्तुति के द्वारा संस्कारित व्याष्टि के माध्यम से समष्टि को लोकमंगल की दिशा में प्रशस्त करना। पत्रकारिता का रास्ता अब उतना सरपट नहीं रह गया है जितना कि पहले था। निरंतर जटिल होते जा रहे समाज में पत्रकारिता का मार्ग भी जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। उपभोक्ता संस्कृति (अपसंस्कृति) के माहौल में पत्रकारिता की मजबूरियाँ बढ़ी हैं, यह सही है, पर पत्रकारिता को अपनी प्राथमिकताएँ, वरीयताएँ (लक्ष्मणरेखा) तय तो करनी ही पड़ेगी यदि उसे अपने आदर्शों के अनुरूप चलना है।

जब पत्रकारिता के सरोकारों की बात चली है तो यह देखना ठीक होगा कि आज की बहुआयामी पत्रकारिता किस हद तक इन सरोकारों को अंजाम दे पा रही है। व्यावसायिकता की मुखापेक्षी पत्रकारिता (अपने बहुरुपों में) का एक लचर तर्क है कि वे वही प्रकाशित या प्रदर्शित करते हैं,

जो पाठक या दर्शक चाहते हैं। पत्रकारिता में संलग्न लोग भूल जाते हैं कि पाठकों तथा दर्शकों की बोधवृत्ति का परिष्कार करना भी उनके प्रमुख सरोकारों में शामिल है। उन्हें संस्कारित करके कुमार्ग से हटाना भी उनका दायित्व है। इसके विपरीत यदि पत्रकारिता वासना, उत्तेजना, हिंसा या मानसिक-प्रदूषण का घटक बनने लगे तो ऐसी पत्रकारिता हमारे किस काम की। यदि पत्रकारिता उदात्त जीवनशैली की तुलना में अनुदात्त की पक्षधर बन जाये, तो ऐसी पत्रकारिता किस देश को निहाल करेगी। इस संदर्भ में मैं एक उद्धरण देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। ये शब्द प्रसिद्ध संवाद लेखक एवं कॉपी राइटर, प्रसून जोशी के हैं, जो उन्होंने एक अपने साक्षात्कार के दौरान कहे थे। ('अज्ञा, जिंदगी (जयपुर)- जुलाई 08):

"वैश्वीकरण के साथ-साथ हर क्षेत्र में बदलाव तो आया है और वह बदलाव हमारे अपने सांस्कृतिक ढाँचे के अनुरुप विकसित हुआ है। फिर भी क्या वजह है कि मीडिया ने अपने दरवाज़े और खिड़की पूरी तरह खोल कर रख दिये, जिसकी वजह से अच्छाई क साथ-साथ कचरा भी प्रवेश कर गया। कुछ पत्र-पत्रिकाओं को छोड़कर ज्यादातर आप देखते हैं कोई भी किसी भी तरह का फिल्टर एक्सरसाइज नहीं किया जा रहा है। जो मिल गया सब दिखाया जा रहा है आप सोचिए बेचारी लड़की का बलात्कार हो चुका है अथवा वह मर चुकी है बेचारी 15 साल की लड़की। आप उसका एनांलाइज़ कर रहे हैं कि वह कपड़े किस तरह के पहनती थी। आपके पास कहीं न कहीं थोड़ी बहुत संवेदना बची ही नहीं। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है और इस पर व्यापक बहस होनी चाहिए। हमारे देश के वैल्यू सिस्टम को क्या हो गया है? जो एक तरफ इन सभी चीज़ों के लिए कभी लड़ता था, आवाज़ उठाता था। आज दूसरी तरफ से बड़ी बड़ी लिबरल उदारवादी आवाज़ें आ रही हैं कि .... 'तो क्या हुआ?'................'क्या बुराई है इसमें' आप कहते हैं दर्शकों को जो अच्छा लगेगा वह देखेंगे जो बुरा लगेगा वह नहीं देखेंगे। ठीक है, लेकिन पहले आप यह तो बताइए कि उनके लिए क्या गलत है और क्या सही।..........टी.वी. तो आपके घर पर है, आप उसमें किसी चीज़ को आने से कैसे रोक सकते हैं। आप घर-परिवार में सबके साथ बैठकर यह कार्यक्रम देख रहे होते हैं। साथ में दादा भी बैठे हैं, दादी भी, बच्चे भी हैं, बहुएँ भी हैं। यह सब खतरनाक है। जो हो रहा है, बहुत ही गलत हो रहा है। उस पर अंकुश लगना चाहिए और किसी तरह का प्राधिकरण अथवा बोर्ड बनाया जाना चाहिए जिसमें इस मीडिया से जुड़े जिम्मेदार लोग हो, जो इस बात को बार-बार उठाएँ कि दर्शकों को परोसने की क्या मर्यादा हो। एक तरह की सेंसरशिप होनी चाहिए, जो यह तय करे कि क्या गलत है और क्या सही। यदि आप अच्छी चीजें दिखाएँगे, तो लोग उसे स्वीकार करेंगे। आपको दर्शक के सामने उसकी पसंद स्पष्ट करनी होगी। तब आपको पता चलेगा कि वह अच्छी-चीज़ें पसंद करता है नहीं।"

पत्रकारिता द्वारा लोगों की 'बोधवृत्ति के परिष्कार' की जो बात मैं कह रहा था वही प्रकारांतर से उपरोक्त कथन में महसूस की जा सकती है। दृश्य-श्रव्य (सिनेमा, टी.वी.) की बात इसलिए कही जा रही थी क्योंकि आजकल मुद्रण-मीडिया के असर में छीजन आ जाने के कारण और लोगों की पठनवृत्ति में उत्तरोत्तर कमी हो जाने के कारण पत्रकारिता का यही स्वरुप जनमानस पर अत्यधिक हावी होकर हमारी पूरी सामाजिक जीवनशैली को प्रभावित कर रहा है। यह प्रभाव अच्छा भी है कहीं कहीं, पर ज्यादातर बुरा ही है। टी.वी. के कुछ चैनल बाकई अच्छे हैं, ज्ञानप्रद हैं स्वस्थ मनोरंजकदायक हैं, पर ज्यादातर बेहूदा, पाखण्ड अँधविश्वास संवर्द्धक, अश्लील और अभ्रदता के प्रोत्साहक होते हैं। साहित्यिक पत्रकारिता, आध्यात्मिक था धार्मिक पत्रकारिता के सीमित उद्देश्य हैं, इन्हें कितने लोग पढ़ते हैं, यह सब 'समझते हैं। इनके पढ़ने-पढ़ाने से कितने लोग संस्कारित हो रहे हैं यह सर्वेक्षण का विषय है। अलबत्ता अखबार प्राय: सभी जगह पढ़े जाते हैं, ज्यादातर खबरों के लिए, और बातों के लिए भी। अँग्रेज़ी, हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के अखबारों का एक विशाल पाठक परिवार है। ये अखबार ही सही मायने में समाज के मिज़ाज को बनाते बिगाड़ते हैं। इन्हीं पर पत्रकारिता के शुक्ल या कृष्ण पक्ष का दारोमदार है। इन अखबारों में, खास तौर से राष्ट्रीय या प्रादेशिक स्तर के अखबारों में अथवा छोटे-मोटे स्थानीय अखबारों में जो कुछ छपता है उससे ही सामाजिक आचरण का सुधरना या विगड़ना निर्भर हैं आजकल ऐसे बहुत कम अखबार या पत्रिकाएँ हैं जो व्यावसायिकता से निर्लिप्त रहकर सामाजिक कल्याण का कार्य कर रहे हैं। अधिकतर धनार्जन ही उद्देश्य रहता है या किसी राजनीतिक दल या धन-कुबेर की पक्षधरता या चाकरी ही अखबारों की किस्मत दिखाई देती है। यह पत्रकारिता के वर्तमान के लिए अभिशाप है, भविष्य के लिए अशुभ संकेत है। सनसनीखेज़ सामग्री से भरे, विज्ञापन बहुल अखबारों या पत्रिकाओं में साहित्य हाशिये पर है। मसलन धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि जैसी पत्रिकाओं का बंद हो जाना व्यावसायिकता के समर में साहित्य का हार जाने जैसा है। और वैसे भी, उरम्भरि शिक्षा या भौतिकता की चूहा दौड़ में उच्चादर्शों या साहित्यानुराग के प्रति लगाव रखने का जोखिम कितने लोग उठाना चाहेंगे।

जब पत्रकारिता की लक्ष्मणरेखा की बात उठती है, तो आज के परिदृश्य और उसकी विसंगतियों की चर्चा जरुरी हो जाती है। दुष्यंत कुमार की ये पंक्तियाँ इसे इस तरह से बयान करती हैं:

इस सड़क पर इस क़दर कीचड़ बिछी है
हर किसी का पाँव घुटने तक सना है।

पर सवाल उठता है कि इस कीचड़ के लिए कौन जिम्मेदार है। क्या पत्रकारिता ही जिम्मेदार है? पत्रकारिता द्वारा लक्ष्मणरेखा के उल्लंघन में क्या हम भी तो साझेदार

नहीं हैं। यह बात मैं पत्रकारिता द्वारा इस उल्लंघन की पैरवी करने की नीयत से नहीं कह रहा हूँ। समाज के किसी भी क्षेत्र पर नजर डालें, गंदगी ही गंदगी ही मिलेगी। आख़िर, पत्रकारिता इस गंदगी को क्यों दिखाती है। जाहिर है, यथार्थबोध के लिए। पर हम उसे क्यों देखना या पढ़ना चाहते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारी दोहरी मानसिकता या दोहरे नैतिक मानदण्डों का यह परिणाम हो? पश्चिम में यह संकट नहीं है, वहाँ खुलापन है, मुक्त व्यवहार है। इसलिए वहाँ छद्‌म या पाखण्ड कम है। वहाँ की जीवनशैली मुक्त यौनाचार, नग्नता, या अश्लीलता को ऊपर से आरोपित सदाचार-संहिता से नहीं छिपाती। इसे आप चारित्रिक गिरावट कह लें, पर वे जो हैं सो हैं। हमारे यहाँ स्थिति दूसरी है। हमारे पास उच्च आचरण संस्कृति की विरासत है, पर हम मुक्त आचार की आंतरिक इच्छा रखते हैं। हमारे ऊपर देखी गई वर्जनाएँ ऐसा करने से हमको पाबंद करती हैं। पर मन है कि मानता ही नहीं। 'धर्मं चर, सत्यं वद्', न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः', 'तेन त्यक्तेन भुंजीथः, 'मातृवत् परदारेषु', 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' जैसी शिक्षाओं के रहते हमारा' भीतर का व्यवहार इसका उल्टा करता है। हम अधिक असत्यवादी, वित्तप्रेमी, परिग्रही, और नारी को भोग्या समझने वाले हैं। पर यह व्यवहार हम सामने नहीं दिखाना चाहते। सोच कुछ रहे हैं, सीख कुछ रहे हैं और कर कुछ और रहे हैं। पाखण्ड और छद्‌म हमारे नज़दीक रहते हैं। अब हमारा औरत के प्रति नज़रिया क्या है? ऊपर से कह रहे हैं देवी का रूप है, पर हमारे दिमाग में क्या चल रहा है यह फ्राइड के सिवाय और कौन बता सकता है। हम औरत की नग्नता देखना चाहते हैं, दूसरी औरतों की, अपने घर की औरतों की नहीं। क्या यह दोहरी मानसिकता नहीं है? क्या ऐसा तो नहीं है कि हम पत्रकारिता के विभिन्न आयामों द्वारा प्रदर्शित नग्नता, अश्लीलता, बलात्कार का विवरण देखकर या पढ़कर एक प्रतिनिधिक आनंद (वाइकेरियस प्लेज़र) प्राप्त करना चाहते हैं। नहीं तो हम पत्र पत्रिकाओं में स्त्री के नग्न या अर्धनग्न चित्रों को अथवा दृश्य श्रव्य माध्यमों से उसकी नग्न छवि को क्यों स्वीकारते हैं, क्यों पढ़ना चाहते हैं बलात्कार की खबरों को व्यौरेबार? छिपकर ही सही, दूसरों से आँख बचाकर। इसी दोहरी मानसिकता का लाभ उपभोक्ताप्रेमी व्यावसायिकता में संलग्न पत्रकारिता उठा रही है, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। हमारी प्रच्छन्न माँग भी तो यही है। पर पत्रकारिता इस माँग को पूरा करे यह उसकी मजबूरी नहीं होनी चाहिए। लोकमंगल की राह पर चलने वाली पत्रकारिता को ऐसी माँग को ठुकरा देना चाहिए। लोकहित सर्वोपरि मानकर उसे संस्कार संपृक्त समाज की संरचना में सहयोग देना चाहिए। उसे सांस्कृतिक, नैतिक, लोकतांत्रिक मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखा को न तो स्वयं लाँघना चाहिए और न किसी को लाँघने देना चाहिए। सुरसरि की तरह लोकमंगल की ओर प्रवृत्त होने वाली पत्रकारिता का यह सार्वभौमिक और सार्वकालिक धर्म है।

अब प्रश्न यह है कि वैश्वीकरण के माहौल में, उपभोक्तावादी विश्व में और व्यावसायिक स्पर्धा के दौर में पत्रकारिता मर्यादाओं की लक्ष्मणरेखा के भीतर अपने को कैसे रखे?, असंख्य प्रलोभन हैं, प्रपंच हैं और अपने अस्तित्व को बरकरार रखने की जरूरत है। पर क्या यह सब इस लक्ष्मण-रेखा को लाँघ कर हो? कदापि नहीं। गहन आत्मावलोकन की अपेक्षा है। लक्ष्मण रेखा के भीतर रहने की संकल्पशीलता की दरकार है कि पत्रकारिता अपने विस्मृत स्वरूप या वजूद को पहचान कर अपनी प्राणवायु को इतना सशक्त बना ले कि उसके दरवाज़े और खिड़कियाँ खुले रहने पर भी, बाहर से आने वाले प्रदूषित प्रभंजनों को बाहर धकेल दे। वह आधुनिकता से परहेज़ न करे पर आधुनिकता का हाथ सनातन मानव संस्कृति के हाथों में जरूर थमा दे। वह प्रकृति को विकृति न बनने दे, उसे संस्कृति में ढालती रहे। आज की पत्रकारिता के लिए यह परमावश्यक है। पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा के तहत निम्नांकित बिंदु महत्त्वपूर्ण हैं:

1. सत्यं शिवं सुंदरं' का यथाशक्य अनुपालन

2. अशोभन का परित्याग, शोभन की प्रस्तुति और प्रदर्शन

3. व्यक्ति की गरिमा का पोषण

4. लोकतांत्रिक जीवन शैली का संवर्द्धन

5. नारी की अस्मिता की रक्षा

6. बहुजन हिताय, बहु जन सुखाय समर्पण

7. आधुनिकता के जीवन मूल्यों एवं सनातन मानवीय मूल्यों में समन्वय

8. पूर्वाग्रह, अँधविश्वास मुक्त जीवन दृष्टि (साइन्टिफिक टैम्पर) का जनजन में विकास

9. भौतिक उन्नति संयम के बितान तले

10. शिवत्व का चमन, अशिवत्व का परित्याग

यह सूची अंतिम नहीं मानी जानी चाहिए, इसमें और भी बिंदु जुड़ सकते हैं। इन बिंदुओं में प्रत्येक बिंदु स्वतंत्र चर्चा की गुंजाइश रखता है। पर विवेचन विस्तार से बचने के लिए इन बिंदुओं को सम्यक संकेत समझकर विचार करना ही श्रेयस्कर होगा। आशय यह है कि पत्रकारिता में संलग्न व्यक्तियों को सायास इन बिंदुओं को अपनी कार्य योजना में शामिल करना चाहिए। मुझे पूरा अहसास है कि आज के इस भौतिकता संकुल विश्व में इस राह पर चलकर अपना अस्तित्व कायम रखना एक दुष्कर कार्य है। फिर भी, पत्रकारिता में लोकमंगल के पक्षधर मीडिया कर्मियों को यह जोखिम उठाने के लिए तैयार तो रहना ही पड़ेगा। अन्यथा समाज के प्रहरी मीडिया जगत की वर्तमान भूमिका निरर्थक ही सिद्ध होगी। बिगाड़ बहुत हो चुका है, शालीनता, सौमनस्य, श्लीलता, समरसता, सांस्कृतिक मूल्यों की अपार क्षति हो चुकी हैं एक अजीब सी लाचारी है और हम इस

शेष भाग पेज नं. 48 पर

महिला पत्रकार दशा – दिशा

डा. (श्रीमती) राजु एस. बागलकोट *श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति*

भारत गणतंत्र देश है । इस लोकतंत्र का सूत्र पकडकर अनेक महिलाएँ राजनीति के शीर्ष पर आरूढ होती जा रही है । एक ओर आरक्षण की मांग रखती हुई संसद में पुरुष संसदों के सामने गिडगिडाती है, दूसरी ओर बिना किसी आरक्षण का सहारा लिए अनेक राज्यों में तेजस्वी महिलाएँ सारे विरोधों और अवरोधों को पार कर अपना व्यक्तित्व उभार ने में सफल होती जा रही है । पक्ष या विचारधारा जो भी हो किंतु चन्नै में जयललिता, मध्यप्रदेश में उमा भारती, दिल्ली में शीला दीक्षित, राजस्थान मं वसुंधरा राजे, बिहार में राबडी देवी आदि अपने-अपने राज्यों में महती भूमिका निभा रही हैं । उन्होंने पूरे लगन, परिश्रम, क्षमता और संकल्प के साथ कामयाबी के शिखर तक पहुंच पाई हैं । अब पूरे भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्रीमती सोनिया गाँधी एक असाधारण व्यक्तित्व के रूप में उभर कर आयी है । यह कोई सामान्य बात नहीं है ।

बिल्कुल वैसे ही भारतीय साहित्य में खासकर हिंदी साहित्य की बात करें तो हमे तेजस्वी लेखिकाओं की एक लंबी लिस्ट सामने आती है । पहले हजारों लाखों में कोई एक कवयित्री मीराबाई नजर आती थी, झांसी की रानी, महादेवी वर्मा, कोई सुभद्रा कुमारि चौहान अपनी पूरी आभा के साथ चमकते हुए नजर आती भी । आज वह सूची इतनी बड गई है कि याद रखना बडी मुश्किल है ।

चाहे वह कथा – लेखन का क्षेत्र हों या कविता का, चाहे वह विश्वविद्यालयों में अध्यापन का दायरा हो या दायित्व के दूसरे क्षेत्र । महिलाएँ आज पुरष की तुलना में पूरे उभार के साथ नजर उठाये खडी है बात तब पत्रकारिता की आजाय तो स्वतंत्रता के बाद जब शुरु में कुछ महिलायों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया तो उनके पुरुष सहयोगियों और नियोक्ताओं को यह विश्वास न था कि पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाएँ सफल हो सकती है ।

आज पत्रकारिता में महिलाओं के कार्यक्षेत्र का दायरा इतना विस्तार हो चुका है कि न केवल संपादक है बल्कि संवाद समितियों, दूरदर्शन, आकाशवाणी और सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक प्रतिष्ठानों में जुडे पदों का उत्तरदायित्व संभाले हुए हैं । अनेक महिला पत्रकार संवादता, विशेष संवादाता तथा मुख्य संवादाता पद पर कार्य कर रही हैं । 'हिंदू' की चित्रा सुब्रह्मण्यम्, 'संडे' की सीमा मुस्तफा और 'इंडियन एक्सप्रेस' की तवलीन सिंह ने अपनी खोडपरक रपटों राष्ट्रीय और मधु किश्वर की उत्कृष्ट लेखन सर्वत्र सराहनीय है । इस मुकाम तक पहुँच ने केलिए उन्हे एक लंबा संघर्ष करना पडा है । पुरुष पत्रकारों से कोई कम नहीं जैसा विश्वास उनको दिलाना पडा । क्योंकि भारत एक सांप्रदायिक देश है । यहाँ की महिलाएँ सिर्फ चार दिवारों के भीतर जीवित रहने की आदत डाल चुकी थी । पुरुष भी इन्हें बच्चे पैदा करने की मशीने मान बैठा था ।

जैसे ही देश आजाद हुआ, वैसे ही इनकी पैरों में जकडी सांप्रदायिक बेडियाँ खुल गई । सोच का दायरा विकास पानेलगा तेजी से बडते माध्यमों से समझौता कर उसमें जुडने लगी । स्वतंत्रता के बाद जीवन के सभी क्षेत्रों के द्वारा महिलाओं के लिए खुल गए । श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित सोवियत संघ में भारत की राजदूत नियुक्त की गई । बाद में वह संयुक्त राष्ट्र महासभा की अध्यक्षा निर्वाचित हुई । सरोजनी नायडू राज्यपाल और राजकुमारी अमृत कौर केंद्रीय मंत्री बनाई गई । इससे महिलाओं में नया आत्मविश्वास पनपने लगा ।

स्वतंत्रता के बाद धीरे – धीरे हिंदी, अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं में महिलाओं की अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरु हुआ । अंग्रेजी में 'फेमिना', 'इव्स-वीक्ली' और 'वुमन्स इरा' का प्रकाशन कई सालों से हो रहा है । ये पत्रिकाएँ सिर्फ महिलाओं के लिए निकाली जाती है । दिल्ली से 'मानुषी' भी निकलती है । इसकी प्रकाशक संपादक महिला मुक्ति आंदोलन से सक्रिय रूप से जुडी मधु किश्वर है । 'मेरी सहेली' तथा कुछ अन्य पत्रिकाएँ भी महिलाओं को रूढिवादी पोंगापंथी और अंधविश्वास से मुक्त कराने और समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने का काम कर रही है । यह 'मेरी सहेली' हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती है । चंद सालों तक इसकी संपादिका' हेम मालिनी थी । 'फेमिना' अंग्रेजी में प्रकाशित होती है । यह सर्वाधिक बिकाऊ पत्रिका है । इसकी संपादक विमला पाटिल है ।

हिंदी में प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं में 'गृह शोभा' और 'वुमन' है । इनमें 'मनोरमा' सबसे पहले प्रकाशित हुई थी । यह मित्र प्रकाशन इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित की जाती है । 'गृह शोभा' का मार्केट जबरदस्त है । यह भारतीय समस्त भाषाओं में प्रकट होती आ रही है । यह पत्रिका खासकर कढाई-बुनाई, फैशन और व्यंजनों के बारे में विपुल, विविध और आकर्षक सामग्रि का चित्रण करती है । यहाँ – वहाँ इनमें महिला स्वतंत्रता, महिलाओं पर अत्याचार, काम-काजी महिलाओं की समस्याओं और पति-पत्नी के बीच गलतफहमियों, तनाव आदि के बारे में भी सामग्री होती है । 'वुमन' की प्रथम संपादक थी – मृणाल पांडे । यह 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का प्रकाशन है । इसमें आरंभ से ही वैचारिक धरातल देने की प्रयास की गई है । 'वुमन' में भी समय-समय पर महिलाओं की ज्वलंत समस्याएँ चित्रित होती है । फिर भी उसका बाजार 'मनोरमा' और 'गृह शोभा' जितना विशाल और विकसीत नहीं है । फिर भी राजनीतिक एवं बौद्धिक दृष्टि से पाठक बडे जागरूक नजर आते हैं । वास्तविकता तो यही है कि भले ही पत्रिकाएँ महिलाओं द्वारा प्रकट होती होंगी परंतु पाठक वर्ग में अब पुरुष भी जुडता आ रहा है । इसलिए अब से पत्रिका न सिर्फ महिलाओं के लिए है । पूरे परिवार के लिए है कहना सही होगा ।

पचास के दशक में अनेक महिलाओं ने पत्रकारिता को उद्यम के रूप में अपनाया । इनमें कमला मनकेकर, प्रमीला कल्हण के नाम उल्लेखनीय है । प्रमीला कल्हण तीन से अधिक दशकों तक 'हिंदुस्थान टाइम्स' से जुडी रहीं । उन्होंने कडे मेहनत और कठीन परिश्रम से पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत नाम कमाया । पत्रकारिता के क्षेत्र में कमला, चौपडा का नाम भी प्रसिद्ध है । पत्रकारिता के डी.आर. मनकेकर से विवाह करलेने के बाद उनका नाम कमला मनकेकर हो गया । पत्रकारिता के क्षेत्र में इन दोनों का योगदान अत्यंत सराहनीय है । दोनों अच्छे साहित्यकार भी माने जाते हैं । एक और नाम प्रचलित में है । उषा राय का । 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में शामिल होने के बाद अनेक ज्वलंत सामाजिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है ।

आज-कल काफी विश्वविद्यालय जनसंचार माध्यम संबंध में कोर्स चला रहे हैं । उनमें ज्यादातर लडकियाँ पढाई कर देश-विदेश में पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन जैसे जगहों में शिप्टों के हिसाब से काम पर तैयार हो जाती हैं । पहले – पहले उन्हें घर से बाहर निकलकर रात के वक्त काम करना एक प्रकार से डरावना – सा लगता था । परंतु अब उन्हें वह भी आसान लगने लगा है । भारतीय जन – संपर्क संस्थान की स्थापना के बाद प्रति वर्ष काफी

लडकियाँ उसके विभिन्न पाठ्यक्रमों में शामिल हुई । अपनी पढाई पूरा हो जाने के बाद विभिन्न समाचार पत्रों, जन संपर्क कार्यालयों में भर्ती हो गई । नतीजा यही है कि आज काफी संख्या में महिलाएँ पत्रकारिता में काम कर रही हैं । महानगरों और अन्य नगरों से अनेक 'नए समाचार पत्रों एवं टी.वी. चैनलों का आगमन हुआ । सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के साथ उनके जन संपर्क विभागों का विस्तार हुआ । पर्यटन उद्योग के विस्तार के साथ होटलों में जन संपर्क के अनेक पद बनाए गए । इनमें से कुछ में प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता हासिल करने के बाद महिलाओं की नियुक्ति की गई। साठ के दशक में केंद्रीय सूचना सेवा का गठन प्रशासन के क्षेत्र की महत्वपूर्ण घटना थी । प्रति वर्ष इस सेवा में चार - पांच महिलाएँ सफल हुई । इनमे से कुछ अब भारत - सरकार के सूचना मंत्रालय में अत्यंत वरिष्ठ पदों पर नियुक्त है । देश जब आपात स्थिति का सामना कर रहा था । उस समय के बाद समस्त संवाद समितियों को मिलाकार 'समाचार' का गठन किया गया । इस 'हिंदी' और 'अंग्रेजी' दोनों भाषाओं के समाचार पढने के लिए कुछ महिलाएँ नियुक्त की गई ।

इसी समय में श्रीमती मेनका गाँधी 'सूर्या' पत्रिका आरंभ की । यह पत्रिका उनके राजनीति से हटकर था । जगजीवनराम के पुत्र सुरेश राम के प्रेम प्रसंग को उन्होंने सचित्र प्रकट कर नया इतिहास बना दिए थे । चंद दिनों के बाद श्रीमती मेनका गांधी इस पत्रिका को श्री जैन को बेचकर राजनीति में जुड गई । आज भी वे पशुओं की रक्षा संबंध में समय - समय पर लेख लिखकर पत्रकारिता के साथ जुडने का काम करती आ रही है । प्रख्यात हिंदी लेखिका नासिरा शर्मा और इंदौर की मंजु नागौरी लग-भग स्वतंत्र रूप से लिखती आ रही है । समयानुसार मुद्धों पर लेख लिखकर जनता को आकर्षित करती रहीं है । नाशिरा शर्मा ने भी अफगानिस्तान, ईरान, इराक युद्ध सहित अनेक विषयों पर अपनी रिपोर्ताज पेश की है । उनकी रपटें सारगर्भित और खोजपूर्ण होती हैं । इसी प्रकार आशा रानी होरा, मधु जैन, अरुणा कपूर, उषा वासुदेव, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, अलका श्रीवास्तव, अनीस जंग, रीता सिंह और भादिया देहलवी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है । सुश्री शीला झुनझुनवाला 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की पहली महिला संपादक थी । इससे पहले वह काफी समय तक कादंबिनी की संयुक्त संपादक रहीं जानीमानी लेखिका मृणाल पांडेय साप्ताहिक हिंदुस्तान की संपादक है । संपादक के अलावा सफल कहानीकार एवं अनुवादक भी हैं ।

इस विधा में एक और प्रसिद्ध नाम है - 'मणिमाला' । पटना से छपनेवाली 'नवभारत टाइम्स' से जुडी हैं । वे हमेशा कमजोर और पीडित लोगों की आवाज बनाना पसंद करती हैं । एक बार बडे-से-बडे नेता को कानुन का उल्लंघन करने पर पत्रिका द्वारा उसके जीवन का पर्दाफाश कर दिया था । इससे उस नेता को अपने पद से इस्तीफा देना पडा । और मणिमाला का नाम रोशन हो उठा । हिंदी की महिला पत्रकारों में एक और नाम है - प्रतिभा चतुर्वेदी का । वह किसी बडे नगर की सौंदर्य प्रतियोगिता में भारत सुंदरी का खिताब भी जीत चुकी है । आज - कल वह दिल्ली से 'पब्लिक एशिया' माशिया और मासिक के 'सांध्य दैनिका' का प्रकाशन - संपादन कर रही है ।

अब जनता के सम्पर्क कार्यों के लिए महिला पत्रकार नियुक्त करना पसंद - करते हैं । पिछले कई वर्षों से बडे होटलों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में महिलाओं को नियुक्त किया जा रहा है । महिला सिर्फ शोभा की वस्तु बनकर रहने योग्य माना गया था कालांतर में यह पता चला कि जटिल समस्याओं का समाधान निकालने, लोगों का क्रोध शांत करने - और सुरुचि एवं शालीनता को बढावा देने में महिलाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । वर्तमान स्थिति है कि - यू.एन.आइ.यूनिवार्ता पी.टी. आई और भाषा सभी संवाद समितियों में काफी महिलाएँ हैं । पी.टी.आई. और भाषा में तो महिलाएँ रात की पारी भी संभालती हैं । समाचार पत्रों तथा अन्य ऐसा जगहों पर महिला पत्रकारों की नियुक्ति के पत्र में तर्क पेश किया जाता है कि महिला कर्मचारियों की नियुक्ति के बाद कार्यालय अनुशासन में सुधार होता है, कुछ वर्षों से लगभग प्रमुख समाचार पत्रों में काफी संख्या में महिला पत्रकार काम करने लगी हैं । ये महिला पत्रकार कार्यालय और बाहर दोनों स्थानों पर काम कर रही हैं । कुमकुम चडढ़ा, मिरजा चौदरी , अंजिल पुरी, जसजीत सेवंती नमनन, शाहनाज, अंकलेश्वर अय्यर पत्रकारिता के क्षेत्र में जाने पहचाने नाम है । कुछ महिलाएँ फोटो - पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सक्रिय है । इनमें वार्ष आववाला का नाम बहु चर्चित है । फिल्म पत्रकारिता में तो एक तरह से महिलाओं का वर्चस्व है । इन में देवयानी चौबल और बनी रुवेन का नाम काफी मशहूर है । और समाचारों की प्रबंध व्यवस्था में महिलाएँ उल्लेखनीय भूमिका निभा रही है । शोभना भर्तिया 'हिन्दुस्तान टाइम्स', सरोज गोयनका 'इंडियन एक्सप्रेस', 'द हिंदु', जैन 'टाइम्स आफ इंडिया' - आदि समाचारपत्र समूह का संचालन कर रही है ।

पेज नं. 46 का शेष भाग

लाचारी में जीने के लिए अभिशप्त हैं।

''अख़लाक का जलता हुआ घर देख रहे हैं
देखा भी नहीं जाता, पर देख रहे हैं।

क्या अख़लाक (सभ्यता, संस्कृति) के जलते हुए घर को देखकर हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, क्या इस आग में अपसंस्कृति की लकड़ियाँ डालकर उसे और प्रचण्ड करते रहें? या इस 'आग को बुझाएँ संस्कारशीलता की जलफुहारों से? इन प्रश्नों पर हमें विचार करना चाहिए। पत्रकारिता जनमानस की निर्मात्री होती है इसलिए जन-जन में सुसंस्कारों के प्रति जागृति उत्पन्न करना तथा जीवन के वरेण्य पक्ष और उत्तमांश के प्रति उसे प्रेरित करना उसका प्रमुख दायित्व है। कुसंस्कारों और बद्धरुढ़ दोषों का परिहार करना भी पत्रकारिता की एक बड़ी जिम्मेदारी है। हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं, पारस्परिक सद्भाव और संवेदना चुकते जा रहे हैं। मानवीय सरोकारों की अनदेखी कर हम कहाँ जा रहे हैं, हमें खुद को मालूम नहीं। पत्रकारिता अपनी स्व-आरोपित मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखा के भीतर रहकर इस स्थिति से हमें निजात दिला सकती है। फिर दुष्यंत कुमार याद आ जाते हैं।

हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलती चाहिए।

मैं समझता हूँ कि आज की सोद्देश्योन्मुखी पत्रकारिता की स्वयं गंगा बनकर, अवतरित होकर इस पीर से हमें मुक्ति दिलाएगी। पर अंत में मैं सभी पत्रकारों, लेखकों, साहित्यकारों और मीडियाकर्मियों तथा उनके माध्यम से जन-जन को टेरकर कहना चाहता हूँ:

शब के अँधेरों को खँगालो, तो कोई बात बने
एक नया खुर्शीद निकालो, तो कोई बात बने
वक्त के साँचे में ढलना, तो कोई बात नहीं
वक्त को साँचे में ढालो, तो कोई बात बने।

संपर्क : 7252 जवाहरनगर,
जयपुर-302004 फोन-2650937
मो. 9414829376

■

राष्ट्र की चिंताएँ उभरती हैं विचार दृष्टि में

○ पेटवाल नागेन्द्र दत्त शर्मा

साहित्य प्रभा सम्मान समारोह-2008 मे देहरादून आपसे पहले-पहल मुलाकात हुई। आपकी पत्रिका "विचार दृष्टि" अप्रैल-जून, 2008 श्री उदय कुमार राज द्वारा भेंट की गयी। उनसे काफी देर तक श्री अमरदेव बहुगुणा जी एवं मेरे साथ उनके कक्ष में वार्ता हुई जिसमें कुछ विषयों पर साहित्यिक चर्चा हुई तथा उनके द्वारा आग्रह किया गया कि हम लोग विचार दृष्टि का भलीभांति अवलोकन कर अपनी राय उनको भिजवा दें, ताकि पत्रिका में और निखार लाया जा सके। इसी परिपेक्ष्य में मैंने पत्रिका का अध्ययन किया तो इसमें अन्य पत्रिकाओं के मुकाबले मुझे कुछ अलग अंदाज दिखा जिसमें जीवन के बहुपक्षीय आयामों पर ध्यान दिया गया है जो एक सराहनीय प्रयास है और इसके लिए आप की भूरि-2 प्रशंसा होनी चाहिए। बहुभाषी राष्ट्र एवं विभिन्न संस्कृति एवं सभ्यताओं का देश होने के बावजूद भी इसकी अखंडता अक्षुण्ण है। भिन्न-2 धर्मो के लोग होने के बावजूद भी जो भाईचारा और विश्वास एक दूसरे के प्रति पूरे भारत में दिखता है और जो अन्य मुल्कों में नही है, वह सराहनीय है। राजभाषा हिंदी भारत की एकता और अखंडता की कड़ी है, जैसा एच०बी० मुरकूट के लेख में उल्लिखित है, सत्य है। हिंदी को इस परिपेक्ष्य में और मजबूत किए जाने के प्रयास किये जाने चाहिए। भारतरत्न पर आपकी प्रतिक्रिया प्रशंसनीय है। विभिन्न लेखों के माध्यम से राष्ट्र की चिंताएँ उभरती हैं। सामाजिक चिंतन जैसे "बलात्कार महिलाएँ स्वयं भी जिम्मेदार," "छूटता जा रहा है आत्मीय संबंधों से बना अतीत" सामाजिक न्याय, अहिंसक समाज रचना, वोटों की राजनीति जैसी ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिसके लिये पत्रिका को बधाई मिलनी ही चाहिए, कविता एवं ग़ज़लें भी अच्छी हैं, बस एक चीज जो आँखों को खटकती हैं वह है टंकणीय त्रुटियाँ, जिसमें मात्राओं और शब्दों में कहीं-2 अत्यधिक त्रुटियाँ रह गयी हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

अत: आशा है कि भविष्य में इस प्रकार की पुन:सवृत्ति न हो, ताकि पत्रिका की स्तरीयता कायम रहे। इन त्रुटियों की ओर इंगित करने का मेरा मकसद सिर्फ इतना ही है कि हम भाषा को उन्नति की ओर ले जाएँ, ताकि भावी पीढ़ी भी सही शब्दों को पहचानना सीखे। साहित्य प्रभा के उक्त सम्मान समारोह में जब मैं भी सभागार में एक सीट पर बैठा था, तो मेरे बगल में एक सज्जन आकर बैठ गए जिन्हें मैं पहचानता नहीं था, तो उन्हें भी उक्त समारोह में पंजीकरण हेतु फॉर्म उपलब्ध कराया गया जिसमें "पंजीकरण" शब्द के स्थान पर शायद "पंजिकरण" छपा था जिसका अवलोकन करने के बाद वह बोले, "अरे! इसमें तो यह गलत छपा है, इसको जो पढ़ेगा वह क्या कहेगा, यह तो बहुत ही दशर्म की बात है। मैने कहा, "शीघ्रता में शायद त्रुटि रह गयी होगी, अत: आप फिलहाल फॉर्म भर दें।" इससे आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि बहुत से लोग छोटी से छोटी चीजों को भी बहुत ही गंभीता से लेते हैं। जिस प्रकार से उर्दू भाषा में केवल हिज्जे बदल जाने से अर्थ का अनर्थ होने का खतरा रहता है, उसी तरह हिंदी भाषा में भी मात्राओं व चनदबजनंजपवद की कमी से भी अर्थ का अनर्थ हो सकता है। यह मामला अन्य सभी भाषाओं पर भी लागू होता है। हर भाषा का अपना सौंदर्य व श्रृंगार होता है।

विचार दृष्टि की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

संपर्क : बद्रीपुर रोड, लेन-1,
जोगीवाला, उत्तराँचल-248005,
मो०-09319068967

लौह पुरुष सरदार पटेल की 133वीं जयंती पर राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा नई दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

अरुण कुमार सिंह

खगौल रोड, मीठापुर, पटना-800001

राष्ट्रीय एकता जाग्रत करने में पत्रिकाओं का योगदान

○ डी०आर०ब्रह्मचारी

हमारे अंत:स्थित राष्ट्रीयता के भाव को, उस अग्नि में आहुति डालने की प्रेरणा भरने में तत्काली पत्र-पत्रिकाओं का अकूत योग दान रहा है जिनकी प्रतियाँ कहाँ नहीं जलीं, प्रकाशन कहाँ प्रतिबंधित नहीं हुआ, उनके प्रेसों में कहाँ ताला बंदी नहीं की गई, इसके चलते किन्हें जेलों में नहीं ठूँसा गया?

लोगों पर नजर पड़ते ही हॉकर चिल्ला उठता-ब्रिटिश सरकार की छाती कूटने वाला 'इंडिपेंडेंस' लेलो। उन दिनों 'पॉयनियर' 'लीडर' की प्रतियाँ एक-एक आने में तथा 'आज' की दो पैसे में छुहुक्का उड़ पड़ती।

ब्रिटिश हुकूमत के विरोध में प्राण हथेली पर ले, राष्ट्रीयता की आँधी उठाने वाली पत्रिकाओं में कुछ का नाम इस प्रकार देखा जा सकता है- उदंत मार्त्तंड, साप्ताहिक कलकत्ता, बंगदूत, प्रजामित्र, बनारस अखबार, साप्ताहिक बनारस, मापलवा अखवार, साप्ताहिक मालवा, सुधाकर, बुद्धि प्रकाश, साप्ताहिक काशी, साप्ताहिक आगरा, दैनिक कलकत्ता, प्रजाहितैषी,तत्त्व बोधिनी पत्रिका, ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका, मासिक लाहौर, मासिक जम्मू, कविवचन सुधा, बिहार बंधु, मासिक बाँकीपुर, हरिश्चंद्र मैगजिन, साप्ताहिक अलीगढ़, हिंदी प्रदीप, मासिक इलाहाबाद, आर्य मित्र, फर्रूखावाद, सारसुधानिधि, मासिक मिर्जापुर, भारतेंदु, वृंदावन, मेरठ, मासिक कानपुर लखनऊ, हिंदोस्थान, साप्ताहिक बंबई, सरस्वती, हिंद केसरी, हितवाणी, अभ्युदय, कर्मयोगी, मर्यादा, प्रताप, प्रभा कलकत्ता समाचार, विश्वमित्र, इंदु, आर्यावर्त, पाटलिपुत्र, विशाल भारत, आज, सेनापति, स्वतंत्र भारत, जागरण, नवयुग, जनसत्ता, सन्मार्ग, पंजाब केसरी, हिंदुस्तान, अमृत पत्रिका आदि।

इनकी पुरानी फाइलों को देखा जा सकता है कि सर्वांग समर्पण के साथ किस प्रकार ये लोक लहर उत्पन्न करने में संलग्न थीं।

प्रभुता के लिए औरों ने भी तप किए हैं, पर राष्ट्र के लिए प्राणों की आहुति देने का संकल्प महात्मा गाँधी की की कीर्ति है। उसने जिस राष्ट्रीय एकता का भवन खड़ा करने के लिए एक-एक कंकड़ जमा किया था, वह सारी सामग्री उसकी आँखों के सामने बिखरी जा रही है। उस अन्याय के प्रायश्चित स्वरूप वह क्या कुछ न करता, वह यहाँ तक राजी है कि दलितों के लिए शिक्षा और जायदाद की कोई शर्त न रखो, उनके हरेक बालिग स्त्री-पुरुष को निर्वाचन का अधिकार दे दो, शेष हिंदू समाज के लिए निर्वाचन की जितनी कड़ी शर्तें चाहे लगा दो, पर अछूतों को हिंदुओं से अलग न करो, क्योंकि इससे केवल हिंदू समाज की ही क्षति नहीं होगी, अछूतों का अस्तित्व ही न रहेगा। ऐसा विचार उसी आत्मा से निकल सकता है जो अछूतों की सेवा चिंतन करते-करते स्वयं अछूत भावना से ओत-प्रोत हो गया हो। हम किसी ऐसे दूसरे व्यक्ति का नाम नहीं जानते, जिसने इस सकाग्रता, इस प्रेम और इस उत्साह से दलित समाज की सेवा की हो।

'जागरण' 19 सितंबर, 1932। अखंडता की कसमें खाते हैं, वहीं दूसरी ओर सैनिक इसकी अखंडता के लिए अपनी जान न्योंछावर करते हैं, मगर साथ ही यह भी सत्य है कि आज इसके नेता इतने स्वार्थी हो गए हैं कि सत्ता पाने के लिए वे कुछ भी गलत-सलत करने से नहीं हिचकते। और तो और हमारे नेता इस अखंड भारत को भी खंड-खंड करने पर आमादा हैं जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता व अखंडता पर खतरा मंडराने लगा है। कारण कि लोगों में देश-भक्ति की भावना कम हो रही है। आज शहीदों की याद केवल रस्म अदायगी बन कर रह गई है।

'विचार दृष्टि' जुलाई-सितंबर 2008 में यह है राष्ट्रीयता का उद्‌बोधन। जिसके दो पक्ष दिखते हैं- एक मूर्त्त तथा दूसरा अमूर्त्त। इसे दिनकर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

मानचित्र पर जो मिलता है, नहीं देश भारत है,
भू पर नही मनों में ही, बस, कहीं शेष भारत
है भारत जहाँ, वजाँ जीवन-साधना नहीं है भ्रम में
धाराओं को समाधान है मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम,
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम।

यह मूर्त्त और अमूर्त्त का भेद निरपेक्ष नहीं अन्योन्याश्रित है। यहाँ के इतिहास को गढ़ने में यहाँ का भूगोल कम जिम्मेवार नहीं रहा। इसलिए इस देश की राष्ट्रीयता को बहुराष्ट्रीय राष्ट्र- डनसजपदंजपवदंस छं. जपवद वाली राष्ट्रीयता कहा जाता है। मिट्टी की विविधता, रहन-सहन की विविधता, खान-पान की विविधता, भाषा-धर्म की विधिता, तथापि इन विविधताओं के भीतर निहित लक्ष्यीभूत एकता-विविधत वर्णी पुष्पों के स्तवक समान है। यहां की संस्कृति को भी 'गंगा-जमुनी' संस्कृति कहा जाता है। उत्तर से दक्षिण तक चले जाइए अनकहे यह एक सूत्रता भा जाएगी। वही बात पूर्व से पश्चिम तक भी। धर्म-दर्शन-साहित्य-स्थापत्य-शिल्प में सर्वत्र। भागवत में आया है-

उत्पन्ना द्राविड़ देशे, कर्णाटे वृद्धिं गता
स्थिता किंचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।

इसका स्थूल रूप भास्वर तब हो उठता है जब इस सामंजस्य पर आंच आने लगती है, हमें तरह-तरह से तोड़ने की साजिश रची जाती है, हम पर थोक भाव से तथा खुदरा-दोनों तरह से जुल्म ढाए जाते हैं। प्रमाण हैं-बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, राजाराम मोहन राय, विपिन चंद्र पाल, बटुकेश्वरनाथ दत्त, सुखदेव, राजगुरु, चंद्रशेखर, अशफाक, सरोजिनी, लाला लाजपत राय, राजगोपालाचारी। भीतर में आग एक-सी है, स्फुलिंग जैसा हो, ज्वाल और धधक जैसी हो, पर इनके उत्सर्ग पर किसकी ऊंगली उठ सकती है?

पत्रिकाएँ सामाजिक चेतना की वारिका होती हैं, देश-व्यापी जागरण की सूचना देने वाली। जो पढ़ लेते थे, स्वयं पढ़ लेते थे, जो नहीं पढ़ पाते थे वे भी चौक, चौराहे, चौपालों, खलिहानों में एकत्र होकर राष्ट्र की गतिविधि को जानने के लिए हमेशा उत्सुक रहा करते थे। रॉलेट एक्ट का क्या हुआ? पंजाब दमन की स्थिति क्या है? जालियाँबाला बाग के विरोध में क्या हो रहा है? हमारे नेताओं का क्या दिङ्निर्देश हो रहा है? अली बंधुओं के गिरफ्तार होने के बाद क्या करना है? गाँधी का गिरफ्तारी, अहिंसा, सत्याग्रह, विदेशी वस्तुओं का होलिका दाह, चौरी चौरा कांड, नमक सत्याग्रह, भगत सिंह को फाँसी, आजाद की शहादत, युवराज प्रिंस ऑव वेल्स के आगमन का बहिष्कार, लाला लाजपत राय पर निर्दयता पूर्वक लाठी प्रहार आदि विषयों से उन दिनों की पत्रिकाएँ भरी होती थीं जिन्हें पढ़कर सारा देश एक वारगी आंदोलित हो उठा करता था।

आश्चर्य तो तब होता है, बल्कि आने वाली पीढ़ी को इसकी जानकारी आवश्यक है कि जब पत्रों, प्रेसों और उसके निकालने-फैलानेवाले लोगों पर विदेशी हुकूमत ने निर्ममतापूर्वक शिकंजा कसना शुरू कर दिया तो जान की परवाह किए बगैर, भूमिगत होकर राष्ट्रोद्बोधन की मशाल को हुतात्माओं ने बुझने नहीं दिया, भले ही उन्होंने अपने रक्त को ही उसका तैल क्यों न बना दिया हो। जिसके प्रमाण हैं- चिंगारी, बंबंडर, चंद्रिका, रण डंका, शंखनाद, ज्वालामुखी, तूफान, जन संग्राम बोल दे, धावा आदि। इन्होंने विदेशी सल्तनत की नींद हराम कर रखी थी। पता लगाना विकट था कि ये निकलती कहाँ से हैं, वितरित कैसे हो जाती हैं, पढ़ने सुनने वाले तक पहुँच कैसे पाती हैं?

पत्रिकाएँ आज भी हैं, लोग हैं, बल्कि शिक्षा-दर में वृद्धि ही हुई है, संसाधन बढ़े हैं। स्वतंत्रता तो मिली, पर समस्याओं से त्राण कहाँ मिला, जीवित जाति की समस्याओं का कहीं अंत होता है? वह उसके अंत पर ही अंत होता है, मगर आवश्यकता है अपने भीतर झाँक कर देखने की आत्म निरीक्षण करने की कि अपनी थाती को सँजोने में हम इस दर्द को महसूस रहे है?

लाया हूँ तूफान से किश्ती निकाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चे सँभाल के।

आज तो पत्रिकाओं के नाम पर 'पीली पत्रकारिता' का मुहाबरा चल पड़ा है। हम किसके प्रति प्रतिबद्ध हैं, कहना मुश्किल हो जाता है। ऐसा कतई नहीं कहा जा सकता कि सभी की सभी वैसी ही हैं, मगर हमें 'विचार-दृष्टि' के तेवर वाली पत्रिकाओं पर गर्व करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

संपर्क : अध्यक्ष हिंदी विभाग,
बी०आर०बर०
कॉलेज, समस्तीपुर-848101

◆

30 एवं 31 अक्टूबर, 2008 को नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय विचार मंच के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए

हमारी शुभकामनाएँ

मै0 संतोष सीमेंट

खगौल रोड, मीठापुर,पटना-800001

आंध्र के लोक कथा गीत और संस्कृति

○ डॉ.आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी

लोक साहित्य लोक जनता का लोकप्रिय साहित्य है। लोक साहित्य अलिखित एवं अज्ञात कर्तृव्य का साहित्य है। लोक साहित्य चिरपरिवर्तनशील अंतिम रूपहीन साहित्य है। यह लोक साहित्य लोकवार्ता की एक शाखा है। लोकवार्ता की अन्य शाखाओं से काफी व्यापक एवं लोकर्प्रिय शाखा है। लोक साहित्य की यह लोकप्रियता उसके लोक गीतों के कारण हैं लोक गीतों की यह लोक प्रियता इसलिए है कि वे शिक्षित एवं अशिक्षित सभी को समान रूप से अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं। लोक गीतों की यह क्षमता उनमें स्थित गीति तत्त्व के कारण है। लोक गीतों के लोकप्रिय होने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण लोक जीवन के साथ सहज, कलात्मक कृत्रिम आवरणहीन उनका संबंध है। लोक गीतों की वस्तु निष्कपट, भोला, कृत्रिमताहीन लोक जीवन है। लोक जीवन की पारदर्शिकता ही लोकगीतों में प्रतिबिंबित होती है। इस कारण से ही लोक गीत सुनायास ही पाठकों को आकर्षित करके उनमें रसोद्रेक पैदा करते हैं।

लोक कथागीत लोक गीतों का ही एक प्रकार है। साधारणतया लोकगीतों को कथातत्व के आधार पर कथारहित एवं कथासहित प्रकारों में बाँटते हैं। कथारहित प्रकार में कम लंबाई के साधारण लोक गीत आते है। कथा सहित प्रकार में लंबे लंबे कथात्मक गीत आते हैं। कथा ही इनके लंबे होने का मुल कारण है। सोने में सुहागा मिलाने की तरह जब गीति तत्त्व के साथ कथा तत्त्व भी मिल जाता है तो उसकी संप्रेषणीयता एवं कलात्मकता में चार चाँद लग जाते हैं। अत: लोक गीतों की तुलना में लोक कथागीत लंबे होने के बावजूद अधिक संप्रेषणीय होते हैं। कथागीत के कथा तत्त्व तथा गीति तत्त्व दोनों पाठकों में रसोद्रेक पैदा करने में काफी बड़े सहायक सिद्ध होते हैं।

आंध्र के लोक कथागीत इसके अपवाद नहीं है । आंध्र के लोक गीतों में लोक कथागीत महत्वपूर्ण उपशाखा है। वैसे आंध्र लोक साहित्य को तीन महत्वपूर्ण शाखाएँ हैं। 1. पद्यशाखा, 2. गद्य शाखा, 3. पद्य-गद्य मिश्रित दृश्य शाखा। लोक गीत पद्य शाखा के अंतर्गत आते हैं। लोक कथागीत भी इसी शाखा के अंतर्गत आते हैं। वस्तु के आधार पर आंध्र के कथागीतों के दो प्रकार हैं। 1. वीर कथागीत, 2. मिथकीय कथागीत। वीर कथागीतों में स्पष्ट एवं अस्पष्ट ऐतिहासिक कथाओं का गायन किया जाता है। जबकि मिथकीय कथागीतों में मिथकों पर आधारित विविध पौराणिक कथाओं का गायन किया जाता है। अपने अलौकिक छवि के कारण वीरकथाओं की तुलना में मिथकीय कथाएँ जन जन में अधिक लोकप्रिय हुई है। बड़ी मात्रा में उपलब्ध होनेवाले मिथकीय लोक कथागीत ही इसके साक्ष्य प्रमाण हैं। इससे बढ़कर मिथकीय कथाएँ अखिल भारतीय स्तर पर लोकप्रिय होने के कारण भी आंध्र के लोक कथागीतों में उच्च स्थान के अधिकारी बन गयी हैं। प्रस्तुत अध्ययन-विश्लेषण- सर्वेक्षण से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है। प्रस्तुत अध्ययन के दौरान रामायण, महाभारत,महाभागवत, शिव कथा, ग्रामीण देवि-देवता, वेंकटेश्वर आदि से संबंधित बड़ी मात्रा में मिथकीय लोक कथागीत प्राप्त हुए हैं। इस के आधार पर यह प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि तेलुगु में मिथकीय लोक कथा गीतों की समृद्ध शाखा है! इससे यह स्पष्ट होता है कि आंध्र की लोक जनता मिथकीय कथाओं में न केवल बड़ी रुचि रखती है बल्कि उनके प्रति असीम विश्वास भी रखती है। मिथकीय कथाओं को अपने जीवन पर तथा अपने जीवन को मिथकीय कथाओं पर आरोपित करके लोक जनता तादात्म्य अनुभव करती है।

आंध्र के लोक साहित्य की एक गद्य शाखा को छोड़कर बाकी पद्य शाखा एवं दृश्य शाखा में मिथकीय कथागायन को देखा जा सकता है। इस कारण से भी तेलुगु में मिथकीय कथागीतों की समृद्धि तथा विविधता दृष्टिगोचर होती है। पद्य शाखा के अंतर्गत आनेवाले मिथकीय कथागीतों को ज्यादातर स्त्रियाँ ही गाती हैं। मिथकीय लोक कथागीत आकार में लंबे होने के कारण गायन के लिए विशेष संदर्भ और माहौल की जरूरत होती है। स्त्रियाँ घरेलु काम करती हुई तथा घर बाहर खेत-खलिहानों में इन गीतों को गाती दिखाई पड़ती हैं। इससे बढ़कर पर्व-त्योहार, मेले आदि विशेष अवसरों पर स्त्रियाँ एक जुट होकर विशेष रूप से मिथकीय लोक कथागीतों का गायन करके रसानंद के साथ साथ पुण्य भी प्राप्त करती हैं। इस रूप में लोक साहित्य की पद्य शाखा के अंतर्गत आनेवाले मिथकीय लोक कथागीतों को स्त्रियों की संपदा कहना उचित होगा। लोक साहित्य की दृश्य शाखा से संबंधित अनेक लोक कला रूप भी आंध्र में लोकप्रिय हैं। ये लोक कला रूप गद्य-पद्य मिश्रित हैं। इन में गद्य की अपेक्षा पद्य का ही प्रयोग अधिक मात्रा में होता है। यानी इन लोक कला रूपों में गीतों का भरमार ही अधिक है। इनि गीतों के कारण ही लोक जनता इनि कला रूपों की ओर आकर्षित होती है, कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। दृश्य शाखा के होने के नाते इन कला रूपों में कथागायन के साथ-साथ अभिनेयता भी होती है। इस कारण से इन कला रूपों का कथागायन बाकी लोक कथागीतों की तुलना में रसोद्रेक पैदा करने में अधिक सक्षम होते हैं। गीति तत्त्व, कथा तत्त्व, संगीत तत्त्व और अभिनेयता मिलकर इन कला रूपों को अधिक सार्थक व संप्रेषणीय बना देते हैं। आंध्र में लोकप्रिय हरिकथा, बुर्रकथा, यक्षगान, वीथिनाटक, बोम्ब लाटलु, गोल्ल सुद्दुलु, वोग्गु कथा

आदि इसी प्रकार के उल्लेखनीय लोक कला रूप हैं। इन सभी में मिथकीय लोक कथागीतों का गायन ही होता है।

अंग्रेजी ''डलजी'' शब्द के समानांतर हिंदी में ''मिथक'' शब्द चल पड़ा है। अस्पष्ट ऐतिहासिक तथ्य को मिथक कहा जाता है। मिथकों के आधार पर बुनी गयी कथाओं को पुरा कथाएँ या पौराणिक कथाएँ कहा जाता है। परंतु आज मिथकीय कथा शब्द पौराणिक कथा के लिए प्रयुक्त होने लगा है। आज मिथकीय कथा का मतलब शुद्ध पुरा कथा या पौराणिक कथा हैं प्रस्तुत अध्ययन के दौरान मिथकीय कथागीत का मतलब पौराणिक कथागीत के रूप में ही लिया गया है। भारत में अत्यंत लोकप्रिय पुराणों से इनका सीधा संबंध माना जा सकता है। पौराणिक काल तथा उसके बाद भारत में लोक जनता पर पुराणों का व्यापक प्रभाव रहा है। परिणाम स्वरूप शिष्ट साहित्य के साथ साथ लोक साहित्य में भी इनका व्यापक ग्रहण हुआ है। आंध्र की लोक जनता पर पुराणों से गृहीत इन मिथकीय कथाओं का पर्याप्त मात्रा में प्रभाव रहा है। उन्होंने रामायण, महाभारत, महाभागवत, शिव कथा, ग्रामीण देवी-देवता, श्रीवेंकटेश्वर आदि अनेक कथाओं का अपने कथागायन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। मौखिक परंपराश्रयी होने की वजह से बड़ी मात्रा में इन के संग्रह कार्य होने के बावजूद और भी अनेक मिथकीय लोक कथागीत जनवाणी में ही अपनी साँ ले रहे हैं। मिथकीय कथाओं का एक अखिल भारतीय रूप होने के बावजूद लोक साहितय में इनका ग्रहण प्रादेशिक जीवन-विधान या संस्कृति के सापेक्ष ही हुआ है। भारत भर में लोकप्रिय इन मिथकीय कथाओं की तुलना आंध्र के लोक साहित्य में उपलब्ध होने वाली मिथकीय कथाओं से करने पर प्रदेश विशेष का जीवन विधान तथा उससे जुड़ी हुई संस्कृति की अनेक विशेषताओं का पता चल जाता है। क्योंकि जीवन के साथ नजदीक संबंध रखने वाली तथा कथागायन करनेवाली लोक जनता अपने जीवन-विधान को ही कथागायन में स्थान देने का नैतिक साहस रखती है। अतः मिथकीय लोक कथागीतों के अध्ययन विश्लेषण से प्रदेश विशेष के जीवन विधान से संबंध रखने वाली संस्कृति और उसकी अनेक विशेषताओं को रेखांकित किया जा सकता है। उपलब्ध सभी मिथकीय लोक कथागीतों को इसी अध्ययन की दृष्टि से परखने तथा आंध्र संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। इस सांस्कृतिक अनुशीलन के लिए आचार-व्यवहारों, विश्वास-मान्यताओं, खान-पान, वस्त्र-आभरण आदि की आदतों, तीज-त्योहारों, खेल-कूद आदि को प्रतिमान बनाकर आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों को परखने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन में कियी गया है।

मिथकीय लोक कथागीत प्रादेशिक संस्कृति के अक्षय भंडार होते हैं। अतः उनमें अनेक विचित्र प्रसंग व मोड़ दृष्टिगोचर होते हैं। ये बहुत ही रोचक एवं जनाकर्षक होते हैं। विचित्र प्रसंगों व मोड़ों के कारण कहीं कहीं मूल मिथकीय कथा में काफी जीवंतता आ जाती है। यह जीवंतता आंध्र के लोक कवि गायकों की सृजनात्मक प्रतिभा का परिणाम है। प्रस्तुत अध्ययन के दौरान ऐसे कई मिथकीय लोक कथागीत प्राप्त हुए हैं। उन सभी का एक संक्षिप्त परिचय एक अध्याय में (तीसरे अध्याय में) प्रस्तुत किया गया है। कथागीत का परिचय मूल कथा के साथ जोड़कर विचित्र नयी कल्पनाओं एवं प्रसंगों को रेखांकित करने की दिशा में ही दिया गया है। प्राप्त मिथकीय लोक कथागीतों में रामायण, महाभारत, शिव कथा, ग्रामीण देवि-देवता संबंधी कथागीतों की संख्या ही ज्यादा है। इनमें भी स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत ही अधिक हैं।

मिथकीय लोक कथागीतों में प्रादेशिक संस्कृति का प्रक्षेपन सृजनात्मक प्रतिभा एवं जीवन विधान के साथ गहरे संबंध की अपेक्षा करता है। क्योंकि मिथकीय कथाएँ पहले से लोक जनता में लोक प्रिय रहती है। उनमें परिनवर्तन करना या प्रक्षेपक जोड़ना आसान नहीं होता है। प्रक्षेपन के लिए लोक कवि गायक को प्रतिसृजन करना पड़ता है। इतना ही नहीं कि मिथकीय कथाओं के सभी प्रसंग प्रक्षेपन के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। लोक कवि गायक मिथकीय कथागीतों में प्रादेशिक संस्कृति व जीवन विधान के अनुकूल प्रसंगों, व पात्रों में ही प्रक्षेपक जोड़ने की कोशिश करता है। अध्ययन के दौरान यह रेखांकित किया गया है कि मिथकीय कथाओं में स्थानीय मानसिकता, स्थानीय आनंदोत्सव और परंपराएँ, आचार-व्यवहार, स्थानीय विश्वास, वस्त्र-आभरण, खान-पान, खेल कूद आदि संदर्भ ही प्रक्षेपन के लिए अनुकूल हैं। इन से संबंधित प्रसंग मिथकीय कथा में होने पर लोक कवि गायकों ने अपनी ओर से आजादी लेकर स्थानीय जीवन विधान की विशेषताओं को प्रक्षेपक के रूप में जोड़ दिया है। स्पष्ट है कि ये सभी स्थानीय संस्कृति को परावर्तित करनेवाले होते हैं। यह भी है कि मिथकीय लोक कथागीतों के इन प्रक्षेपक प्रसंगों एवं पात्रों के विश्लेषण के द्वारा ही उनमें परावर्तित संस्कृति की पहचान की जा सकती है। प्रस्तुत अध्ययन के दौरान ऐसे प्रक्षेपकों की पहचान तथा उनके माध्यम से व्यंजित आंध्र की लोक संस्कृति के स्वरूप को निर्धारित किया गया है। अध्ययन के दौरान ऐसे प्रक्षेपकों को राम कथा, महाभारत कथा, भागवत कथा, शिव कथा, ग्रमीण देवि-देवताओं की कथा, वेंकटेश्वर संबंधी कथा आदि सभी में देखा गया। प्रक्षेपकों के प्रयोग से ये मिथकीय लोक कथागीत और सुंदर और चित्ताकर्षक बन पड़े हैं।

आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज और आनंदोत्सव किसी भी संस्कृति के मूल स्तंभ होते हैं। ये प्रदेश विशेष के जीवन विधान को भी प्रतिबिंबित करते हैं। प्रदेश विशेष के बाहर आचार-व्यवहार आदि में अंतर होने की संभावना रहती है। आंध्र के लोक कवि गायकों ने मिथकीय कथागीतों में अवसर पाकर आंध्र के कई आचार-व्यवहार संबंधी प्रक्षेपकों को जोड़ा है। उन स्थलों में ये मिथकीय लोक कथागीत अत्यंत जीवंत एवं सार्थक बन पड़े हैं। दूसरी ओर मिथकीय

लोक कथागीतों में अंकित इन प्रक्षेपकों के सहारे आंध्रों के कई आचार-व्यवहारों और उनकी विश्वसनीयता एवं सार्थकता को समझा जा सकता है। आंध्र में जन्म से लेकर मृत्यु तक के अनेक संस्कार लोकप्रिय है। इन संस्कारों को निभाने की एक निश्चित विधि है। उस विधि को लोक कवि गायकों ने मिथकीय लोक कथागीतों में अंकित कर दिया है। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में नामकरण, जच्चा शौच, झूले में ड़ालना, रजस्वला, विवाह और विवाह से संबंधित उबटन, वरपूजा, काशी यात्रा, नागवल्ली, चेंड्लाट, गोद भरना, सारे, दोहद, सीमंत आदि के अवसरों से संबंधित अनेक आचार-आनंदत्सवों का चित्ताकर्षक चित्रण हुआ है। मिथकीय कथागीतों में इनको प्रक्षेपित करते हुए आंध्र के लोक कवि गायकों ने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। इन प्रक्षेपकों के कारण आंध्र के मिथकीय लोक कथागीत मूल मिथकीय कथाओं से भी अधिक मनोहर बन पड़े हैं। इस रूप में इन मिथकीय लोक कथागीतों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के आंध्रों के अनेक आचार और रीति रिवाज व्यंजित हुई हैं।

लोक विश्वास लोक जनता के जीवन संबंधी विश्वास हैं। लोक विश्वास लोक जनता के जीवनानुभव सार है। अनुभवों से प्राप्त विश्वास काफी प्रामाणिक होते हैं। लोक विश्वास लोक जनता के प्रामाणिक अनुभव होने के बावजूद परिवर्तनशील जीवन में वे परंपराएँ मात्र रह जाते हैं। लोक जनता भी उन्हें तार्किक दृष्टि से देखने की जगह परंपरा के रूप में मान लेती है। कारण यही है कि एक समय के प्रामाणिक अनुभव समय के साथ बदल भी जाते हैं। अत: लोक विश्वासों का आधार तक नहीं बल्कि परंपरा है। लोक विश्वास प्रादेशिक जीवन विधान और प्रदेश विशेष के लोगों के अनुभवों से संबंध रखने की वजह से प्रादेशिक भिन्नता उन में रहती है। मिथकीय लोक कथागीतों में भिन्नता का एक कारण इस रूप में लोक विश्वास भी है। आंध्र के लोक कवि गायकों ने मिथकीय लोक कथागीतों को लोक विश्वासों से भर दिया है। इन लोक विश्वासों के माध्यम से आंध्रों की विशिष्ट संस्कृति से साक्षात्कार किया जा सकता है। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में जीवन के विविध क्षेत्रों से संबंधित लोक विश्वास व्यंजित हुए है। ये लोक विश्वास मुख्यतया आचार संबंधी, वास्तु तथा ज्योतिष संबंधी, दीठ संबंधी, शकुन संबंधी, वनस्पति और जीव जंतु संबंधी, स्वर्ग-नरक संबंधी है। इन क्षेत्रों से संबंधित अधिकांश लोक विश्वास निषेधमूलक हैं। इनका संबंध ज्यादा आचारों से रहता है। एक प्रकार से ये लोक विश्वास आंध्रों के आचारों को नियंत्रित व शासित करते हैं। इस नियंत्रण के कारण ही आंध्रों का लोक जीवन परिमार्जित होकर सदा स्वस्थ व संतुलित रहता है। इस नियंत्रण के कारण ही लोक संस्कृति परिवर्तन से दूर स्थिर रहती है। शकुन, दीठ, वास्तु, ज्योतिष संबंधी लोक विश्वास लोक जनता को अधिक प्रभावित करते हैं। ये पीढ़ियों दर पीढ़ी बिना किसी परिवर्तन के प्रभावित करते रहते हैं। लोक जनता भी बिना विरोध के इनका अनुकरण करके अपने जीवन को एक दिशा देती है। शकुन वैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से निरूपित न होने पर भी आंध्र में इन पर बड़ा विश्वास किया जाता है। मिथकीय लोक कथागीतों में कुछ ऐसे ही शकुन संबंधी लोक विश्वास व्यंजित हुए हैं जो आंध्र में अत्यंत लोकप्रिय हैं। ये आंध्रों के लोकप्रिय लोक विश्वास विविध मिथकीय कथागीतों में सुंदर प्रक्षेपकों के रूप में ही व्यंजित हुए हैं। आंध्र के ये लोक विश्वास उन मिथकीय पात्रों एवं प्रसंगों की सार्थकता व कार्य-कारण की अर्थवत्ता को ज्यादा परिवर्तित किए बिना ही व्यंजित हुए है। यानी मिथकीय पात्र एवं प्रसंग इन लोक विश्वासों को सहज ही मानते एवं कथाओं को सजीव बनाते देखा जा सकता है। इस दृष्टि से राम कथा, कृष्ण कथा, शिव कथा, ग्रामीण देवि-देवताओं की कथा आदि में व्यंजित आंध्रों के लोक विश्वास उन कथाओं में प्रक्षेपक होते हुए भी उन कथाओं की गरिमा को किसी भी रूप में कम नहीं करते हैं।

वस्त्र-आभरण किसी भी सभ्यता-संस्कृति के अच्छे प्रतिनिधि होते हैं। इनके माध्यम से एक प्रदेश विशेष की समृद्धि व प्रगति की पहचान की जा सकती है। वस्त्रों की विविधता तथा आभरणों की विविधता समृद्ध सभ्यता के सूचक हैं। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में वस्त्रों के विविध प्रकारों एवं नमूनाओं का चित्रण है। इस से आंध्रों की समृद्ध-वस्त्र परंपरा का पता चलता है। साथ ही उनके वर्णन से यह भी साबित होता है कि आंध्र की यह वस्त्र परंपरा काफी प्राचीन भी है। "होमबट्टु", "जरी" जैसे वस् अति प्राचीन काल से ही आंध्र में लोकप्रिय हैं। सोने के तार तथा रेशमी धाओं से बुना गया वस्त्र ही "होमबट्टु" है। मिथकीय लोक कथागीतों में इस ढ़ंग के वस्त्रों का अधिक उल्लेख है। मिथकीय लोक कथागीतों के प्रसंगों से यह स्पष्ट होता है कि आंध्रवासी छोटे बड़े आचार व आनंदोत्सव के संदर्भो में सोने व चांदी के तारों से बने रेशमी वस्त्र पहनते थे। रेशमी वस्त्रों पर वनस्पति एवं जंतु के चित्र बनाना भी आंध्र की प्राचीन कला है। मिथकीय लोक कथागीतों में इस प्रकार के विविध चित्रों से शोभित वस्त्रों का भरपूर चित्रण हुआ है।

आंध्र के मिथकीय लोककथा गीतों में बड़े पैमाने पर आभरणों का भी चित्रण किया गया है। आभरणों की विविधता उनकी समृद्धि को स्पष्ट करती है। स्त्रियों तथा पुरुषों के द्वारा पहननेवाले विविध प्रकार के आभरण उन मिथकीय पात्रों की शोभा को और बढ़ाते हैं। आभरण साधारणतया सोने तथा चांदी के होते हैं। आभरणों में जड़ाई विशेष कलात्मकता का सूचक है। जड़ाई में विविध प्रकार के रंगीन पत्थर, हीरे, मोती, रत्न आदि का इस्तेमाल किया जाता है। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में इन सभी का बहुत ही मनोहर ढ़ंग से चित्रण किया गया है। जड़ाई से पपरिपूर्ण आभरण आंध्रों की आभरण कला का परिचय देते हैं। अवसर के अनुरुप पहने जानेवाले इन आभरणों का आकार भी भिन्न है।

आंध्रों के आभारणों की एक विशिष्टता यह भी है कि सिर से लेकर पैर तक शरीर के अंगों के अनुरूप ही विविध आभरण पहने जाते है। जैसे सिर पर पहनने वाले आभरण एक प्रकार के हैं। तो नाक में पहनने वाले आभरण दूसरे प्रकार के हैं। इन सब के अपने अपने नाम हैं। एक ही शरीर के अंग में पहननेवाले आभरणों के नाम अलग अलग हैं। सोना-चाँदी के इन आभरणों में जड़ाई एक विशेषता है तो आभरणों में भी विविध प्रकार के चित्र जड़ना एक और विशेषता है। आंध्र के लोक कवि गायकों की यह विशेषता भी है कि गृहोपयोगी साधन जैसे खंभे, खिड़की आदि को भी उन्होंने सोना-चाँदी के बना दिए हैं। इस से आभरणों के प्रति आंध्रों के प्रेम का, आभरण तैयार करने की उनकी कलात्मकता का तथा विविध आभरण पहन सकने की उनकी समृद्धि का पता चलता है।

आदमी की अत्यंत आवश्यक व आदिम आवश्यकताओं में एक खान-पान की वस्तुएँ भी आदमी के जीवन विधान के साथ ही नहीं बल्कि उसकी संस्कृति के साथ भी अटूट संबंध रखती हैं। खान-पान की वस्तुएँ तथा आदतें प्रदेश विशेष की जलवायु के अनुकूल ही विकसित होती हैं। ये प्रदेश विशेष के लोगों की जरूरतों की पूर्ति की दिशा में भी विकसित होती हैं। इस कारण से इन के माध्यम से प्रदेश विशेष के जीवन-विधान तक पहुँचना आसान होता है। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि खान-पान की वस्तुओं की दृष्टि से आंध्र एक समृद्ध प्रदेश है। मीठे व नमकीन विविध व्यंजनों का मनोहर चित्रण इन मिथकीय लोक कथागीतों में हुआ है। आंध्र पर्व-त्योहार आनंदोत्सव मनाने वाला सांस्कृतिक प्रदेश है। पर्व-त्योहार आनंदोत्सवों में विशिष्ट पक्वान्न आंध में बनाये जाते हैं। उन सभी पक्वान्नों का अवसर पाकर लोक कवि गायकों ने मिथकीय लोक कथागीतों में भी प्रक्षेपित कर दिया है। जैसे रजस्वला के दौरान ''चिम्मिली'' बनायी खायी जाती है। ''चिम्मिली'' तिल, गरी तथा गुड़ कूटकर बनायी जाती है। उसी प्रकार जच्चा शौच निवारण (पुरुडु) के समय ''पुलगमु'' बनाया-खाया-खिलाया जाता है। ''पुलगमु'' चावल और मूँग की दाल से बनायी गयी खिचड़ी है। ऐसे ही विशिष्ट अवसरों के कई व्यंजनों का चित्रण आंध के मिथकीय लोक कथागीतों में हुआ है। इन मिथकीय लोक कथागीतों की यह भी विशेषता है कि आम जीवन की ये सारी खान-पान की वस्तुएँ मिथकीय पात्रों और प्रसंगों पर आरोपित हुई हैं।

जीवन में खेल-कूदों की भूमिका को ठुकराया नहीं जा सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक उल्लास खेल-कूदों के कारण ही बने रहते हैं। खेल-कूद आदमी को जीवन के साथ जोड़ते हैं। जीवन-यात्रा पार करने में अच्छे साधन साबित होने हैं। वस्त्र-आभरण, खान-पान की वस्तुओं की तरह खेल-कूद भी जीवन-विधान सापेक्ष तथा जीवन निसृत सांस्कृतिक धरोहर ही नहीं बल्कि जीवन-विधान के अप्रतिम प्रतिनिधि भी हैं। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में व्यंजित खेल-कूद आंध्र के जीवन-विधान के सापेक्ष विकसित हुए हैं। ये खेल-कूद आंध्र के सांस्कृतिक धरोहर हैं। आंध्र संस्कृति के इन धरोहरों को आंध्र के लोक कवि गायकों ने मिथकीय लोक कथागीतों में भी प्रक्षेपित किया है। इन प्रक्षेपणों से मिथकीय लोक कथागीत और जीवंत बन पड़े हैं। इन मिथकीय लोक कथागीतों की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि इन के द्वारा अनेक प्राचीन खेल-कूद कथागीतों के रूप में ही सही सुरक्षित रह गये हैं। आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में घर के अंदर तथा घर के बाहर खेले जाने वाले खेल-कूदों का सजीव वर्णन हुआ है। घर के अंदर खेले जाने वाले खेलों में ''वामन गुंटलाटा'', ''अच्चेन गुंड्लु'', ''नालुगु कंबालाटा'', ''पुलिजूदम'', ''सरिबेसुलु'', ''ऊदर गुप्पीलु'', ''सोगटुलाट'' आदि प्रमुख हैं। घर बाहर खेले जानेवाले खेलों में ''कुंदनगिरि'', ''दागुडु मूतलु'', ''दोपिडि पुल्ल'', ''चिल्ला कट्टे'', ''चेंगु बिल्ला'', ''पुट चेंडु'', ''पुलि आटा'', ''बोंगरालाटा'' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। ये सभी आंध्र के प्राचीन खेल-कूद हैं। जीवन विधान में आए परिवर्तनों के कारण आज इन में से अधिकांश खेल आंध्र में बहुत ही कम नजर आते हैं। इन की जगह आधुनिक खेल-कूद जनता में लोकप्रिय हो गये हैं। परन्तु सांस्कृतिक धरोहर माने जाने वाले इन खेल-कूदों में खेल-कूदों के द्वारा प्रत्याशित किए जानेवाले वे सभी गुण आज भी मौजूद हैं। ये जीवन में आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जितनी पहले निभाते थे। इससे बढ़कर इनको अपनाने में न उपकरणों के अभाव की समस्या होगी न उनको खरीदने के लिए बड़े पैमाने पर पैसा खर्च करने की जरूरत ही होगी। इन खेलों के लिए आवश्यक उपकरण सरल होते हैं। अपने प्रदेश में वे सर्वत्र सरल व सुलभ प्राप्त होते हैं। आज के व्यस्त जीवन-विधान को थोड़ी देर के लिए ही सही शांत व आराम प्रदान करने की शक्ति इन खेल-कूदों में है। फुरसत के समय ही फुरसत निकालकर इनको अपनाने से खेल-कूदों में है। फुरसत के समय ही फुरसत निकालकर इनको अपनाने से खेल-कूदों के द्वारा प्राप्त होनेवाले वे समस्त प्रयोजन इन से अवश्य प्राप्त हो जाएँगे। निर्वापन से बचाकर इन को अपनाने से जीवनोपयोगी नई स्फूर्ति की पूरी संभावना दिखाई पड़ती है। क्योंकि ये खेल-कूद मनोरंजक, जीवनोतसाहवर्धिनी, भाईचारे के भाव को बढ़ाने वाले, रचनात्मक स्पर्धा एवं संगठित प्रयास की चेतना जगानेवाले हैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि ये खेल-कूद न केवल आदमी को अपने प्रदेश से जोड़ते हैं बल्कि पूरे राष्ट्र के साथ जोड़ने में भी ये अत्यंत सक्षम हैं।

स्पष्ट है कि संस्कृति के धरोहर माने जानेवाले आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, आनंदोत्सव, लोक विश्वास, वस्त्र-आभरण, खान-पान की वस्तुएँ, खेल-कूद आदि आंध्र के मिथकीय लोक कथागीतों में प्रक्षेपक बनकर व्यंजित हुए हैं। प्रस्तुत सांस्कृतिक अनुशीलन से आंध्र संस्कृति के

शेष भाग पेज नं. 58 पर

तमिल का गौरव-ग्रंथ- "तिरुक्कुरळ"

○ डॉ.एन.शेषन, चेन्नै

"तिरुक्कुरळ" तमिल साहित्य का गौरव-ग्रंथ है और भारतीय साहित्य के भव्य भूषणों में एक माना जाता है। इस नीति काव्य के रचयिता हैं तिरुवळ्ळुवर। तिरुवळ्ळुवर शब्द में "तिरु" आदरसूचक उपसर्ग है। मूल नाम तो "वळ्ळुवर" एक सामान्य जातिवाचक शब्द के रूप में प्रचलित है और संभवत: यह बुनकरों की जाति रही हो।

रचना काल:

तिरुवळ्ळुवर रचित "तिरुक्कुरळ" के रचनाकाल के संबंध में मत-भेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसका रचना-काल ईसा की प्रथम और द्वितीय शताब्दी के बीच है या इससे पूर्व होनी चाहिए जबकि कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार ईसा पूर्व एक या दो शताब्दी रहे होंगे।

वर्णविषय :

तिरुक्कुरळ मुक्तक काव्य-रचना है और इसका प्रत्येक पद स्वतंत्र रूप से पूर्ण अर्थ प्रदान करता है। पर विषय की दृष्टि से इस ग्रंथ में एक क्रमबद्धता और धारावाहिकता है। प्रत्येक कुरळ् पूर्व कुरळ और प्रत्येक अध्याय पूर्व अध्याय से अत्यन्त सूक्ष्म रूप में संपृक्त है। ग्रंथ में तीन भाग हैं- "अरम" (धर्म), "पोरुळ" (अर्थ) और "इन्बम्" (काम)।

धर्म खण्ड में ईश्वर वन्दना, धर्म की महत्ता, संन्यासी की महत्ता आदि के वर्णन के उपरांत गृहस्थ धर्म की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। साथ ही मांसाहार-निषेध, दुराचरण, चोरी न करना, सत्य भाषण की आवश्यकता, किसी का अहित न करना इत्यादि जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक विषयों पर विस्तार से विवेचन हुआ है। इस प्रकार मानव के सर्वोत्तम तथा आदर्श जीवन-यापन के लिए उपयोगी तत्त्वों की सुंदर चर्चा इस खण्ड में हुई है।

दूसरा भाग "पोरुळ्" (अर्थ) पर है। इसके अन्तर्गत शासन-विधान, राजाओं के गुण-कर्म, शिक्षा, सुशासन, सैन्य, मंत्री इत्यादि अनेकानेक काव्यों एवं सिद्धांतों का सुंदर विवेचन हुआ है। ग्रंथ का तीसरा एवं अंतिम खंड है "इन्बम" (काम)। इसमें गुप्त-प्रेम (कळवु), पति-प्रेम (कर्पु) का सुंदर विभाजन है। मिल-सुख, प्रेम की महत्ता, पूर्व-राग आदि विभिन्न विषयों की व्याख्या अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से की गयी है। तिरुवळ्ळुवर ने धर्म, अर्थ और काम का तो वर्णन किया है, पर मोक्ष का नहीं। कारण स्पष्ट है कि धर्म-समन्वित जीवन व्यतीत करने के उपरांत अंतिम परिणति मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति स्वाभाविक है। जीवन का रागात्मक संबंध, गृहस्थ की परिसीमा में आबद्ध होकर आए हैं, अत: गृहस्थ धर्म का समयक विवेचन हुआ है। अर्थि के अंतर्गत राज्य संगठन का विस्तृत-विश्लेषण कर मानव-मात्र के कल्याण की सद्भावना से 'राज्य' को प्रेरित कियाी गया है। इस प्रकार जीवन को समग्रता से देखने और विश्लेषित करने के उपरांत -वीडु' (मोक्ष) का वर्णन न होने का कारण यह है कि धर्म-आधृत अर्थ और काम के आदर्श से युक्त जीवन की सुंदर परिणति 'वीडु' अर्थात् मोक्ष है।

कुरळ का वैशिष्ट्य

तिरुवळ्ळुवर का आविर्भाव समस्त मानव जाति के संवर्धन और विकास के निमित्त हुआ। उनके विचार न केवल तमिल भाषियों तक ही सीमित है, अपितु अन्य भाषा-भाषियों को भी अपनी विचारधारा की परिधि में समाहित किए हुए हैं। प्लेटो, कन्फ्यूशियस, रूसो आदि विश्व के महान विचारकों ने जिस धरातल पर खड़े होकर मानव मूल्यों पर विचार किया था, तिरुवळ्ळुवर भी उसी विचार-स्तर पर खड़े हुए हैं। मानवता के संबंध में तथा मानव के विकास की चिंतनधारा का क्या महत्त्व है, इस पर विचार करने से उनकी महानता स्पष्ट हो सकेगी।

तिरुवळ्ळुवर ने मानव की विराटता को इहलौकिक एवं पारलौकिक संदर्भों में देखा। मानवीय संबंधों में व्याप्त व्यक्तिगत संबंध सूत्रों के तनाव एवं समरसता के अभाव के व्यवधान को दूर करने के निमित्त विस्तृत आचार-संहिता का प्रारूप प्रस्तुत किया। उन्होंने मानवीय संबंधों जैसे पिता-पुत्र, पति-पत्नी, नागरिक-शासक और ब्रह्म एवं आत्मा के बीच आचरण के प्रत्येक स्तर पर घटित होने वाले भावात्मक परिवर्तनों पर अपना ध्यान केंद्रीत किया। उन्होंने न केवल जीवन की समग्रता का अवलोकन किया, बल्कि एक भविष्य-दृष्टा के रूप में जीवनक्रम के विकास के संदर्भ में होने वाले अवरोधों पर भी दृष्टिपात किया। उनकी जीवन-दृष्टि से मनुष्य के विकास-क्रम का कोई भी पा अधूरा नहीं रहा। जीवन को गहराई से आँका और साथ ही साथ उसके विभेद एवं विसंगतियों का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया है। समाज में व्याप्त उदात्त धार्मिक तत्त्वों का भी जहाँ विश्लेषण किया वहाँ उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से व्यक्तियों के अशांत मानस का भी दर्शन किया और उनके कारणों के मूल में जाने का कार्य किया। इस तरह मनुष्य को उसकी संपूर्णता में समाहित करने का उनका महान प्रयास रहा है। विचारों की इस उच्च भूमि एवं उसकी श्रेष्ठता को लक्षित कर डॉ० आलबर्ट स्वैट्जर ने अपने ग्रंथ "इझिडयन थाट अण्ड इट्स डेवरपमेंट" में तिरुवळ्ळुवर पर गंभीर विचार व्यक्त किया है- "शायद ही विश्व साहित्य में इस प्रकार की विचाराभिव्यक्ति हमें देखने को मिलेगी जैसी उदात्त भावना और प्रज्ञा तिरुक्कुल रळ में अभिव्यक्त है।" इस प्रकार तिरुक्कुरळ् तमिल साहित्य का एक गौरव-ग्रंथ है, जिसमें मानवीय विचारधारा की उदात्त और पवित्र अभिव्यक्ति हुई है।

तिरुक्कुरळ् का महत्त्व इस बात में है कि किसी भी सांप्रदायिक भावना तथा

विश्वास में सीमित न रहकर संपूर्ण मानवीय समाज को आत्मसात करते हुए अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। उनका दृढ़ मत है कि जीवन मूल्य शाश्वत होना चाहिए। उन्होंने सामाजिक और आदर्श गृहस्थ जीवन के विधानों के लिए स्थिर मूल्य स्थापित किए हैं।

तिरुवळ्ळुवर एक विलक्षण काव्य-शिल्पी भी हैं। कवि ने अत्यंत संक्षिप्त रूप में अपने भावों को अभिव्यक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कुरल के नपे-तुले छोटे शब्दों, वाक्यांशों में इतना अर्थ गांभीर्य भरा है, जो हृदय को प्रभावित कर देता है। इस प्रकार अभिव्यंजना में इतनी सम्मोहन शक्ति है कि पाठक के मानस-जगत से कुरळ का प्रभाव दूर नहीं हो पाता। इसी कारण तमिल कवयित्री औवैंयार ने तिरुवळ्ळुवर के काव्य-शिल्प एवं रचना-धर्म से प्रभावित होकर यह उद्‌गार प्रकट किया है- "वल्लुवर ने अणु के समान छोटे-छोटे शब्द, अक्षर एवं ध्वनियों का प्रयोग किया है। उसकी सूक्षमता में सातों समुद्र का गंभीर्य समाहित है। वे गागर में सागर भरने वाले कुशल कवि हैं"। डॉ. जी.यू. पोप ने तिरुवळ्ळुवर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें "विश्व मानव का शुभ चिंतक" साबित किया है।

आगे हम देखें कि मानव-विकास और उनके मूल्यांकन के रूप में वळ्ळुवर ने कौन सी आकर्षक रूपरेखा प्रस्तुत की है। उनके विचार में व्यक्ति को संस्कारी बनाने में गृहस्थ जीवन का विशेष हाथ है। अपनी रचना के प्रारंभिक खंड "अरम" (धर्म) में आदर्श गृहस्थ जीवन को विश्लेषित करते हुए उसके नकारात्मक एवं स्वीकारात्मक दोनों पक्षों पर विचिार किया है। प्रचलित धारणा कि यह भौतिक संसार नश्वर है, के विपरीत वळ्ळुवर की मान्यता है कि स्वर्ग का सुख मानव को इस नैसर्गिक संसार में ही मिल सकता है। जीवन और जगत में देवत्व की प्राप्ति के लिए संसार के उदात्त रूप को अपनाने की आवश्यकता पर बल देते हैं। जैन धर्म के विचारों से प्रभावित तमिल नीति-ग्रंथ "नालडियार" तो छोटी आयु में ही संयास ग्रहण पर ज़ोर देता है, जबकि कुरळ इसके विपरीत गृहस्थ धर्म की महत्ता प्रतिपादित करता है।

वे अपने विचारों के माध्यम से यह मार्गदर्शन देते हैं, ताकि व्यक्ति निम्न धरातल से ऊपर उठकर इस उच्च स्तर पर पहुँचे जिससे वह आदर्श जीवन तक पहुँचने में समर्थ हो सके। तमिल शब्द का अगर प्रयोग करें तो "सान्रोर" या आदर्श मानव ऐसा व्यक्ति होता है जो कि समस्त अच्छे गुणों का अधिकारी हो जाता है। ऐसे सान्रोर व्यक्ति में विश्व प्रेम, कोमल हृदय एवं परोपकार-वृत्ति आदि मानवीय गुण सन्निहित रहते हैं। इस भाव का उनका प्रसिद्ध कुरळ है।

"अन्बु नाण ओप्पुरवु कण्णेट्टम वाय्मै
उडैन्दु साल्बु ऊन्रिय तूण।"

ऐसे "सान्रोर" अपने शत्रुओं को भी प्यार करने की क्षमता रखते हैं। इस आशय का प्रसिद्ध कुरळ हैरै-

"इना सेय्द्रक्कुम् इनियवे सेय्याक्काल
एन्न मयत्ततो साल्बु।"

अर्थात् "जो बुराई करे उसकी भी भलाई न करे तो "सान्रोर" की संगति का क्या लाभ?"

"सान्रोर" अपने स्वभाव में दृढ़ और आदर्श गुणों से संपन्न होता हैं साथ ही वह सम्यक् दृष्टि संपन्न एवं विचारों में इतना सजग होता है कि अपने आदर्शों पर दृढ़ होता है। चाहे पहाड़-सा संकट भी आ उपस्थित हो, वह अपने आदर्शों से तनिक भी न डिगता है और न ही सतय-पथ से विचलित भी। संकट काल में स्थिर-चित्त बना रहता है। ऐसे नैतिक मूल्यों से युक्त-वह संसार के गुरुतर भार को वहन करने में समर्थ होता है। नीचे का कुंरळ इस आशय को सुंदर ढंग से अभिव्यक्त करता है

"सान्रवर सान्रामै कुन्रिन् इरुनिलन्दान
तांगादु मन्नो पोरै।"

अर्थात यदि गुणी व्यक्ति का गुण घट जाय तो भूमि अपना भार वहन करने में असमर्थ हो जायेगी।

इस प्रकार आदर्श व्यक्ति की विशिष्टताओं का विस्तार से वर्णन करते हुए वळ्ळुवर यह मत प्रकट करते हैं कि "सान्रोर" (उत्तम गुणवान) बनने के पूर्व उसका सद् गृहस्थ होना आवश्यक है और सद्‌गृहस्थ की अवधि को पूरा करने के उपरांत उसे आत्म-त्यागी होना चाहिए।

सद्‌गृहस्थ के गुणों और लक्षणों पर भी कवि ने पर्याप्त विस्तार से विचार किया है। वळ्ळुवर के अनुसार सद्‌गृहस्थ की स्थूल परिभाषा निम्न प्रकार है-

"मनत्तुक्कण् माशिलन् आदल् अनैत्तु
अरन आकुल नीर पिर।"

अर्थात दोष रहित मन जिसका हो उसी में धन का सार निहित है शेष सब भड़कीला दिखावा मात्र है।

मन-मस्तिष्क की पवित्रता के संबनध में एक अन्य कुरळं इस प्रकार है

"आळुक्कारु अवा वेकुळि इन्नाच्चोल्
नान्कुम् इळुक्का इयन्रदु अरम्।"

अर्थात् तृष्णा, क्रोध, लोभ, अप्रिय-वचन इन चारों से मुक्त होना चाहिए। तभी धर्म की प्राप्ति संभव है। यद्यपि इन चारों दुर्गुणों को हटाना दुष्कर कार्य है, तथापि तिरुवळ्ळुवर का मत है कि जब तक हम इन दोषों से मुक्त नहीं होंगे तब तक सुख या कीर्ति की प्राप्ति असंभव है। वळ्ळुवर ने पत्नी को जीवन-संगिनी माना है और एक अध्याय में उसके गुणों और व्यक्तित्व की विशिष्टताओं पर अपनी धारण व्यक्त की है। उसके अनुसार पतनी गृहस्वामिनी है और वैवाहिक गृहस्थ जीवन में उसकी भूमिका अप्रतिम एवं सर्वोच्च हैं उनका कथन, कुरळै मे इस प्रकार है--

"इल्लतेन इल्लवळु माणबानाल
उळ्ळतेन इल्लवळ् भाणाक्कडै।"

जिसका आशय है कि यदि गृहिणी सुधर्मिणी है तो पति की किस बात का अभाव हैद्य और यदि वह सुधर्मिणी नहीं है तो फिर उसके पास रह ही क्या गया है?

इस प्रकार माता और पुत्र के बीच के पारस्परिक आंतरिक स्नेह संबंध की ओर संकेतित कर वे कहते हैं कि प्रेम का संबंध केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं होनी चाहिए। पारिवारिक प्रेम अत्यधिक आत्मकेंद्रीत और स्वार्थपरक भी नहीं होना

चाहिए। व्यक्ति की सीमा से मुक्त होकर परिवार, समाज और देश की विराटता को स्पर्ष करना होगा। इस प्रकार वळ्ळुवर ने जन-समाज के सम्मुख शाश्वत जीवन-मूल्यों की चर्चा की है।

उनके मातानुसार इन शाश्वत जीवनादर्शों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को संसार-त्याग करने की आवश्यकता नहीं, किंतु व्यक्ति को अपने अवगुणों का त्यागना आवश्यक होता है। वे चाहते हैं कि व्यक्ति अपनी स्वार्थपरक आदतों से मुक्ति पा ले। सद्गृहस्थ में सद्गुणों का प्रादुर्भाव होना चाहिए। जो व्यक्ति सद्गुणों से संपन्न न हो, उसके लिए पर लोक नहीं है।

वळ्ळुवर के अनुसार यश:प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग दान देना है। दूसरों को दान देने से प्राप्त मानसिक आनन्दानुभूति की उपमा कवि रति-क्रीड़ा से प्राप्त आनंदानुभूति से करते हैं (कुरल-1107)। किसी प्रकार के लोभ या प्रतिफल की आशा किये बिना परोपकार करना उत्तम कार्य है (कुरल-222)। वळ्ळुवर के पूर्व संघकालीन जीवन में मांसाहार, मदिरा-पान तथा परस्त्री-गमन आदि कार्यों को सामाजिक मान्यता प्रापत थी। वळ्ळुवर ने स्वस्थ एवं आदर्श समाज की स्थापना के हेतु उपर्युक्त कार्यों का तीव्र शब्दों में विरोध किया है और उनका निर्भय होकर खण्डन भी। कई स्थलों पर वळ्ळुवर इस विचार पर ज़ोर देते हैं कि साधन की पवित्रता के समान साय की भी पवित्रता अत्यंत आवश्यक है। यद्यपि वे विधिवाद को मानते हैं तथापि अपने पुरुषार्थ के बल पर जीवनपथ पर आगे बढ़ने के पक्ष में हैं। (कुरळ-620)। कुरळ में देश की आर्थिक उन्नति के निमित्त कृषि की महत्ता स्वीकार की गई है। जो राष्ट्र विदेसशी पूँजी के बल पर विकास करने पर विचारता है, वह राष्ट्र कहलाने योग्य नहीं (कुरल-739) लगभग तेरह अध्यायों में 'कुडि इयल'' (नागरिकता) के शीर्षक के अंतर्गत आदर्श नागरिकों के उत्तम गुणों की विस्तृत चर्चा हुई है। "काम" सर्ग में वे पवित्र आचरण एवं स्वस्थ गृहस्थ जीवन निर्माण पर विशेष बल देते हैं। इसमें प्रेम की चर्चा के साथ ही नैतिक शिक्षा पर जोर दिया हैं।

तिरूक्कुल में वर्णित जीवन मूल्यों और आदर्शों पर बहुत विस्तार से लिखा जा सकता है। परिचयात्मक प्रस्तुत लेख में इतना ही संक्षिप्त विवरण देना पर्याप्त होगा। समग्र विचारों एवं धारणाओं पर सोचने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि वळ्ळुवर में सृष्टि के संपूर्ण सत्य का अवलोकन करने की अपूर्व क्षमता थी। वळ्ळुवर ने जीवन मूल्यों को प्रस्तुत कर जिस क्षितिज को स्पर्श करना चाहा, वह युग-युग तक मानव का मार्गदर्शन करने में सक्षम साबित होगा।

अपनी नयी भावधारा को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने के हेतु उन्होंने भाषा और दर्शन का, बड़ी कुशलता के साथ समावेश किया। उनकी भाष दार्शनिक मुद्रा ली हुई है और दार्शनिक चिंतन के अभिव्यक्ति में भाषा का कौशल देखते ही बनता है अपनी बौद्धिक प्रतिभा की अभिव्यक्ति में वे तमिल साहित्य में अपना सानी नहीं रखते। वळ्ळुवर की सबसे बड़ी विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने जाति, समाज अथवा राष्ट्र की संकुचित कल्पना या रूप की अभिव्यक्ति कभी नहीं की। मानसिक संकुलता से उत्पन्न स्थितियों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उनके समग्र विचार, चिंतन एवं जीवनादर्श "विश्वमैत्री" पर आधारित है। अत: वे विश्व के उत्कृष्ट कवियों एवं विचारकों की पंक्ति में अग्रगण्य स्थान रखते हैं। सचमुच वळ्ळुवर विश्व की महान प्रतिभाओं में से एक माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति के तो वे मेरुदण्ड हैं।

संपर्क : 'गुरुकपा' रामास्वामी मुदालियर रोड, चेन्नई

पेज नं. 55 का शेष भाग

आचार-रीति रिवाज, आनंदोत्सव, लोक विश्वास, वस्त्र-आभरण, खान-पान की वस्तुएँ, खेल-कूद संबंधी अनेक तत्त्वों का पता चला है। यह इस अध्ययन की प्रमुख उपलब्धी है। आज तक लोक जनता में ही वाणीबद्ध अनेक मिथकीय लोक कथागीतों को लिपिबद्ध करना इस अध्ययन की दूसरी उपलब्धी है। लोक साहित्य का सर्वेक्षण, अध्ययन-विश्लेषण एक सतत प्रक्रिया है। क्योंकि लोक साहित्य अनंत अक्षय भंडार है। जितने खोज निकालने के प्रयास होंगे उतना ही यह जन साहित्य उपलब्ध होगा। क्योंकि लोक साहित्य जन जन में निक्षिप्त साहित्य है। इस अक्षय निधि को खोज निकालने से उसमें निक्षिप्त संस्कृति भंडार को प्राप्त किया जा सकता हे। महोत्कृष्ट अपनी संस्कृति को समस्त विशेषताओं के साथ प्राप्त करना, उसकी अच्छाइयों एवं उपलब्धियों की याद करना अपने आप में महोन्नत कार्य है। इस महोन्नत कार्य को सुलभ साध्य बनाने वाले लोक साहित्य या मिथकीय लोक कथागीतों को संग्रह करना तथा उनका अध्ययन-विश्लेषण करना सहृदय साहित्यिक प्रेमियों का आदि कर्तव्य है। मिथकीय लोक कथागीतों से संबंधित इस प्रकार के शोधकार्य कम हुए हैं। असीम लोक साहित्य सागर के अपार मोती रूपी मिथकीय लोक कथागीतों में कुछ ही का संग्रह-कार्य आज तक संभव हो सका है। अपार मिथकीय लोक कथागीत निधि अब भी जन सागर में बची हुई है। उस निधि से कुछ और मिथकीय कथागीतों को संग्रह करने तथा अध्ययन-विश्लेषण करने के इस उदात्त एवं महोन्नत काम को परम प्राथमिकता देकर सहर्ष जुट जानेवाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं का दायित्व पूर्ण स्वागत होना चाहिए। इससे ही निर्वाचन के कगार पर खड़े मिथकीय लोक कथागीतों को तद्वारा हमारील प्राचीन संस्कृति को बचाया जा सकता है।

संपर्क : प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्री बेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति, आंध्र प्रदेश

सुब्रमण्य भारती के साहित्य में अभिचिंतित अखंड राष्ट्र की अवधारणा

○ श्री एम.पार्थसारथी, चेन्नै

भारत एक है इसकी विचारधारा व आधारभूत संस्कृति व तज्जन्य सभ्यता आदि एक ही हैं। इस कारण इसके धर्मभाव से जन्य बौद्धिकता भी बुद्ध के समय के पहले ही से हमें इतिहास के द्वारा विदित है। किंतु बुद्ध के पहले भी भारत का इतिहास अवश्य था। वह इतिहास कहता है कि हमारे नगर, नदियाँ भी अखंड राष्ट्र की भावना से जुड़े हुए थे। इस अखंड राष्ट्र की महिमा को हमारे ऋषि-मुनि गाते नहीं थकते। क्या आश्चर्य है कि भारती ने भी इसी परंपरा को अपनाया था। मनुष्य जब से पैदा हुआ तब से वह अपने को अपने विचारों को, अपने दृष्टिकोणों को संकुचित या संकीर्ण रूप से रख लेने से इन्कार कर चुका था। इस असीमित आत्म भावना के कारण ही शायद विज्ञ-जन पुराने जमाने में व्यापक उद्‌गारों को समय-समय पर प्रकट किया करते थे।

संक्षेप में कहें तो 'वसुदैव कुटुम्बकम' यादुम ऊरे यावरुम केळिर यानि सब हमारे पुर हैं, सब हमारे बंधु ही हैं, इस कल्याणकारी उक्ति उसके स्वभावोचित मात्र अखंड राष्ट्र का नहीं बल्कि अद्‌भुत व सार्वभौम मानवता का भी द्योतक थी।

श्रवीद ळंतकदमत का कहना है कि । छंजपवद पे ीमसक जवहमजीमत इल ेंतमक इमसपमर्िं दक ेंतमक जंजपजनकमेण अर्थात् एक राष्ट्र विश्वासों और विचारों के कारण एक जुट होता था। विचारों की परिमितता, एक जीव को मानव मात्र बना देता है, किंतु उसकी अपरिमितता उसे महा मानव बना देता है।

भारती महा मानव मात्र नहीं, बल्कि महा कवि ही थे। कवि दृष्टा ही नहीं परंतु सृष्ठा भी होता है। यहाँ देखने योग्य बात यह है कि ईश्वर से सृष्टित महान वस्तुएँ क्षण काल में अनायास ही कालकविलित हो जाती हैं जबकि भारत जैसे महाकवियों की उक्तियाँ सदा सर्वदा कालजयी विश्व जयी एवं सर्वजयी होती हैं। उनकी एक उक्ति देखिए

इनि, ओरु विति चेय्योम्-अतै एन्त नाळुम् काप्पोम्
तनि ओरुवनुक्कु उणविल्लैयेनिन्
इच्चकत्तिनै अळित्तिटुवोम्.

यह भारती का वेद वाक्य है। कौन जानता इसके पीछे की प्रेरणा क्या थी? इसके समान और कोई वाक्य भारत के समूची भाषाओं में से किन्हीं कवियों ने बताया है? कदापि नहीं। 'एक अकेले व्यक्ति के लिए (व्यक्ति को भी) इस समाज में खाना प्राप्त न होगा तो ऐसे समाज को जिस दुनिया की नीति ने रचाया, उस दुनिया का सर्वनाश कर देंगे।' यही इसका तात्पर्य है। जीवित रहने के लिए खाना जरूरी है। उसका प्रावधान करके हर शख्स को खिलाना समाज का फर्ज है। ऐसा न किया जाएगा तो क्या वह भी एक समाज कहलाने योग्य है? धिक्कार है। उनकी अमर वाणी का, और एक नमूना सुनिए, जिसमें मात्र भारती की छाप लगी हुई है।

चुरि निल्लाते पो पकैये
तुळ्ळि वरुकुतु वेल्

'जा, जानी दुश्मन, मत घेर, उछल कर आता है शूल। दुनिया के हजारों कविगणों के गीत, उक्ति व वचनों को ढेर के रूप एकत्रित रखिए; उनके कृतित्व की पहचान में संदेह भी अवश्य हो सकेगा। परंतु उस ढेर के बीच जाज्वल्यमान हीरे की तरह मात्र भारती के वचन होंगे, क्योंकि उनकी भाषा में तमिल वीर (मरवर) जाति के विचार होते हैं।

निस्संदेह ही है, तमिल भाषा के सभी काव्य एक अखंड भारतीयता की पुष्टि करने के वास्ते ही लिखे जाते थे। एक उदाहरण देखिए।

शिलप्पधिकारम में वंचीकाँड के स्वस्ति वचन गाथा में ये कविता वाक्य उल्लेखनीय हैं।

कुमरियोड वटइमयत्तु ओरु मोळि वैत्तु उलकाणंट चेरलातकु

मतलब यह है कि हिमाचल से कुमरी तक की भूमि को अपनी आज्ञा से सेंकुट्टुवन ने शासन किया।

तो इससे पता चलेगा कि यद्यपि तमिल देश के तीनों राजा अपने-अपने देश के शासन पर तुले हुए थे, फिर भी अखंड रूप से उनके राष्ट्र की सीमा हिमाचल तक फैलती थी। भारतीय संस्कृति ओर सभ्यता भी इसी प्रकार अखंड थी। अतः राष्ट्र की परिदृष्टि भी अखंड तथा राष्ट्र की कल्पना के आधार पर रहती थी।

कवियोगी शुद्धानंदजी ने भारती के बारे में कहा ''भारती अवनि का अद्‌भुत'' है। वास्तव में कवि नामक-जीव ही अद्‌भुत है किंतु भारतों तो अद्‌भुत हैं। क्योंकि भारती की बातें, भावनाएँ और भाषा अद्‌भुत और अलग हैं। भारती की कामना कल्पना तथा कवित्व शक्ति अद्‌भुत से अद्‌भुत है।

तमिल भाषा और माटी का पूरा सार भारती में स्वयं व्यक्त था। न केवल वे प्राचीनता का निचोड़ हैं बल्कि नवयुग के नव शिल्पी भी वे ही थे। यही उनमें आश्चर्य की बात थी।

वा.वे. सु अय्यर ने भारती के गीतों का मूल्यांकन किया। उनका कहना था कि एक-एक अक्षर के लिए एक-एक लाख का पुरस्कार देने योग्य हैं। मगर आज भी, केवल सितंबर और दिसंबर महीने में औपचारिक से इधर-उधर बैठकें होती हैं। विद्वान लोग यथा पूर्व अपने भाषणों की माला भारती को पहनाते हैं। किंतु भारती के पथ पर कौन चलेगा?

''अपने स्वदेश गीतों के प्रकाशन के समय भारती कहते हैं भारत देवी के पूर्ण रूप को दिखाकर गुरु के चरण कमलों में इस गीत माला का समर्पण करता हूँ। इन वाक्यों से उनकी भव्य भावना प्रकट है।''

दूसरी जगह पर इनका कथन है साक्नियन

ऐरिन्तकळैयुम् चिवपेरुमापन् मलर्कळाक अङ्कीकरिक्कविल्लैया?.........
ऐनुतु कुणपर् पूक्कळैयुम् पारतमाता करुणैयुटन् एश्रुक।

भारती सचमुच सरस्वती के पुत्र थे। लेकिन फिर भी उनके मन में गर्व का अंश लवलेश भी नहीं होता था।

उनकी कवि दृष्टि केवल भारत भर ही सीमित नही रही। किन्तु संसार में जहाँ कठोर-दासता के भार से तड़पती जनता

की बुलंद आवाजें उठती थीं वहाँ वहाँ भारती के दर्शन होते थे। यानि भारती सब के पहले वहहाँ पहुँच जाते थे। फीजि द्वीप के गन्ने के बागों में हिंदू स्त्रियाँ, मन खोलकर रह जाती थी। एवं उनका तन सिकुड़कर रह जाता है।

इन्तु मातर् तम् नेञ्चु केतित्तुक् केतित्तु मेय्चुरुङ्कुकिन्नरे आगे उनका कथन है पैण् ऐनु च्येल्लिटिलो ओरु पेयुम् इरङ्कुमन्रो.

स्त्री का नाम लेते ही एक जिन का मन भी पिघलेगा ही।

कपु नीङ्किटच्येय्युम् केटुमैयिले अन्तप् पञ्चै मकळिरेल्लाम् तुन्पप्पट्टु मटिन्तु मटिन्तु मटिन्तेरु तञ्चमुम् इल्लाते अवर् चाकुम् वाळक्कै.........

आबरु उतरवाकर उनपर जालिम किए जाते थे। ये कंगाल स्त्रियाँ गम खाकर मर मरकर, बेपनाह होकर मौत के द्वार रहती थी।

रूस देश की क्रांति पर उनका गीत प्रख्यात है। क्रांति तो हुई रूस में। उसकी बधाई यहीं से भारती देते हैं। जार चक्रवर्ती हिरण्य की तरह राक्षस हो गया था। जार ने धर्म की अवहेलना की। वह बेवकूफ था। झूठ, षडयंत्र अत्याचार आदि, उस रूस देश में सांपों की तरह बढ़ गए। जोतकर, बोकर, फसल काटने वाले किसान-मजदूर दरिद्र हो जाते। उनको खाना नहीं मिलता, बदले, उनको असंख्य बीमारियाँ आ घेरी। ये ही उनके परिश्रम के पुरस्कार हैं। असत्य की दासता करनेवालों को मिली धन-दौलत, जो जल्लाद हैं उनको मिला ऐश्वर्य, जौ निष्टावान थे उनको मिला कारागार।

बेल्जियम एक स्वतंत्र राष्ट्र है प्रथम विश्व युद्ध के समय जर्मनी ने निर्दय होकर उसपर अचानक हमला किया तथा उसे तेजी से परास्त भी कर दिया। देखिए भारती बेल्जियम के पक्षपर आ चुके। हार जाने पर भी उसकी बधाई देते हैं। उनकी उक्तियाँ देखने योग्य हैं।

अरत्तिनाल् वीळन्तु विट्टाय्, वन्मैयाल् वीळन्तु विट्टाय् मानत्ताल् वीळन्तु विट्टाय्, वीरत्ताल् वीळन्तु विट्टाय्

'धर्मम, चर' वही धर्माचरण, बल्जियम के लिए हार देता था। दुश्मन की प्रचण्डता के कारण हार गया। गौरव की रक्षा करने के लिए तू परास्त हो गया।

बेल्जियम की वीरता की परिभाषा कितनी खूबी से की गयी वीरवर लोग अपने सामने ही अधर्म होते देख कोने में छिप कर नहीं रहते। ललकार कर युद्ध में कूद पड़ते हैं। फल के बारे में उन्हें चिंता नहीं। घोर सर्प वीरों के लिए ना चीज का कीड़ा हैं।

कवि की करुणा भरी दृष्टि चाहे सुख पर विलंब से पड़े किंतु दुख पर अविलंब पड़ जाती है। आदि कवि वाल्मीकि की दयार्द उक्ति 'माँ निषाद प्रतिष्टा' से सब बिदित ही हैं।

वैसे ही इताली देश के नवजागरण पर माजिनी एक आदर्श नेता था। उस मजिनी के वास्ते भारती का जय गान है। उनकी अखंड राष्ट्रभावना के भीतर, न केवल मनुष्य आ जाते हैं। परंतु कौए भी आते हैं, गौरैयें भी आती हैं। अखंड राष्ट्र की अवधारणा में दीर्घ समुद्र और पर्वत भी स्थान प्राप्त कर लेते हैं। अखंडता भारती का स्वाभाविक धर्म है।

काक्कै कुरुवि ऐङ्कळ् जाति नीळ् कटलुम् पलैयुम् ऐङ्कळ् कूट्टम् नोक्क नोक्कक् कळियाट्टम्

कहते हैं कि उन्हें देखते-देखते खुशी से नाचेंगे।

अगर अखंड राष्ट्र का धर्म इस प्रकार हो तो खंडित राष्ट्रीयता का रूप क्या होगा? मैं कन्नड देशवासी हूँ, मैं आंध्र प्रदेश में जीनेवाला हूँ मैं उत्तर भारतीय हूँ इत्यादि इत्यादि।

यह नदी मेरे देश की है। यहाँ से पानी मेरे उपयोग के बाद ही तुम्हें मिलेगा। गंगा और कावेरी का मिलन। जितनी अड़चनें लगानी हम से संभव है, हम लगाएँगे ही।

भारती आवेग और आक्रोश से भरपूर कवि हैं। उनकी कविताओं में भावनाओं की टक्करों से उत्पन्न भव्य लहरें हैं। भारती ने क्यों और किसके लिए गाया? जो समूह हजारों सालों से गुलामी को ही पसंद करके अंग्रेजों के पैरों को चाटने में होडा-होडी करता था। उस गए-नीति समूह के लिए गाया। उस समूह को पहाड़ के समान उठाकर खड़ा कर देने के लिए लगातार गाया। अपनी अंतिम सांस बिलकुल रूकते क्षण तक गाता रहा। भारती आंदोलनकारी कवि थे। सदा उत्तेजनात्मक कविताएँ ही किया करते थे। भारती ने दिल के लिए, दिल से कविताएँ ही किया करते थे। भारती ने दिल के लिए, दिल से कविताएँ की। उनका विचार था कविता लिखनेवाला या करने वाला कवि नहीं है। कविता को ही अपना जीवन यापन, जीवन का पाथेय समझनेवाला ही कवि हो सकता है। कविगणों की कल्पना, कामना, और कवित्व-शक्ति "संपूर्ण भारत देश को गाए बिना नहीं रूकती। अति प्राचीनकाल से यानि तीसरे संघ्रकाल के पहले कुमरी पर्वत एवं पहरूली नदी आति दोनों को समुद्र के निगल जाने के पहले अर्थात् ई.पू. 3000 वर्षों के पहले पांडियन पलयागशालै मुदु कुडुमी पेरुवपुदि नामक राजा का राज्य संपूर्ण भारत देश पर शासन करता था। तोण्डै देश के 'कारी' नामक कवि उनपर प्रशस्ती गीत गाते थे।

वटा अतु पनि पटु नेटुवरै वटक्कुम्
तेना अतु उरुकेळ् कुमरियिनू तेन्कुम्
कुणातु करै पेरु तेटुकटल् कुणक्कुम्
कुटा अतु एतानुमुतिर् पौवत्तिन् कुटक्कुम्

उत्तर हिमालय से दक्षिण के कुमरी पहाड़ एवं पूर्व पश्चिम समुद्र तक, तुम्हारा शासन चलता था। कवियों के लिए पूरा भारत एक इकाई के रूप में ही प्रसिद्ध रहता था। भारती भी अपनी राष्ट्रीयता की भावना पर आरूढ़ होते समय स्वाभाविक रूप से ही इन सबको अपने में समा लेते थे।

उनके लिए जाति वर्ण, भाषा, प्रदेश आदि की सीमाएँ टूट चुकी थी। इतना ही नहीं, भूतकाल एवं वर्तमान काल आदि दोनों भी उनकी विशाल दृष्टि में अपने अस्तित्व को खो बैठे थे।

छत्रपति शिवाजी भारत की स्वतंत्रता के प्रतीक थे। कहते हैं।

ऐप्पतम् वाय्त्तिरु मेनुम् नम्मिल् यावर्क्कुम् अन्त निलै पेतुवाकुम्-मुप्पतु कोटियुम् वाळ्वोम्-वीळ्लि् मुप्पतु कोटि मुळुमैयुम् वीळवोम्.

भारती ने अपने राष्ट्रीय गीतों में सिंह गर्जन के समान बताया कि

जीएँ तो तीसों करोड़ के लोग जीएँगे। गिरें तो तीसों करोड़ों के हम पूर्ण रूप से गिरें।

'वंदेमातरम' के मंत्र वाक्य को आजादी की अहिंसात्मक लड़ाई के उस जमाने में कौन नहीं जानता था। यहाँ उल्लेखनीय विषय भारती मितवादी नहीं ये उनके राजनैतिक सिद्धांत, तिलक वा. ऊ.सी.

वांचीनाथन अरविंद आदियों के सिद्धांतों से मेल खाता था।

मगर 'भारत माता नवरतन माला', नामक गीतों में उनका गाँधी जी के प्रति, जो अहिंसा के मूर्ति थे, तथा जिन्होंने अंग्रेजों के विरोध में हिंसा के प्रयोग का समर्थन न किया था, यह उद्‌गर बहुत श्लाघनीय हैं।

पुवि मिचै इनु मनितक्कैल्लाम् तलैप्पटु मनिता तर्ममे उरुवाम् मोतनताल् करम् चेन्तिरकान्ति अरचियल् नेरियिले तलैवनाकक् केण्टु पुविमिचै तरुममे अरचियिलतनिलुम् पिरइयलनैतंतिलुम् वेरितरुम् ऐन् वेतम् चेन्तै.

गाँधी जी के अहिंसा तत्व को आज भी लोग सही नहीं मानते। परंतु सन् 1921 के पहले से ही भारती के मन में केवल गाँधीजी के द्वारा आजादी प्राप्त होगी, इस भविष्य चिंतित को कितने सुंदर ढंग से व्यक्त किया था।

सारे संसार में सभी मानवों के नेता गाँधीजी हैं। क्यों? उनका धर्माचरण ही विजय का बीज होगा। चाहे वह राजनीति हो, अथवा अन्य किसी भी पथ में वेद से प्रतिपादित धर्म ही, इस लड़ाई में हथियार है। जयनाद हो। शंखनाद हो। कितना अद्‌भुत वाक्य था।

आज की राजनैतिक अनैतिक झगड़ों से भरी परिस्थितियों में भारती के उपर्युक्त वाक्य जाज्वलयमान हीरे के समान हैं।

भारती के कवितामृत से इक्के दुक्के मिसाल ही मैंने पेश किए हैं। महाकवि से सहज प्रेरणा प्राप्त करने के लिए ये सर्वदा अपर्याप्त हैं। आशा है कि गुणग्राही सहृदय जन गुण को लेकर दोषों पर अनदेखी कर लें लाला लाजपति राय, गुरुगोविंद, दादाभाई नौरोजी भूपेन्द्र, तिलक, गाँधी, वा.उ. सी. आदि उनके जमाने के जितने मितवादी, तीव्रवादी, नेता होते थे, सबका स्वागत किया, सबों पर कतितार्चन किया।

वेळाळन् चिरै पुकुन्तान्

वा.उ.सी., जो वकील थे धंधे से जिनका नामकरण भारती ने किया था, वह तमिषन, जिसने जहाज चलाया, क्या इनके पहले कोई तमिल जहाजों को नहीं चलाते थे। अवश्य चलाते थे। उनका मुख्य धंधा विदेशों से वाणिजय करना था। परंतु मात्र वा. उ.सी. को यह नाम सही बैठता था। (वेळाळन्) कृषक ने कारागृह में प्रवेश किया मानो अपना स्वाधीन गृह बनाकर उसमें प्रवेश किया हो। क्या सूक्ष्म अभिव्यक्ति, क्या निडर व आह्लाद युक्त घोषणा? वा. उ.सी. वास्तव में एक कृषक का ही कार्य करते थे। अशिक्षित एवं दासता प्रेमी भारतीय जनता के मनों में हल चलाकर आजादी का बीज, उस कृषक ने बोया था, इसलिए उन्हें (वेळाळन्) कहना उपयुक्त ही है।

जिस प्रकार एक अणुवत बीज का सर्वनाश होने के पश्चात ही विराट वट वृक्ष का विश्वरूप के दर्शन होते हैं उसी प्रकार, भारती, गाँधी, वा. उ. सी आदि अणुरूप बीज होंगे, आजादी एक विराट वट-वृक्ष है।

अंत में कहने पर भी कुछ कम महत्व की बात नहीं है।

तायिन् मन्क्किोटि पारीर्

माता के उत्कर्ष झंडे को देखिए।

इस गीत में एक ही पद्य में वे कहते हैं।

पञचनत्तुप् पिरन्तोर्-मुन्नैप् पार्त्तन् मुतर् पलर् वाळन्त नन्नाट्टार, तुञ्चुम् पैळितिलुम तायिन्-पतत् तेण्टु निनैन्तिटुम् वङकत्तनोरुम्

चेन्तमिळ्नाट्टुप् केरुनकैटुन्

तीक्कन् मरवर्कळ्

चिन्तै तुणिन्त तेलुङ्का

पोरिल्

कालनुम् अञ्चक् कलक्कुम् मराट्टर्

पोपुटैयार् इन्तुस्तानत्तु मल्लर्

भारती की कृपा दृष्टि पूरे भारत पर पड़ती है। पंजाब में जनमें योद्धा, वह पंजाब जिसमें पार्थन से लेकर कई वीर रह चुके थे सोते समय भी भारत माता की सेवा में तुले हुए बंगाल के वीर, तमिलदेश के सैनिक, अग्नि तुल्य बहादुर, आंध्रदेश के सूरवीर जिनके मन में भारत माता की सेवा के लिए अनवरत दृढ़ विचार चलता था।

यमराज भी सहमकर रहजाते ऐसे महाराष्ट्र के लोग, हिंदुस्तान के पहलवान जो दया से भी भूषित हैं। राजस्थान के वीर उनकी कीर्ति को दुश्मन भी मान लेते हैं

मरै वरुम् कीर्त्ति केळ् राज पुत्रवीरर्.

देश के सभी वर्ग, सभी जातियाँ, शामिल हैं। अंत में बताना चाहूँगा भारत माता के झंडे पर एक वर्णन सुनिये।

इन्तिरन् वज्रम् ओर्पाल्- अतिल् ऐङ्कळ् तुरुक्कर् इळम्पिरै ओपोल्

इस झंडे में (झगड़े में नहीं) इंद्र का वज्रयुद्ध एक ओर है, हमारे मुसलमानों के तीज के चांद धारण कर हमारे मुसलमान जब तक इस तरह के अखंड राष्ट्र की भावना, जो भारती के समय में थी, नहीं होगी तब तक संदेह और समर से हम मुक्त नहीं होंगे।

भारत माता नामक गीत में (ओनु परम् पोरुळ् नामतन् मक्कळ् उलकिन्पक्केणि) कहते हैं।

परमात्मा एक है निर्विवाद विषय है। हम उसकी संतानें हैं। मानने योग्य है। (इन्पक्केनि) वह क्या है? संसार एक बड़ी बावली है। उसमें नाना प्रकार के व्यापार होते हैं। स्नान करने वाले, पानी लेनेवाले, कपड़े धोनेवाले, तैरने वाले, फसलों के लिए पानी खींचनेवाले, बरतन मांझनेवाले, यों ही इन सबको देखकर रहनेवाले। देहाती जीवन में तहाँ नदी, नाले नहीं थे। वहाँ यही बावली घंटों बैठकर बातचीत करने के लिए, सुबह और शामकों अच्छी जगह थी। वैसे ही यह दुनिया थी। आओ अपना काम निभाओ, चले जाओ झगड़ा क्यों? यही उनका विचार है।

इसी गीत में शकुंतला का वीर पुत्र भारत का उल्लेख है।

चाकुम् पोळतिल् इरु चेविक्कुणटलम् तन्ततेवर् केटैक्कै

भीष्म प्रतिज्ञा का कथन

मितिलै ऐरिन्तिट वेतप्पेरुळै विळवुम् चनकन् मति.

मिथिला जल जाने पर भी वेद की जिज्ञासा से तत्व पूछनेवाला जनक चक्रवर्ती का चरित्र।

चिन्तुनतियिन् मिचै निलविनिले

चेरनन्नाट्टिळम् पेण्कळुटने

चुन्तरत् तेलुङ्किनिर् पाट्टिचैत्तु

यह गाना तो प्रख्यात है। यहाँ नदी सिंधु है, कावेरी नहीं ललनाएँ केरल देश की, तमिळ देश की नहीं हैं। कविता, गाना तो भी सुंदर-तेलुगु भाषा का है। तमिळ भाषा का नहीं।

चिङ्क मराट्टियर् तम् कवितै कोण्टु

चोत्तुत् तन्तकळ् परिनचिविप्पोम्

कविताएँ महाराष्ट्र की हैं। उसके लिए पारितोषिक चेर देश के हस्तिदन्त!

अपने को सारे भारत देश के चक्रवर्ती समझते थे भारती। काश! ऐसा होता तो कितना अच्छा हुआ होता........

संपर्क : चेन्नई (तमिलनाडु)

राष्ट्र की एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वैचारिक क्रांति और प्रबुद्धजनों का दायित्व

O सिद्धेश्वर

किसी के मुस्कराहटों पे हो निवार,
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार,
मानवता का यह लक्षण है।

मौजूदा दौर में मानवता का मूल्य घटता जा रहा है। जहाँ भारत जैसे देश ने विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाया, वहीं पर आज इस देश में ही स्थिति काफ़ी विकट हो चुकी है। मानवता का मूल्य यहाँ भी ख़त्म होता जा रहा है। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की बात पर चलने वाले हमारे देश में भी महाराष्ट्र और असम में मानवता को तार-तार कर दिया गया। जिस तरह पशु अपनी पशुता, फूल अपनी मधुता, फल अपनी मिठास बनाए रखता है, उसी तरह मानव को भी अपनी मानवता को संभाल कर रखना चाहिए। वसुधैव कुटुंबकम की नीति से देश की एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकता है।

देश आज़ाद है फिर भी आदमी अपने घर, अपने ही देश में गुनहगार की तरह भटक रहा है। यहाँ नाम मात्र का प्रजातंत्र है, न्यायतंत्र है। प्रजातंत्र के नाम पर अपनों की गुलामी लोग झेल रहे हैं। हमने न जाने कैसे समाज का निर्माण किया है कि कोई हमारे दिल की बात, आँख के प्रेम को समझ ही नहीं पाता और हमें गुनहगार करार देता है। महाराष्ट्र, कश्मीर तथा असम में पिछले दिनों बिहार तथा उत्तर प्रदेश के लोगों पर जो क़हर ढाया गया वह एक मरे हुए समाज का प्रतीक कहा जाएगा। महाराष्ट्र और असम में पूरबियों पर जिस तरह के अत्याचार हुए और उन्हें महाराष्ट्र तथा असम छोड़ने को मजबूर किया गया उससे ऐसा लगता है कि मनुष्य के जीवन में शुष्कता, दर्द, अहंकारवृत्ति और गुमराहपन आ गया है। आदमी के पैर दूसरे पैर को धखा दे रहे हैं। मन, दिल और चाल की एकाग्रता का अभाव है। तीनों कहीं न कहीं बिखरे हैं। द्वंद्व में पूरा जीवन तार-तार बिखरा हुआ है। आदमी की जड़ता, पशुता की वृत्ति को खुला किया है। आदमी के चेहरे पर धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के विविध नकाब लगे हैं। यहाँ व्यक्ति में अपनेपन का अभाव दिखाई देता है, क्योंकि जिस राष्ट्र को सरदार पटेल के करिश्में ने एकता के सूत्र में बाँधा और जिसकी सूझबूझ, अदम्य साहस और दूरदर्शिता के चलते आज यह अखण्ड भारत कहलाता है, उसी एकता व अखण्डता पर ख़तरे मंडरा रहे हैं। क्या हमारी राष्ट्रीय एकता व अखण्डता अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कभी कोई चिंतन या प्रयास करते हैं? ये सब हमारे समक्ष आज ऐसे प्रश्न हैं जो हृदय को झकझोरते हैं।

15 अगस्त 1947 को हम स्वतंत्र हुए और आज भी ऐसी कोई वजह नहीं दिख रही है कि आगे भी स्वतंत्र नहीं रह पाएँगे। नि:संदेह हमारी सीमाएँ चौकस हैं, चैकन्नी हैं। किसी भी देश का मजाल नहीं है कि भारत की तरफ आँख उठाकर देख भी सके। लेकिन पता नहीं क्यों हम भारतीयों की मानसिकता आज तक स्वतंत्र नहीं हो पाई।

आज भी हम भारतीय क्षेत्रीयतावाद, भाषावाद, जातीवाद तथा धार्मिक संकीर्णता से मुक्त नहीं हो पाए हैं। महाराष्ट्र तथा असम में उत्तर भारतीयों के साथ किए गए दुर्व्यवहार और अत्याचार इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसके उत्तर ढूँढ़ने के लिए राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' द्वारा राष्ट्रीय राजधानी, नई दिल्ली में दो-दिवसीय द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित है। इसके पूर्व वर्ष 2002 के 16 एवं 17 नवंबर को 'आजादी के बाद वैचारिक क्रांति के नए आयाम और हमारा दायित्व' विषय को केंद्र में रखकर दो दिवसीय अधिवेशन हुआ था। आज पुनः यह अधिवेशन करने के लिए इसलिए आगे बढ़े हैं कि हम यह महसूस करते हैं कि हमारी राष्ट्रीय एकता व अखण्डता पर कुठाराघात किए जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं न कहीं कुछ ऐसा हो रहा है या हुआ है कि हम स्वतंत्र होते हुए भी तथा एक राष्ट्र होते हुए भी मौलिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं या हमारा दिल आज भी भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातीवाद तथा संप्रदायवाद को लेकर बँटा हुआ है। मैं समझता हूँ कि अभी भी वक्त है समझने का, समझाने का।

इधर हाल के वर्षों में ऐसी घटनाएँ इस देश में कम नहीं हुई हैं जब कभी धर्म के नाम पर, कभी जाति या नस्ल के नाम पर, कभी क्षेत्रीयता के नाम पर, तो कभी भाषा के नाम पर लाखों लोगों पर अत्याचार हुए। बाल ठाकरे परिवार ने महाराष्ट्र की सत्ता ऐन-केन प्रकारेण हथियाने के लिए क्षेत्रीयता और भाषा के नाम पर उत्तर भारतीयों के ख़िलाफ़ जो ज़हर उगले उससे न केवल भारतीय राजनीति शर्मशार हुई, बल्कि राज ठाकरे ने तो लोकतंत्र की सारी सीमाएँ तोड़ दी।

दरअसल, महाराष्ट्र और असम में क्षेत्रीयता के नाम जो कुछ हुआ उसकी ओर काफ़ी पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने संकेत कर दिया था- ''स्वत्व निज भारत गहै''। वास्तव में कोई भी राष्ट्र स्वत्वबोध के बिना निर्जीव हो जाता है। स्वत्वबोध उसका प्राण है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आत्मविश्वास का आधार स्वाभिमान है और

स्वाभिमान का आधार स्वत्वबोध। स्वत्वबोध के बिना किसी राष्ट्र की क्षमता नहीं। इसी प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी 17 अक्टूबर, 1939 को ही काशी में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पद से संबोधित करते-करते स्वत्वबोध को जागृत करने का आह्वान करते हुए कहा था कि ''हमारी आप महानुभावों से यही प्रार्थना है कि आप हममें साहित्य संबर्धिनी स्वतंत्रता का ऐसा भाव जगा दें कि हम यूरोप में हर एक उठी हुई बात की ओर लपकना छोड़ दें, समझ-बुझकर उन्हीं बातों को ग्रहण करें जिनका स्थाई मूल्य हो, जो हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो।''

सच तो यह है कि आज़ादी के बाद इस देश का यूरोप और अमेरिका की नकल में उत्तरोत्तर विकास होता गया और आज यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। भाषा, साहित्य, कला, संस्कृति, समाज विज्ञान, प्रौधौगिकी तकनीक प्राय: सभी क्षेत्रों में नकलचीपना दिखाई दे रहा है। इस स्थिति पर क्षोभ व्यक्त करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ से सम्मानित साहित्यकार व चिंतक रमेश चंद्र शाह लिखते हैं- ''भारत एक नकलची देश है, एकदम फूहड़ और लाइलाज नकलची। किसी भी क्षेत्र में हमारी भारतीयता का पता नहीं चलता, न विचार में, न आचार में। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने मात्र अनुकरण को देश की संस्कृति के लिए, उसके रचनात्मक विकास के लिए, उसकी मौलिकता के लिए अत्यंत घातक माना है।''

वस्तुत: आधुनिकता के अँधानुकरण में हम देशवासी अपने अतीत और भारतीय संस्कृति को भूलते जा रहे हैं और भारतीय मनीषा की ज्ञानात्मक उपलब्धियों और अनुभवसिद्ध मान्यताओं के प्रति यहाँ के प्रबुद्धजनों में संशय और हीनभाव दिखता है जिसके भयानक नतीजे सामने आए हैं। हमारी क्या चिंता होनी चाहिए, इसकी कोई चिंता हमको नहीं है। मौजूदा दौर के लेखन में कुछ अपवादों को छोड़कर स्वतंत्र चिंतन की परंपरा खंडित दिखाई देती है। आखिर तभी तो प्रखर चिंतक व साहित्यकार निर्मल वर्मा बहुत ही तल्ख स्वर में कहते हैं- ''क्या हम अपने स्वातंत्र्योत्तर वर्षों को देखते हुए निर्द्वंद भाव से कह सकते हैं कि स्वतंत्र भारत का कोई भी राजनेता, मनीषी और चिंतक गुलाम भारत के विवेकानंद, महर्षि अरविंद, तिलक और गाँधी से अधिक स्वाधीन चेतना और वैचारिक विवेक से मंडित है? क्या इतिहास की यह क्रूर विडंबना नहीं कि राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद हमने वह आत्मविश्वास भी खो दिया है, जो सांस्कृतिक परंपरा की अवचेतना पहचान से आता है?'' आज वैचारिक क्रांति की जरूरत इसलिए है कि हमें वैचारिक विवेक के निर्माण के लिए इस हीनताबोध से उबरना अत्यंत आवश्यक है। हमें महर्षि अरविंद का यह कथन याद रखना होगा कि ''स्वतंत्र चिंतन स्वरक्षा और समुन्नत भविष्य की आवश्यक पूर्व पीठिका है।''

समाज के प्रबुद्धजन या बौद्धिक चेतना से जो संपन्न होते हैं वह इस बात से अवगत हैं कि वैचारिक क्रांति एक ऐसी पवित्र और निरपेक्ष स्थिति है, जिसके बिना किसी भी राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बरकरार रखना संभव नहीं होता। प्रबुद्धजनों को अपने इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए उसके पास स्वाधीन चेतना और दहाड़ता हुआ साहस चाहिए। लेखक व साहित्यकार के लिए स्वाधीन होने का मतलब है- बिना मरे चुप रहना और दहाड़ते हुए आतंक के बीच फटकार कर सच बोलना। वैचारिक क्रांति का अर्थ है कि आप अपनी वैचारिक स्वाधीनता में जीते हैं और आपको नए रास्ते बनाने पड़ते हैं। सत्ता और शक्ति के केंद्र से आपको विमुख होना पड़ता है और चुनौतियों एवं कठिनाइयों के बीच समस्त सुविधाओं और लाभांशों से वंचित होकर आपको संघर्ष करना होता है। मगर अक्सर हाँ यह ख़तरा उठाने की बजाय प्रबुद्धजन एक सत्ता और शक्ति केंद्रीत विचारधारा से जुड़ जाना अधिक सुविधाजनक समझते हैं और इसके लिए वह अपनी वैचारिक स्वाधीनता को रास्ते का रोड़ा नहीं बनने देना चाहते। इस स्थिति को ठीक तरह से चिंतक व विचारक एडवर्ड सईद ने रेखांकित करते हुए कहा है कि ''बौद्धिक स्वाधीनता को बनाए रखने के लिए व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाने की बजाय एच्छिक कर्मशीलता का दृष्टिकोण अपनाना बेहतर है।'' इसलिए आज के हालात को देखते हुए लेखक को साहित्य का यंत्र बनाने की बजाय अपनी वैचारिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए हर खतरा उठाने के लिए तैयार होना पड़ेगा। अन्यथा वह एक बद्धमूल यंत्र तो बन जाएगा, परंतु उसकी बोधि समाप्त हो जाएगी। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि प्रत्येक लेखक व प्रबुद्धजन अपने वैचारिक विवेक प्राथमिकता के आधार पर अपनाएँ, ताकि साहित्य व लेखन उसकी अँधेरी राहों में उसकी अपनी मशाल बन सके। उधार के उजाले भले ही चाँद की तरह सुंदर दिखे, पर उनसे सिर्फ रातें ही जगमगा सकती हैं, मगर नए दिनों की नई फसलों को तो सूरज का ताप ही चाहिए। उधार की रोशनी लेकर चाँद हमें सुला तो सकता है, पर हमें जगाने के लिए स्वाधीन प्रकाश का, स्वाधीन चेतना का सूर्य ही आवश्यक है।

वैचारिक क्रांति में हमें एक महत्त्वपूर्ण घटक भाषा को भी शामिल करना होगा, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उस देश की भाषा की बहुत बड़ी भूमिका होती है। भाषा केवल विचारों के संप्रेषण का ज़रिया नहीं है, बल्कि उस देश का सांस्कृतिक वाहक भी है। कोई भी देश अपनी भाषा के माध्यम से ही शक्ति अर्जित कर सकता है, अपने को अभिव्यक्त कर सकता है। अज्ञेय जी ने इसीलिए तो लिखा कि भाषा अपने आपको पहचानने का साधन है, भाषा के बिना अस्मिता की पहचान नहीं होती और भाषा उसके साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी है।

वस्तुत: किसी भी देश की अस्मिता का उस देश की भाषा से गहरा संबंध होता है। भाषा संस्कृति और अस्मिता का महत्त्वपूर्ण उपकरण होती है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो अँग्रेजी भाषा के प्रति जबर्दस्त मोह जहाँ हमारी अस्मिता को कुंठित कर रहा है, वहीं अँग्रेजी हमारी राष्ट्रीय एकता में भी बाधक हो रही है। इस भयावह संकट को देखते हुए हमें अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी को अपनानी होगी।

आजादी प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय नेतृत्व के अनिर्णय की स्थिति और ढुलमुल रवैए ने देश को भयावह संकट में डाल दिया, जिसका दुष्परिणाम अब दिखाई दे रहा है। महाराष्ट्र, असम तथा देश के अन्य क्षेत्रों में भाषा के सवाल को लेकर आए दिन घटनाएँ हो रही हैं, वह उसी का प्रतिफल है। हिंदी के स्थान पर अँग्रेजी अमरबेल की भांति फैल गई है। शिक्षा, उद्योग, व्यापार, न्याय, शासन-प्रशासन सेवा प्राय: सभी क्षेत्रों में उसका वर्चस्व स्थापित हो गया है। इसने हमारी वैचारिक गुलामी को मजबूत किया है। इससे मुक्ति के लिए हमें वैचारिक क्रांति और कठिन संघर्ष करने की आवश्यकता है। अपनी हिंदी भाषा के प्रति गौरवबोध, अपनी परंपरा और अपनी सांस्कृतिक स्मृति के प्रति सजगता राष्ट्र एकता के लिए बहुत आवश्यक है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने सन् 1962 में 'समर शेष है' शीर्षक अपनी कविता की इन पंक्तियों द्वारा जो प्रश्न किया था वह आज भी अनुत्तरित है–

अटका कहाँ स्वराज? बोल दिल्ली! तू क्या कहती है ?
तू रानी बन गई, वेदना जनता क्यों सहती है ?
सबके भाग दबा रक्खे हैं किसने अपने कर में ?
उतरी थी जो विभा, हुई वंदिनी बता, किस घर में ?

स्वतंत्रता प्राप्ति के छह दशक से अधिक बीत जाने के बावजूद देश जातियों, संप्रदायों, धर्मों, दलों और नारों में बँट गया है। प्रत्येक दल-संप्रदाय अपने-अपने वैचारिक तथा राजनीतिक नारों से देश को ललकार रहा है। आज देश की प्रगति में विचारवान, प्रबुद्धजनों, बुद्धिजीवियों, चिंतकों और विचारकों की भूमिका कहाँ है? जो स्वतंत्र विचारक व लेखक के भी प्रत्यक्ष रूप से आज मुँह खोलने में हिचकिचा रहे हैं। अपने हित-चिंतन में लीन प्रबुद्धजन राजनीतिक दलों को समर्पित हैं। वे भी उनकी ही भाषा में बोलते हैं।

अँग्रेज़ी शासनकाल की तरह सत्ताविमुख बुद्धिजीवी भी सत्ता की वाणी बोल रहे हैं, ताकि उन्हें शासक का सम्मान मिल सके, विधान परिषद तथा राज्य सभा में मनोनीत किए जा सकें। नेहरू जी के जमाने में भी समाजवादी अशोक मेहता को राज्यसभा में मनोनीत किया गया था।

एक समय था जब मैथिलीशरण गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंश राय 'बच्चन', महादेवी वर्मा, मुकुट बिहारी वर्मा जैसे साहित्यकार तथा विचारक को राज्यसभा अथवा विधान परिषद के सदस्य के रूप में मनोनीत किया जाता था जिनकी उपस्थिति से राज्य सभा और विधान परिषद संवेदनशील और मर्यादित होती थी, मगर आज ऐसे लोग राज्य सभा तथा विधान परिषद में प्रवेश पा रहे हैं, जो विभिन्न दलों के बाहुबली की भूमिका अदा करते हैं अथवा वैसे धनपशुओं को राज्यसभा तथा विधान परिषद में जगह दी जाती है, जो अपने धन से दल को समृद्ध करते हैं, भले ही राज्यसभा या विधान परिषद में उनकी वाणी से जनता वंचित रहती हो। गाहे-बगाहे यदि साहित्य के नाम पर कोई विधान परिषद अथवा राज्य सभा में मनोनीत कर भी लिए गए हों, तो सांसद तथा विधायक निधि को किसी ठेकेदार को एकमुश्त करोड़ों हवाले कर कमीशनखोरी से अपना घर भर करोड़पति होने का गौरव प्राप्त कर इठलाते हैं, पर सम्मान उनसे कोसों दूर हो जाता है। अब जब राष्ट्रीय एकता व अखण्डता पर किसी बयान से ख़तरे मंडराने लगे, तो ऐसे बाहुबली अथवा धनपशु सांसदों व विधायकों से क्या आप यह उम्मीद करेंगे कि वे अपना मुँह खोलेंगे? कतई नहीं।

परंतु इतिहास का सत्य बड़ा निर्मम होता है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता। जिस दिन उसका उग्र रूप प्रकट होगा, इन सबको नष्ट कर देगा। वैचारिक क्रांति से ही वे रास्ते पे आएँगे और वैचारिक क्रांति तभी होगी, जब देश के प्रबुद्धजन आजादी की लड़ाई के दिनों का स्मरण करेंगे और सत्ता-सुख, पद-लाभ, सुविधाओं जैसे प्रलोभनों से अपने को दूर रखेंगे। दरअसल, स्वराज्य के बाद जब हमने जनतंत्र की चादर ओढ़ ली, तो उस जनतंत्र के लिए देश को विचारवान नहीं बनाया, देश को शिक्षित नहीं किया और देश के निर्माण के लिए मनुष्य नहीं तैयार किए। उनको राजनीतिक हित के लिए इस्तेमाल किया। इसीलिए शासन के समस्त सार्वजनिक उपक्रम समाप्त होते जा रहे हैं।

अपराधजन्य राजनेताओं ने अपनी अनुभवहीनता और निजी राजनीतिक हित के लिए उन्हें नष्ट कर दिया। वे केवल नारों से देश चलाना चाहते हैं। नारों से देश नहीं बनता, देश बनता है विचारों से। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि राष्ट्र की एकता व अखण्डता अक्षुण्ण बनी रहे, तो वैचारिक क्रांति करनी होगी और देश की जनता को जागृत कर उनमें राष्ट्र चेतना का संचार करना ही होगा।

संपर्क: 'दृष्टि', यू-207,
शकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-110092

●

Priority
BANKING

AXIS BANK

Feel-at-Home with Personalized Banking Services

Through Priority Banking, apart from Personalized Services, we provide you Banking, Investment, Lifestyle privileges and much more, which would make your banking experience a very fulfilling one.

PRIORITY BANKING PRIVILEGES

- Exclusive Relation Manager.
- Home Banking services : Free Cash & Cheque pick up and delivery.
- No commission on Demand Drafts and Pay Orders drawn on AXIS Bank locations.
- Financial advisory services (Mutual Funds, IPOs, Life & General Insurance).
- Demat Facility.
- Free Zero Balance Account for Minors.
- Preferential pricing on wide range of Loans & Credit Facility.
- Lifestype Privileges : Invitation to movies, music concerts, exhibitions.
- Free collection of outstation cheques drawn on AXIS Bank locations.
- Free outward foreign remittances.
- Enhanced Anywhere Banking facilities - Free 'At-Par' cheque Book facility.
- Priority Banking International Debit card with free of charge cash withdrawl from any Bank's ATM.
- NRI Srevices (NRE/NRO/FCNR accounts) available at the branch.
- Specially Designed account for Senior Citizen and Women.

For Details contact :

Mr. Amar - 9818712485 / Mr. Omar - 9899774067

Ms. Sonam / Ms. Nikita - 41632018

NRI Services : Mr. Ashish Gupta : 9810100766 / 011-41612018 / 46534329

Senior Privilege Account and Women Account

Mr. Ashish Chawla - 9891416911

AXIS BANK

E-64, Greater Kailash-I, New Delhi-110048 Ph. : 41632018

राष्ट्रीय एकता पर मंडराते ख़तरे

O श्याम सुंदर गुप्ता

जिन-दिनों में भारत में एकात्मता थी, यानी जब हम वेदवाणी जैसे-

''संगच्छवं संवदध्वं, सं वो मनासि जानताम्
यथा भागे देवापूर्वे, संजानाना उपासते।''

यानी- हम सब एक साथ चलें, हम एक ही स्वर में बोलें, हम सबके मन में एक ही प्रकार के भाव उदित हों, हम चाहे जिस भाग के रहने वाले हों या चाहे जिस देवता की पूजा करते हों के उद्देश्य के अनुसार चल रहे थे, उन दिनों भारत का विश्व पर शक्ति, शिक्षा और शांति में एकछत्र आधिपत्य था। हम और हमारा राष्ट्र महान था। हमारे आदर्श से लोग शिक्षा लिया करते थे, परंतु जब से वह एकता, अनेकता में छिन्न-भिन्न हो गई तभी से वे दुर्दिन दीखने पड़ रहे हैं, जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। हमें पराधीन और पदाक्रांत होना पड़ा। अपने धर्म और संस्कृति पर कुठाराघात सहने पड़े। हम शताब्दियों तक के लिये परतंत्रता के पाश में इस प्रकार बाँध लिये गए कि उससे छूटने की कल्पना संदिग्ध होने लगी। सैकड़ों वर्षों की परतंत्रता के बाद बड़े भाग्य से हमें यह समय देखने को मिला है।

किंतु जब हम भाषा, क्षेत्रवाद तथा धार्मिक संकीर्णता के उभार से राष्ट्रीय एकता पर मंडराते ख़तरों की बात करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की आत्मा झूठे आश्वासनों, पाखण्डपूर्ण चतुराईयों या घड़ियाली आँसुओं में नहीं, बल्कि दायित्वपूर्ण आचरण में है। अत: जिन कारकों को हम राष्ट्रीय ख़तरे के रूप में चिन्हित कर रहे हैं वे केवल हमारे कथनी एवं करनी के बढ़ते दूरत्व को ही प्रतिबिंबित करते हैं एवं उनके लक्षण मात्र हैं। एक कवि के शब्दों में-

उत्तर भी जुबाँ प्रश्न की ही बोलने लगे
यह देश खो गया है सवालों के शोर में

मच्छरों का जन्म तो वहीं होता है जहाँ पानी में गंदगी रहती है। उसी तरह विकृत बुद्धि एवं दुर्गंधमय स्वार्थ हमारी कोमल भावनाओं को पद-दलित ही नहीं करते, बल्कि ऐसी दूषित भावनाओं को जन्म देते हैं जो मानवता के दुश्मन होते हैं। यह सर्वविदित है कि सामाजिक एकता ही राष्ट्रीय एकता का सूत्रधार है। मूल्यबोध का अभाव हमें पतन की ओर ढकेल देता है एवं हम अंधगली में भटकने लगते हैं। हम अपना स्वार्थ साधन करना चाहते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा, धर्म या क्षेत्रवाद की संकीर्णता कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि हमारे ही कथनी एवं करनी की विरूपता को उजागर करती है।

धार्मिक असहिष्णुता : आज धार्मिक सहिष्णुता की नीति केवल ग्रंथों में रह गयी है। हालात यह है कि-

रामवालों को मुसलमान से बू आती है
अहले-इस्लाम को भगवान से बू आती है

किसको फुर्सत है, करे ख़िदमते इंसाँ
जबकि इंसान को इंसान से बू आती है

आज धार्मिक सहिष्णुता, जो धर्मनिरपेक्षता की आत्मा है वह एक आकाश कुसुम हो गया है। आज हम सांप्रदायिकता को ही धर्म मानने लग गये हैं। देशप्रेम व इंसानियत की जगह 'अल्लाहो-अकबर' एवं 'बजरंगबली की जय' लोगों के लिए ज़्यादा आकर्षण ही पैदा नहीं करते, बल्कि मरने-मारने के लिए पागल बना देते हैं। धर्म के नाम पर देश विभाजन और आतंकवाद मानवता के लिये एक कलंक है। न तो हिंदू धर्म और न ही इस्लाम हिंसा के लिये प्रेरित करते हैं। धर्म के ठेकेदारों के अलावा राजनीतिक दलाल भी कभी अल्पसंख्यकों को उकसाकर, कभी बहुसंख्यकों की पीठ ठोंक कर दोनों धर्मों के लोगों को आपस में लड़ाकर अपनी नेतागिरी बरक़रार रखना चाहते हैं। उन्हें राष्ट्रहित की ज़रा भी चिंता नहीं। वे सांप्रदायिकता की आग में रोटी सेंकते हैं। धार्मिकता मनुष्य की आत्मा में ईश्वरीय राज्य का नाम है, किसी पंडा, पोप या मुल्ला की सल्तनत का नहीं।

याद रहे, The treacherous, unexposed areas of the world are not in continents or seas. They are in the minds of men. इसलिये यह कहना कतई गलत नहीं होगा कि Religious intolerance is the cradle of Communalism, Terrorism, Pan Islamism and Hindu-Muslim Fanatism जो हमारे देश की एकता के लिये जबर्दस्त ख़तरा उपस्थित करते हैं।

गरीबी की दयनीय हालत : विश्व की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है एवं प्राकृतिक संसाधनों की दिन-दिन कमी होती जा रही है। 1981 में भारत की जनसंख्या 65 करोड़ 50 लाख थी, वहीं अब एक अरब को पार कर 120 करोड़ तक पहुँचने ही वाली है। जितने ज़्यादा सदस्यों का परिवार होगा उनमें उतनी अव्यवस्था होगी। अत: यह अव्यवस्था, आक्रोश एवं अस्थिरता का रूप ग्रहण करेगी, जो राष्ट्रीय एकता के लिये ख़तरा उपस्थित कर सकती है।

राजनीति एवं राजनीतिज्ञ का गिरता स्तर : आइंस्टिन ने लिखा है- ''राजनीतिज्ञ पारे की तरह है''। अगर उस पर अंगुली रखने की कोशिश करो, तो उसके नीचे कुछ नहीं मिलेगा। लोकमान्य तिलक ने

कहा था कि राजनीति साधुओं के लिये नहीं है, डिज़रायली जैसे विचारक राजनीति को द्यूतक्रीड़ा मानते हैं। एक विचारक ने तो यहाँ तक कहा है- राजनीति लफंगों का खेल है। इतना ही नहीं, राजनीति में कुँज की पुष्पशैय्या जल उठती है, लाल फूल अंगारों का रूप धारण कर लेता है और शीतल समीरण सर्पों की फुफकार बन जाता है। कहीं वह झूठी तो कहीं सच्ची, कहीं कठोर तो कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसक तो कहीं दयालु, कहीं कृपण तो कहीं उदार, कहीं अधिक द्रव्य व्यय करने वाली तो कहीं बहुत संचय करनेवाली होती है।

आज सत्यभाषण, उदारता, विष्ष्टिता, विनम्रता, सुशीलता, सहानुभूति के गुण तो उनके शब्दकोष में रहा ही नहीं। तभी तो जैसे दहेज के लिये दुल्हे बिकते हैं, पैसे के लिये नेताओं का वोट भी बिकने लगा है। जैसे वर-पिता कहते हैं, मैं तो दहेज के ख़िलाफ़ हूँ, पर जब देना पड़ता है तो फिर लूँ ही क्यों न? नेता भी कहते हैं, जब चुनाव जीतने के लिये करोड़ों रुपये ख़र्च करना पड़ता है, तो फिर दूसरा चुनाव लड़ूँगा कैसे? अगर मैं भ्रष्टाचारदेवी की पूजा न करूँ, फिर चुनावों के लिये धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता करना तो अक्षम्य माना जाता है, क्योंकि जो आई.एस.आई. मार्का विशुद्ध धर्मनिरपेक्ष हैं, वे भी कहते हैं, सांप्रदायिकता इसलिये घातक है कि यह लोगों को आपस में बाँटती व लड़ाती है। फिर क्या जात-पात, भाषा, क्षेत्रवाद लोगों को आपस में बाँटती व लड़ाती नहीं? फिर क्यों चुनाव जीतने के लिये उन्हीं का सहारा लेते हैं? अगर कोई सचमुच धर्मनिरपेक्ष है तो उसे Secular fundamentalism यानी- धर्मनिरपेक्ष सांप्रदायिकता से भी उतना ही परहेज करना चाहिये, जितना कि सांप्रदायिकता से। इनको कौन समझाए- कोई भी ज़हर, ज़हर है, उसको चाहे जिस किसी नाम से पुकारा जाए। तभी तो उनका नारा है-

''कदाचार ही गौरवागार है, नेतागिरी
ही मुक्ति का द्वार है।''

कई बार तो मुझे ऐसा भी लगता है कि आज के राजनीतिज्ञ राजनीति का माने भी नहीं समझते। लोहियाजी ने कहा था कि- ''देश की विधायिका सभाओं को जनता के दु:ख-सुख, आशा-आकांक्षाओं का दर्पण, एक साफ-शफ़्फ़ाक आईना होना चाहिए, जिसमें छोटे से छोटे आदमी पर भी होने वाले ज़ुल्म की तस्वीर उभरे''।

मैंने माना कि लोकतंत्र ही मुल्क की बीमारियों का इलाज है, किंतु वहाँ तक पहुँचे तो बात बने।

लॉर्ड मौनसन का कहना है कि- ''लोकतंत्र की सफलता के रूप में पृथ्वी पर स्वर्ग उतरने का इंतजार भी बड़ा मीठा होता है, किंतु यह इंतजार ऐसा नशा है कि लोग कभी भी चलकर मंजिल तक नहीं पहुँचते''। अत: लोकतंत्र में नागरिक अगर अपने अधिकारों से वंचित होकर भी उल्लू की तरह दार्शनिकता बघारता रहे, तो निश्चय ही उसे उजड़ा दयार नसीब होगा।

एक समय था जब प्रात: काल होते ही विद्यार्थी अपने-अपने सरस्वती मंदिरों में ईश-वंदना यह कहकर करते थे-

लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,

ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक, वीर व्रतधारी बनें

वहीं आज के राजनीतिज्ञ सबसे पहले वंदना करते हैं-

लीजिए हमको शरण में, हम कदाचारी बनें

भ्रष्टाचारी, नीति-तक्षक, धीर व्यभिचारी बनें

आज राजनीतिक स्तर इतना गिर गया है कि अब देश को नेता नहीं, बल्कि नेताओं से ही देश को बचाना होगा। वे अपने निजी स्वार्थ के लिये कुछ भी अनैतिक, असामाजिक एवं अराष्ट्रीय करने से बाज नहीं आते, उनकी पहचान चरित्र से नहीं, बल्कि खादी टोपी से ही रह गई है। चोर पहले चोरी करता है, फिर जेल जाता है, परंतु नेता पहले जेल जाता है, फिर चोरी करता है। जोहन फोस्टार डियूलस का कहना कि-''यदि आप हमारे साथ नहीं है, तो आप हमारे शत्रु हैं'' अक्षरश: सत्य है।

भ्रष्टाचार का बढ़ता बोलबाला : भ्रष्टाचार के नाना रूप हैं, बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उसके भी उतने ही रूप हैं, जितने कि ज्ञानियों के ब्रह्म के बतलाए हैं। हर समाज में व्यक्तिगत एवं सामाजिक आचरण के कुछ नियम होते हैं। इन नियमों का पालन करना समाज के संगठन को बनाये रखने के लिये अत्यंत आवश्यक होता है। व्यापक अर्थ में समाज के इन नियमों का उल्लंघन करना भ्रष्ट आचरण माना जाता है। यों तो भ्रष्टचार पहले भी था एवं भविष्य में भी रहेगा, किंतु मेरा मतलब महज इसकी मात्रा से है। आज भ्रष्टाचार की मात्रा इतनी भयावह है कि भोजन एवं पानी बगैर तो कुछ दिन काम चल जायेगा पर भ्रष्टाचार बगैर पलभर भी नहीं चल सकता। अगर आप कहें कि भारत सरकार ब्वदेजपजनजपवद व्िप्दकपं के तहत चलती है तो मैं पहला आदमी हूँगा, जो साफ इनकार करूँगा और कहूँगा- Constitution of India नहीं Corruption of India ही इसको चला रहा है। दाल में नमक तो ठीक है,पर नमक में दाल कतई ग्रहण योग्य नहीं। भ्रष्टाचार का खामियाजा सबसे अधिक गरीब और कमजोर वर्गे, को भुगतना पड़ता है। राजीव गाँधी के शब्दों में-''केंद्रीय सरकार द्वारा गरीबों के लिये स्वीकृत 100 रुपये का अनुदान मुखिया तक जाते:जाते महज 15 रुपये ही रह जाता है''। क्या यह चौकाने वाली घटना नहीं कि हमारे देश में BPL के 5.6 करोड़ परिवार में 2.5 करोड़ को एक साल में 215 करोड़ रुपए पुलिस को घूस देना पड़ता है। इन अभागों के लिये तो किसी कवि ने ठीक ही कहा है –

जिंदगी लगने लगी बीता हुआ त्योहार
होली, दिवाली, दशहरा आये कितने बार

अतः आतंकवाद जहाँ कुछ विशेष व्यक्तियों, संस्थाओं एवं धार्मिक स्थानों को निशाना बनाता है, वहीं भ्रष्टाचार पूरे देश को ही निशाना बनाता है। धार्मिक आतंकवाद से आर्थिकम आतंकवाद कीं ज्यादा खतरनाक एवं आत्मघाती होता है। फिर भी जितनी शक्ति व जितना धन हम धार्मिक आतंकवाद से लड़ने में आतंकवाद के उन्मूलन के लिये नहीं लगाते। फलतः कोशी नदी की तरह यह भी कहर बरपा रहा है। अफसोस! भ्रष्टाचार आज हमारे जीवन का हिस्सा बन गया है। ज्यादातर लोग इसके आदी हो गये हैं। यह खतरे का संकेत है। भ्रष्टचार को स्वीकृति देने की संस्कृति और मजबूत होगी, जो निश्चित रूप से देश की एकता के लिये एक बड़ा खतरा है।

सर्वशिक्षा का नितिांत अभाव : स्वतंत्रता प्राप्ति के 62 वर्षों के बाद भी देशवासी अज्ञानांधकार के कूँए में उसी तरह गोते लगा रहे हैं, जैसे पहले। यह एक अभिशाप है, देश के मस्तक पर कलंक है। इसके दो कारण हैं—एक तो शिक्षा इतनी महंगी हो गई है कि सर्वसाधारण उसको वहन करते थक जाता है। दूसरे, हम लोगों का ध्यान भी शिक्षा की ओर कम है। तीसरा, आज शिक्षा ने अपनी मौलिकता खो दी है। लोग साक्षर अवश्य बनते हैं पर शिक्षित नहीं। यदि हम देश का कल्याण चाहते हैं तो प्रत्येक देशवासी का शिक्षित होना परम आवश्यक है।

मूर्खों के लिये गोस्वामी जी का व्यंग्य कि– ''सबते भले बिमूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत गति'' यह जानते हुए भी कि मनुष्य के जीवन में शिक्षा का कितना महत्त्व है हम आप तक लोगों को आशानुरूप शिक्षित नहीं कर पाये। इसके कारण भी जनता में संकीर्ण विचारधारा बढ़ती जा रही है और व्यापक दृष्टिकोण का अभाव होता जा रहा है।

देशप्रेम का अभाव : यह कहावत बिल्कुल सही है कि हम संगठित रहें तो टिके रहेंगे, असंगठित हुए तो गिरेंगे। पर अफसोस! जो स्वतंत्रता मिली उसकी भी भाषा, धर्म एवं क्षेत्रवाद से जन्मी फूट के कारण हम उसी तरह बरबाद करने में लग गये हैं।, जैसे बंदर किसी रत्नःमाला को या गधा चंदन के भार को, क्योंकि न बंदर रत्नों की महार्ध्यता से परिचित है और न गधा चंदन के गुण से, वह तो उसे केवल लकड़ियों का बोझ मात्र समझे हुए है। कहीं भी पलटकर आराम से रेत में लेट लगा लेगा। अतः आज राष्ट्रीय एकता की उतनी ही जरूरत है, जितनी जीवन के लिये रोटी।

आज कुल मिलाकर ऐसा बातावरण हो गया है कि स्वार्थी नागरिक केवल अपने तक ही सोचता है, अपना कल्याण और अपनी उन्नति ही उसका ध्येय है। न उसे देश की चिंता है न ही राष्ट्र की। वह अपनी झूठी प्रतिष्ठा कायम करने के लिये कुछ भी कर सकता है और कुछ भी बयान दे सकता है। तभी इसका विष धीरे-धीरे बहुत बढ़ता जा रहा है। बंगाली-बंगाल की, मद्रासी-मद्रास की, पंजाबी-पंजाब की, गुजराती-गुजरात की उन्नति चाहता है। भिन्न-भिन्न प्रांतों के लागों के साथ तरह-तरह की बदसलूकी ही नहीं करती, बल्कि वहाँ से पलायन के लिये भी बाध्य करती हैं।

साथ ही देश में पृथकतावादी शक्तियों का बढ़ना इस दिशा में और खाई खोदना है। कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञ तथा कुछ पड़ोसी देश भारत को समृद्धशाली देश नहीं पा रहे है।। इसीलिये गोरखालैंड, नागालैंड और खालिस्तान जैसी समस्याएँ देश को विकास के मार्ग से हटाने के लिये प्रयत्नशील हैं। ये प्रवृत्तियाँ घातक हैं। इस देश की घरती पर रहने वालों को एक शायर की हिदायत पर ध्यान देना चाहिये–

नशेमन पर बिजली गिराने से पहले, ये सोचो की सारा गुलिस्ता जलेगा

तुम्हारे ही दम से है दुनिया की रौनक, तुम्हीं गर न समझे तो क्या हश्र होगा

आज इसी का नतीजा है कि राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्र के लिये जो लगन अँग्रेजों के शासनकाल में भी थी वह नहीं है। एक शायर ने कहा है–

दिल से निकलेगी न मरके वतन की उल्फत

मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन की उल्फत

उस समय प्रत्येक नागरिक के जुबान पर केवल एक ही नारा था ''हिंदुस्तान हमारा है''

निर्वाचन पद्धति में बदला :

डॉ० इकबाल ने ठीक ही कहा है–

जम्हूरियत वह तर्जे हुकूमत है कि जिसमें
बंदों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते

आज की स्थिति को देखकर कभी-कभी ऐसा प्रतीक होता है कि या तो हम गणतंत्र के लायक नहीं अथवा गणतंत्र ही हमारे लायक नहीं। कारण जिस चुनावी पद्धति से केवल ऐसे ही लोग चुनकर आ सकते हों, जो या तो बहुत पैसेवाले हैं या माफिया डॉन हैं या धर्म, जात, क्षेत्रवाद या सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले हैं या जिनका नीति-रीति या जनहित से कुछ लेना देना नहीं। ऐसे में उन लोगों के लिये विधानसभा या लोकसभा भ्रष्टाचार का एक अड्डा बन जाता है। इनेगिने लोग ही देशहित की चिंता करने वाले रह जाते हैं। इसी बार जब लोकसभा में प्दकव.।उमतपबंद छनबसमंत ।हतममउमदज पर बहस हो रही थी तब पत्रकारों के पूछने पर एक सांसद ने साफ़ कह दिया–''यह सब हमारे नेता ही जानते हैं। उनसे ही पूछिये, मैं यह सब नहीं जानता''। इस तरह की अज्ञानता और ऐसे व्यक्ति का चुना जाना जो देश का कर्णधार है, निश्चित एक अशुभ संकेत है। ऐसे लोगों की ऐसी भयावह अज्ञानता भी देश की एकता के लिये घातक सिद्ध हो सकती है। केवल पैसे के बल पर राज्यसभा में बहुत सारे सदस्य चुने जाते हैं। मेरा अभिप्राय है कि राजनीति में नीति और आदर्श से ज़्यादा धन-बल व बंदूक-बल का महत्त्व हो गया है। आज राजनीतिक एवं दुर्नीति में कोई फ़र्क़ नहीं रह गया है। अतः

ज़रूरी है कि हम निर्वाचन पद्धति को तत्काल बदलें, ताकि ऐसे ही लोग चुनकर आएँ, जो कम से कम देश के इतिहास एवं भूगोल को अवश्य ही जानें। मेरे ख़्याल में पश्चिम जर्मनी की चुनाव-पद्धति जिसको System of Proportional Representation कहते हैं, वही हमारे देश के लिये कहीं ज़्यादा सटीक एवं उपयोगी होगा, क्योंकि उससे भ्रष्ट, अयोग्य एवं अपराधी तत्त्वों के लिये चुनाव जीतना लगभग असंभव हो जाएगा और कुछ जीत भी गए तो जनता द्वारा त्पहीज जव तमबंसस के तहत उनकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है।

अब हमें करना क्या है? : विगत शताब्दियों में अहिंसा की परंपरा और विलक्षणता दोनों कुछ निष्प्राण हैं। हर व्यक्ति, समाज या देश शक्तिशाली बनना चाहता है, विकास करना चाहता है। अलगाव के वातावरण में कोई शक्ति-संचय नहीं कर सकता। आज एकता की चर्चा है, पर संस्कार नहीं हैं, शताब्दियों से अनेकता का कुसंस्कार पल रहा है। आज की चर्चा, भावना या शिक्षा आज ही संस्कार नहीं बन जाती पर सतत प्रयत्न रहता है, तो एक दिन निश्चित ही वह संस्कार बन जाती है। अनेकता के बीज बोने वाले उसके उतने दुष्परिणाम नहीं देखते, जितनी भावी पीढ़ी देखती है। एकता के लिए भी यही बात है। आज जो प्रयत्न होगा वह अगली पीढ़ी में सहज संस्कार बन जाएगा।

मनुष्य स्वभाव बदलता है और बदल सकता है। इस संभावना को लक्षित कर अनेकता में एकता व व्यक्ति-विकास के लिये हमारा राष्ट्रीय अभियान साल में एक सप्ताह तक होना चाहिए। सारी शिक्षा-दीक्षा में सहिष्णुता, सापेक्षता और उदारता को अधिक महत्त्व मिलना चाहिए। बौद्धिक और वैज्ञानिक विकास पर जितना ध्यान दिया जाता है उसके चतुर्थांश में भी व्यक्तिविकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत एक आध्यात्मिक देश के रूप में प्रख्यात है। सरदार वल्लभ भाई पटेल का न जन्मदिन है, न स्मृति दिवस पर पूर्णरूप से अशासित और अराजक भारत को चाहिए एक अदद पटेल। हालांकि गली-गली में नेता हैं, पर उनके क्रियाकलापों से देश बिखराव की स्थिति में है। तभी तो कहा जाता है कि जब लेने योग्य, देने योग्य तथा करने योग्य कार्यों का संपादन शीघ्रता से नहीं होता है, तो उनका रस काल पी जाता है। याद रहे, यथार्थवादी परिस्थितिबोध वास्तविक एकता की एक अनिवार्यता है। एक मिनट की मुस्तैदी से विजय का सेहरा सिर पर बँधता है और एक मिनट की चूक से पराजय भी कालिख लगाती है। पाँच मिनट की कीमत न जानने वाला आस्ट्रेलिया नेपोलियन से पराजित हुआ और वही अपराजेय नेपोलियन अपने साथी ग्रूसी के पाँच मिनट देर करने के कारण बंदी बनकर अपमान की मृत्यु मरा।

आज हमें इन खतरों एवं उनके कारणों को गहराई से समझना है। जाने-अनजाने हम बहुत ऐसे कार्य करते हैं जिनसे देश की एकता विरोधी तत्त्वों को बढ़ावा मिलता है। एक कहावत है- ''जब जागे तब भोर'' बिल्कुल सही और अकाट्य है। बालकवि वैरागी ने भी अपनी एक कविता में कहा है-

जब रथ क्रांति का रुक जाए, चिंतन
पर काई जम जाए
तो समझो पीढ़ी हार गयी, पुरवा को
पछुआ मार गयी

याद रहे, अंदरुनी असुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये भी जबर्दस्त ख़तरा है। सरदार पटेल ने कहा था- ''देश को बाह्य शत्रुओं से कहीं ज़्यादा आंतरिक शत्रुओं से ख़तरा है। हमें इन ख़तरों से सजग रहते हुए अलगाववादी मानसिकता को पनपने से रोकना होगा। देश की उन्नति और विकास के लिए राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना होगा। अंत में कवि जितेन्द्र धीर के शब्दों में कहना चाहूँगा-

हर तरफ़ दीवार जो ऊँची बनी है
एक चादर-सी अँधेरी की तनी है
फ़ासले मिट जाएँगे मुझको यक़ीं है
इस धरा से ख़त्म होगा रंज़ोग़म
फिर नया इतिहास लिख्खेगी क़लम

संपर्क : पूर्व महापौर (कोलकाता)
एवं पूर्व सांसद
पी-3, सी.आई.टी. रोड, मौलाली,
कोलकाता-700 014
मो०: 9433306268

राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से लौह पुरुष सरदार पटेल की 133वीं जयंती पर 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को नई दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

डॉ. निर्मला एस. मौर्य महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, तमिलनाडु

प्राधयापक एवं विभागाधयक्ष शिक्षा और शोधा संस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, टी-नगर, चेन्नई

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

डा. गणेश पवार

आज के जमाने में पत्रकारिता की बडी भूमिका है । इससे भी ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की है । पहले एक जमाना ऐसा रहा था कभी लिखने को विशेष महत्व नहीं रहा हों । संप्रेषण का पूरा काम मौखिक होता रहा होगा । उसके बाद कागज - कलम का जमाना आया, किताबें लिखी जाने लगी । साथ ही पाठकों की संख्या में भी बडोत्तरी हुई । आज शायद यह सोचना - समझना असंभव है कि मानव सभ्यता में इसका कितना महत्व रहा होगा । यह सब देखने से हमें ऐसा लगता है कि किताबें, ग्रंथ जैसे शब्द महज धर्मों में ईश्वरीय वाणी के लिए प्रयुक्त होते हैं। अनेक ग्रंथों में लिखित शब्द को परम वाक्य का, परम प्रमाण का दर्जा प्राप्त है और सबसे प्रबल तर्क यह है कि 'ऐसा लिखा हुआ है ।' लिखते समय भारतीय लेखक यहाँ तक कहते हैं कि 'ऐसा सुना जाता है', 'उक्त' या 'कहा गया है' आदि लिखकर न्याय प्रकट करते हैं ।

आज जमाना बदल चुका है । 'कागज लेखी से ज्यादा' 'आँखों देखी' पर भरोसा करते हैं। संसार के किसी भी कोने में घटना घटी हों तो तुरंत आँखों देखा हाल घर बैठे दिखा देते हैं । सुबह चाय पीते अखबार डालनेवाले लडके की इंतजार करने की अब नौबत नहीं रहीं । बस, बैठे-बैठे रीमोट घूमाओं तुरंत खबरों का चैनल ऑन हो जाता है ।

इसे 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' कहा जाता है । इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का क्षेत्र आड के युवाओं के सपनों का क्षेत्र है । संचार क्रांति के द्वारा बदले परिदृश्यों में इस क्षेत्र में रोजगार की बाढ-सी आ गई है । एक जमाना था, जब इस क्षेत्र में प्रशिक्षण केंद्रों अथवा शैक्षिक संस्थाओं का सर्वथा अभाव था, परंतु आज दृश्य बदल चुका है । अनेक विश्वविद्यालयों, प्रतिष्ठित, संघ-संस्थानों एवं शैक्षिक केंद्रों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के शिक्षण तथा प्रशिक्षण की विधिवत् व्यवस्था है ।

जैसे ही यह मीडिया बदलते समाज में पैर रखा तो सब से पहले उसकी खूबियों से पत्र कार ही प्रभावित हुए । एक तो लंबे-लंबे संपादकीय लेखनों से उसे छुटकारा मिल गया । छाया चित्रों का संसद ही खत्म हो गया । इससे उसे कम समय में अधिक कार्य करने के अवसर मिले।

आज पूरी दुनिया सूचना क्राँति के दौर से गुजर रही है । सूचना एवं प्रौद्योगिकी के तालमेल से उपजी इस क्रांति ने प्रायः समस्त क्षेत्रों को प्रभावित किया है । सूचना प्रौद्योगिकी जो 'इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी' के नाम से अधिक लोकप्रिय है । आनेवाले समय में, विशेष अवसरों की उपलब्धता, प्रतिस्पर्धाओं का आधार बिंदु विकास का नया क्षेत्र साबित होगी । इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्व इसलिए अधिक बडा है, क्योंकि उस ने मानव जीवन से जुड़े प्रायः समस्त आयामों पर अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित करने में सफलता अर्जित की है । संचार, व्यापार, उत्पादन, सेवाक्षेत्र, पर्यटन, शिक्षा, मनोरंजन, अनुसंधान, संस्कृति तथा राष्ट्रीय सुरक्षा आदि तमाम क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बोलबाला है । अयेदिनों में कैरियर के जिन क्षेत्रों में स्वर्णीम भविष्य की सर्वाधिक संभावनाएँ निहित हैं, इलेक्ट्रानिक मीडिया उन्हीं में से एक है । आज भारत में शिक्षण, प्रशिक्ष आदि की सुविधाएँ सुलभतापूर्वक उपलब्ध होने हेतु ग्रामीण एवं शहरी तमाम युवक - युवतियाँ इस मीडिया की मदद से जनसंचार में शानदार कैरियर का निर्माण कर सकते हैं ।

विज्ञापन समाचार मीडिया का मेरुदंड है । सारे विज्ञापन यदि एक बार हटा लिए जाए तो सरकार भी अपने कायक्रमों के निष्पादन और आर्थिक विनिमय को लेकर मुश्किल में पड जायेगी। इस तथ्य से सरकार और पूंजिवादि वर्ग दोनों ही समान रूप से प्रभावित होते हैं । जन समाज में उपभोक्ता संस्कृति को संस्कृति बनाने में विज्ञापनों का बहुत बडा योगदान है । इससे पहले कोई अन्य विकल्प न होने के कारण विज्ञापन दाताओं को केवल प्रिंट मीडिया पर ही निर्भर रहना पड़ता था । आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आते ही प्रिंट मीडिया की सीमाएँ स्वयं उजागर होने लगी । छापे का विज्ञापन उपभोक्ता को विज्ञापनो में एक सीमा तक ही कामयाबी मिल सकती है, क्योंकि पन्ने पर छाया चित्रों और शाब्दिक रेखांकन की सीमा है, जबकि उपभोक्ता टेलीविजन पर कुछ ही सेकंडों में पूरी एक शूटिंग देख लेता है । वैसे भी दृश्य - श्रव्य की संप्रेषणीयता अधिक ग्राही एवं प्रभावी होता है । अतः जब विज्ञापन दाताओं को अपनी योजनाओं और अपने उत्पादनों को विज्ञापित करने का बडा नेटवर्क मिला तो प्रिंट मीडिया के प्रति स्वभावतः उसका रुझान कम हो गया । आधुनिकतम तकनीकी का इस्तेमाल करते हुए पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी कलात्मकता को उभारने में कोई कसर नहीं छोड़ी है ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की शक्ति, प्रभाव व क्षमता आज किसी की नजरों में छिपी नहीं है। यह मीडिया बीसवीं सदि में दर्शकों पर कमाल का जादू किया है । इसका जादू वर्तमान में हर किसी के सिर चढ़कर बोल रहा है । इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आधुनिकता की ताजा चली हवाओं में रेडियों टेलिविजन, कंप्यूटर, केबल, टी. वी., होम रेडियों, मोबाईल संस्कृति, उपग्रह सेवाओं, आदि ने आज प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं ।

भारत में शिक्षा अभी भी 33% से अधिक होने के कारण पठन की सीमाएँ स्वयं सिद्ध हो जाती है । लेकिन टेलिविजन के लिए शिक्षित होना कोई खास माइने नहीं रखता, वहाँ तो बस देखना सुनना भर है । वैसे टेलिविजन आदि की अपेक्षा अखबार सस्ता है, फिर भी ऐसा भी नहीं कि प्रत्येक घर में वह खरीदा ही जाता हो । चाय - दुकानों, होटलों या पुस्तकालयों में एक

अखबार से सैकडों लोग काम चला लेते हैं । दूसरी तरफ आजकल गरीब-से गरीब व्यक्ति के घर में टेलिविजन एक प्राथमिक आवश्यकता के रूप में आ गया है । स्क्रीन पर बीस पृष्ठों के अखबार की खबरों की जानकारियाँ देख पाना भले ही असंभव हो परंतु वह विभिन्न चैनलों एवं कार्यक्रमों के माध्यम से बीस पृष्ठों से अधिक सामग्री को टेलीकास्ट करके मानविक जिज्ञासाओं को तृप्त करता जा रहा है ।फिर भी तेजी से बडते जिंदगी में हर कोई कम समय में ज्यादा समझने की प्रयास करता है । घटनाओं के तुरंत प्रसारित होने से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया; प्रिंट मीडिया से लगभग एक दिन आगे चल रहा है । इस प्रकार प्रिंट मीडिया केवल बासी खबरों का संवाह बनकर रह गया है । पाठकों में प्रिंट से जो कुतूहल कल्पनाशक्ति पैदा होती थी, उसको सजीव चित्रण ने एक प्रकार से संतुष्ट कर दिया है ।

वैसे भी फिलहाल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से प्रिंट मीडिया को कोई खतरा नजर नहीं आता । जैसे प्रिंट मीडिया की कमजोरियाँ है, वैसे ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भी है । फिर भी हमारी आवश्यकताएँ वस्तुओं की उपलब्धता तक का मार्ग प्रशस्त करती है जबकि चीजों की उपलब्धता हमारी जीवन को अधिक सुगमता एवं सुखपूर्वक व्यतित करने की मार्गों का पता देती है । बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देश में जिस सूचना क्रांति का विस्फोट हुआ उसके चलते पूरा भारतीय परिदृश्य चैनलों की बाढ़ से पट गया है । भारत में देशी व विदेशी कुल मिलाकर लगभग 200 चैनल प्रसारित हो रहे हैं । विशेषज्ञों का मानना है कि - अगले पाँच - दस सालों में भारत के हीं लगभग 200 चैनल अपने - अपने कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे होंगे । इनमें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, कन्नड, मलयालम, तेलुगु, उर्दू, तमिल, असामिया, भोजपुरी, मराठी, राजस्थानी, उडिया, काश्मीरी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं के चैनलस् के कार्यक्रम भी अपनी दर्शन संख्या को बडा रहे हैं । उधर, रेडियों और एफ.एम. के भी करीब 50 चैनल्स अपनी बहुरंगी विविध मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों की प्रस्तुती से अपनी अलग पहचान बना रही है । आज के स्पर्धात्मक युग में डी.टी.एच. टी.वी. केबल टी.वी. तथा सेट् टॉफ बाक्स का विस्तार होता आ रहा है इस के साथ ही यह भी अनुमान लगाया जाता है कि - सन 2010 तक लगभग 500 चैनल्स प्रसार के इस अस्तित्व युद्ध में अपनी भागीदारी करेंगे । इस विस्फोटक परिदृश्य के देखते हुए कई टेलिविजन निर्माण कम्पनियों ने 500 चैनल्स की प्रदर्शन क्षमता वाले टेलिविजन सेट भी बाजार में उतारने की तैयारी शुरु कर दी है ।

आज घटनाओं की आवृत्ति के कारण अखबारों में खबर जैसी कोई बात नहीं रह गयी है। मीडिया का बाजार गरम है और उतना ही उन पर दबाव है । रोज कई पत्रिकाएँ जन्म लेती है, कई पत्रिकाओं का अंत हो जाता है । किसी भी अन्य उपयोग्य वस्तु की तरह जैसे साबून, कपडों की तरह अपनी सामग्री बाजार में आती है । उनमें ''जो चल गई सो चल गयी, जो टॅफ हो गई टॅफ हो गई'' इस तरह आज का जमाना 'हिट् और फ्लाफ' का जमाना है । इनमें फिलहाल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को पत्रिकाओं जैसी आँच अभी नहीं लगी है । ऐसे स्थिति में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को अपने व्यवसाय और जनता में क्रेज बनाये रखने के लिए खबर के औजारों को धार-दार करते रहना पडेगा । स्पर्धा एवं दोड को निरंतर ध्यान में रखकर उन्हें चलना होगा ।

डा. गणेश पवार

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,

तिरुपति - 517 064 (आं.प्र.)

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 133वीं जयंती तथा 'विचार दृष्टि' के सफलतापूर्वक दस वर्ष पूरे होने पर 30 एवं 31 अक्टूबर, 2008 को नई दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

बी.एस. शांता बाई

अध्यक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच तथा ब्यूरो प्रमुख, विचार दृष्टि, कर्नाटक

अध्यक्ष, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, चामराज पेट, बैंगलुरु (कर्नाटक)

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि'
के दस वर्ष सफलतापूर्वक पूरे होने पर तथा
लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 133वीं जयंती के
पावन अवसर पर 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को नई
दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन पर हमारी
हार्दिक बधाई एवं ढेर सारी

शुभकामनाएँ

डॉ. मधु धवन

अधयक्ष राष्ट्रीय विचार मंच, तमिलनाडु
सह-ब्यूरो प्रमुख, विचार दृष्टि
के-3, अन्ना नगर (ईस्ट), चेन्नई-600102 (तमिलनाडु)

लौह पुरुष सरदार पटेल की 133वीं
जयंती पर राष्ट्रीय विचार मंच
द्वारा 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को
नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय
अधिवेशन की सफलता के लिए
हमारी

शुभकामनाएँ

प्रो. साधु शरण

उपाधयक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच,
'गीतिका', रोड नं. 1,
आदित्यनगर, पो. केसरीनगर, पटना'24

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक
पत्रिका 'विचार दृष्टि के'
सफलतापूर्वक दस वर्ष पूरे होने
पर इसके संपादक एवं
पत्रिका परिवार को

हार्दिक बधाई

लालदास पासवान

आजीवन सदस्य

पुरुषोत्तम सदन, मीठापुर,
'बी' एरिया, पटना-800001

With Best Compliments From

Er. Mohammad Rashid
(Prop.)

M/s. Arch Construction

Engineers, Government Contractor & Suppliers

G-8, Abul Fazal Enclave-II,
Shaheen Bagh, Jamia Nagar,
New Delhi-110025
Phone : 011-26948533 • Mob. : 9810225528

Sister Concern :
M/S. CONSOLIDATION CONSTRUCTION COMPANY
M/s. NAFEES CONSTRUCTION

With Best Compliments From

Brahm Putra Ltd.

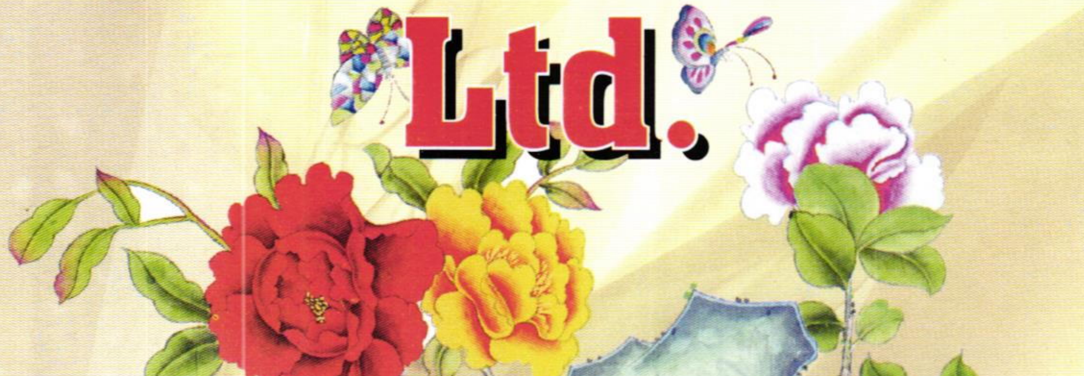

A-7, Mahipal Pur, New Delhi

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी सिद्धेश्वर द्वारा 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-92 से प्रकाशित एवं प्रोलिफिक इनकारपोरेटिड, एक्स-47, ओखला फेस-2, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित। संपादक-सिद्धेश्वर